श्री भूर सुन्दरी विवेक विलास

प्रिय सज्जनो !

यदि आपको मानव जीवन के यथार्थ लक्ष्य के जानने की अभिरुचि हो, या जैनसिद्धान्त के गूढ रहस्यों के विज्ञान की अभिलाषा हो, भव्य जीवों के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विज्ञान प्राप्त करना हो, धर्म और अधर्म के यथार्थ स्वरूप के जानने की वाञ्छा हो, श्री जैन-सिद्धान्तों में कहे हुए नवतत्त्वों के विज्ञान की कामना हो, सत्यशिक्षा, ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ धर्म आदि उपयोगी विषयों के महत्त्व की जिज्ञासा हो, यदि आप कर्मों के भेद और उनके विपाक को जानना चाहते हों, सन्नीति के अवलम्ब से अपने मानव जीवन को सफल करना चाहते हो तथा यदि आप को लौकिक व पारलौकिक विविध विषयों का विज्ञान प्राप्त करना हो तो नीचे लिखे पते से केवल ॥) मात्र डाक व्यय भेजकर बिना न्यौछावर के "श्री भूर सुन्दरी विवेक विलास" नामक बृहद् ग्रन्थ को मंगवा कर अवश्य अवलोकन कीजिये, स्टाक में थोड़ी सी ही प्रतियां बाकी हैं, अतः शीघ्रता कीजिये ।

मिट्ठनलाल कोठारी पल्लीवाल जैन,
स्वदेश भण्डार-भरतपुर ।

अहिंसा परमोधर्मः

❀ श्रीः ❀

❀ श्री पञ्चपरमेष्ठिने नमः ❀

भूरसुन्दरी अध्यात्म बोध

जिसको

श्री जैन श्वेताम्बर सम्प्रदायस्थ श्री बाईस टोला के
श्री १००८ श्री नाथूराम जी महाराज के सम्प्रदाय की
आर्यों जी श्री १००८ *श्री चम्पा जी* महाराज की
शिष्या सती शिरोमणि श्री १००८ आर्यां
भूरसुन्दरी जी महाराज ने
श्री जैन सङ्घ एवं सर्व साधारण के
लाभ के लिये निर्मित किया ।

जिसका
जयदयाल शर्म्मा शास्त्री
(भूतपूर्व संस्कृत प्रधानाध्यापक श्री डूंगर कालेज-बीकानेर)
ने संशोधन किया ।

प्रथमवार ५०० प्रति	वीर संवत् २४५३ विक्रमाब्द १९८६	न्योछावर स्वाध्याय

महता गुणवत्सुयेन कीर्तेः कालमेलखया ।

यारे दुरोधौंनुं तर यावक मिथो ॥ १ ॥

वीतरागेण भाषितः

विषय-सूची

❀ श्री ❀

प्रस्तावना

प्रियवर पाठक सज्जन !

आज यह तीसरी पुस्तक "भूरसुन्दरी अध्यात्मबोध" आपकी सेवा में प्रस्तुत की जाती है, संवत् १९८३ में श्री भरतपुर राज्य में चातुर्मास्य होने पर अनेक सज्जनों का अनुरोध होने से "भूरसुन्दरी विवेक विलास" नामक ग्रन्थ का निर्माण कर आपकी सेवा में उपस्थित किया गया था तथा इसी वर्ष श्री बीकानेर राज्य में चातुर्मास्य होने पर यहाँ के अनेक सज्जनों का अनुरोध होने पर कुछ ही समय पूर्व "भूरसुन्दरी बोध विनोद" नामक एक छोटी सी पुस्तक का निर्माण कर उसे भी आपकी सेवा में प्रस्तुत किया था, मुझे इस बात का हर्ष है कि सहृदय पाठक जनों ने उक्त दोनों पुस्तकों को अपनाकर मुझे अनुगृहीत किया, यही कारण है कि पहिली पुस्तक (भूरसुन्दरी विवेक विलास) की अब बहुत ही थोड़ी सी प्रतियां अवशिष्ट हैं, इसी प्रकार दूसरी पुस्तक (भूरसुन्दरी बोध विनोद) भी छपने के साथ ही इतनी खप गई कि उसकी भी थोड़ी सी ही प्रतियाँ बाकी रह गई इसका कारण मुख्यतया पाठकवर्ग को मुझ जैसी अल्पबुद्धि व्यक्ति पर पूर्ण कृपाभाव रख कर मेरे उत्साह को बढ़ाना ही कहा जा सकता है, नहीं तो मुझ में इतनी विद्या, बुद्धि और योग्यता कहाँ कि मैं ग्रन्थ-निर्माण कर उसमें उन भावों का निदर्शन कर सकूं जोकि सभ्यसमाज में गौरवास्पद और आदरणीय होवे हैं।

मैं प्रथम ही पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थों की भूमिका में प्रकट कर चुकी हूँ कि—"मैं किसी भाषा के साहित्य की न तो विदुषी हूँ और न

लेखिका हूँ किन्तु केवल संस्कृत व हिन्दी भाषा के साहित्य से मेरा कुछ कुछ परिचयमात्र है" ऐसी दशा में विद्वान् जन स्वयमेव समझ सकते हैं कि पाठक जनों का मेरे बनाये हुए ग्रन्थों को जो अपनाना है वह मुझे इस प्रकार प्रोत्साहन का देना है-जैसे कि सभ्यसमाज बाहु पसार कर सागर के विस्तार को बतलाने वाले बालक की प्रशंसा कर उसे प्रोत्साहन देता है, अस्तु।

दूसरे ग्रन्थ (भूरसुन्दरी बोध विनोद) के छप जाने के बाद बीकानेर के तथा अन्यत्र के भी सज्जनों का पुन यह अनुरोध होने लगा कि अब की बार एक ग्रन्थ और भी इस प्रकार का बनाया जावे कि "जिसमें आवश्यक जैन सिद्धान्तों का विवेचन हो, जैन सिद्धान्त के विषय में उत्पन्न होने वाले प्रश्नों का समाधान हो, एवं भक्ति, वैराग्य, सदाचार और आत्मकर्तव्य आदि विषयों का प्रतिपादन कर संक्षेप में आध्यात्मिक विषय का भी प्रतिपादन किया जावे।"

प्रिय पाठक सज्जन ! आप विचार सकते हैं कि उक्त अनुरोध का अनुसरण कर उक्त विषयों का प्रतिपादन कर समुचित भावों से समलङ्कृत ग्रन्थ का बनाना कितनी कठिन बात है, तिस पर भी मुझ जैसी अल्प-बुद्धि के लिये उक्त विषयों से समलङ्कृत ग्रन्थ का निर्माण करना तो पूर्ण विद्वान् और सुलेखक किसी महानुभाव का ही कार्य है। ऐसे विषय में समुद्यत होकर उसमें हाथ डालना भी मेरे लिये तो निस्सन्देह उपहास का विषय है, परन्तु साधु होकर दूसरे के शुभ अनुरोध का यथाशक्ति पालन करना अपना कर्तव्य जान कर अपनी विद्या, बुद्धि और योग्यता के अनुसार इस (भूरसुन्दरी अध्यात्मबोध) का निर्माण किया गया है, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पर छिद्रान्वेषी जन इसका अवलोकन कर अवश्यमेव उपहास करेंगे। परन्तु ऐसे लोगों के उपहास का भय करना भी शुभ कार्य के विषय में आत्मशक्ति का गोपन करना है जो कि एक प्रकार से निन्दास्पद और साधुकर्तव्य से बाह्य विषय है, अतएव उक्त भय का कुछ भी विचार न कर एवं गुणग्राही सहृदय सज्जनों की गुणग्राहिता की ओर लक्ष्य दे जाकर इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है।

इस ग्रन्थ को दो तरङ्गों में विभक्त किया गया है, इनमें से प्रथम तरङ्ग में हिन्दी भाषा में आत्मकर्तव्य, साधु का आचार, चर्चा के बोल, उपदेशप्रद कुण्डलियाँ और वैराग्य पद्य भाषा, इन विषयों का समावेश किया गया है तथा दूसरे तरङ्ग में श्री जिन स्तुत्यष्टक नवतत्त्वनिरूपण, प्रश्नोत्तर रत्नमाला, प्रश्नोत्तर मणिरत्नमाला, आत्मनिन्दाष्टक एवं वैराग्यशतक, इन विषयों का समावेश किया गया है, इनमें से प्रश्नोत्तररत्नमाला श्री विमलसूरि प्रणीत है, प्रश्नोत्तर मणिरत्नमाला श्री शङ्कराचार्य प्रणीत है, एवं आत्मनिन्दाष्टक अज्ञातनामा आचार्य विशेष प्रणीत है, ये तीन विषय ग्रन्थान्तरों से उद्धृत कर रक्खे गये हैं, शेष श्री जिन स्तुत्यष्टक नवतत्त्व निरूपण एवं वैराग्य शतक, ये तीन विषय मेरी कृतिरूप हैं। सर्व साधारण के लाभ के लिये उक्त सर्व श्लोकों की भाषा टीका कर दी है। इस प्रसङ्ग में यह भी कह देना अत्यावश्यक है कि संस्कृत भाषा एवं उस के व्याकरण आदि विषय का मुझे बहुत ही थोड़ा परिज्ञान है इसलिये श्लोकों के निर्माण में त्रुटियों के रहने की अवश्यमेव सम्भावना है, किञ्च–श्लोक रचना विषयक यह मेरी पहिली ही कृति है, इसलिये भी त्रुटियों का रहना नितान्त सम्भव ही है, अतएव विद्वान् जनों से सविनय निवेदन है कि श्लोकों के निर्माण में जो २ त्रुटियाँ हों उनका संशोधन कर मुझे अनुगृहीत करें।

किञ्च—पिङ्गलविषयक ज्ञान न होने से कुण्डलियों में तथा वैराग्यपद्यों में भी अनेक त्रुटियाँ रही होंगी, अतः पाठकवर्ग से उनके विषय में भी निवेदन है कि उक्त पद्यों में स्थित त्रुटियों का संशोधन कर मुझे कृपाभाजन बनावें।

पूर्व के दोनों ग्रन्थों के समान इस ग्रन्थ का भी संशोधन श्रीमान् पण्डित जयदयाल जी शर्मा शास्त्री (भूतपूर्व संस्कृत प्रधानाध्यापक श्री डूंगर कालेज-बीकानेर) ने किया है, इसलिये उक्त महोदय को इस परिश्रम के हेतु विशुद्ध भाव से धन्यवाद प्रदान किया जाता है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में धर्मशील शाहधनजी महानुभाव ने उत्साहपूर्वक आर्थिक योग प्रदान किया है, अतः उक्त महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त मे सहृदय पाठकजनों से पुनरपि मेरा विनम्र निवेदन है कि पूर्व के समान इस ग्रन्थ को भी अपनाकर तथा पुस्तक में विद्यमान त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर इसके अवलोकन, श्रवण और मनन के द्वारा मुझे अनुगृहीत करें, यदि इस ग्रन्थ मे प्रतिपादित विषयों के अवलोकन, पठन पाठन, श्रवण और मनन के द्वारा पाठक वर्ग को कुछ भी लाभ प्राप्त हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगी ।

किमधिकं विज्ञेषु

सज्जनों की हितैषिणी

कार्तिक शुक्ल
संवत् १९८४ वि.

आर्या भूरसुन्दरी
आसाणियों का चौक बीकानेर ।

॥ श्री पञ्चपरमेष्ठिने नमः ॥

भूर सुन्दरी अध्यात्म बोध

प्रथम तरङ्ग

मंगलाचरण ।

चिदानन्द आनन्दघन, मैं वन्दू[1] दिन रात ।
तिन्हके सुमिरन होत सुख, विघ्न सबै दुरि जात[2] ॥१॥
चिन्ताहारि जिनेश सब, वन्दूँ शीस नमाय ।
गौतमगुरु चरणन नमूँ, नमूँ सरसुती माय[3] ॥२॥
उपकारी मम गुरु बड़े, पुनि बहु शुभगुण खान ।
पूज्य श्रि नाथूरामजी, पण्डित बहुत सुजान[4] ॥३॥
पञ्चम पट्ट[5] विराजता, भजूलाल मुनिराय[6] ।
काशी पण्डित जिन सकल, जीते परिषद माँय[7] ॥४॥
संस्कृत प्राकृत में निपुण, इंगलिश अरबी जान ।
फारसि बंगला मारठी, छह भाषा विद्वान ॥५॥
तिनके पाटे तपसिवर[8] पनालाल अनगार[9] ।
छतिस बरस धन[10] छोड़ियो संयम में चित धार ॥६॥

१—नमस्कार करती हूँ । २—दूर हो जाते हैं । ३—सरस्वती माता । ४—सुन्दर ज्ञानवान । ५—पाट । ६—मुनिराज । ७—सभा में । ८—श्रेष्ठ तपस्वी । ९—साधु । १०—मन ।

बेले बेले पारणा, लियो छाछ आहार।
प्रतिदिन लीन्ही तापना, करत ज्ञान वीचार[१] ॥७॥
इन सबको वन्दन करूँ, सविनय शीस नमाय।
जिनके ध्यावत सकल सुख, लेत मनुज[२] अधिकाय ॥८॥
मम गुरुनी मोटी सती, चम्पाजी गुणखान।
सत्ताइस गुण शोभता, तपसी चतुर सुजान ॥९॥
तिन पद पङ्कज[३] नाइ शिर, करूँ हृदय महँ ध्यान।
सुविशद[४] बुद्धी मम हुवै, उपजै हृदय सुज्ञान ॥१०॥
तासु[५] चरनरज अनुचरी[६], भूरसुन्दरी नाम।
रच्यो अध्यातम बोध यह, भयो आतमाराम[७] ॥११॥

१—आत्मा का कर्त्तव्य।

सब से प्रथम जब कोई भव्य जीव धर्म के महत्त्व को जान कर उसे प्राप्त करने की इच्छा करता है तब उसके हृदय में बाहरी पदार्थों से वैराग्य होता है, इसके होने से वह अपनी इच्छा के पूर्ण होने के लिये यथार्थवक्ता[८] सद्गुरु की खोज करता है, क्योंकि सद्गुरु के मिले बिना धर्म के यथार्थ[९] स्वरूप को कैसे जान सकता है, जब खोजते २ उसे ऐसा सद्गुरु मिल जाता है कि जो सदा पौद्गलिक[१०] पदार्थों से विरक्त[११] रहता है, मान से दूर रहता है, सद्ज्ञान की प्राप्ति के लिये सदा उद्यम करता रहता है तथा उसकी प्राप्ति होने पर आनन्द में निमग्न होता है, अहर्निश[१२] धर्म की जागृति[१३] में तत्पर रहता है

१—विचार। २—मनुष्य। ३—चरणकमल। ४—अत्यन्त निर्मल। ५—उनके। ६—दासी। ७—आत्मा का आनन्द। ८—सत्यवादी। ९—रूप। १०—पुद्गलों से बने हुए। ११—विरक्त। १२—रात दिन। १३—जागना।

सर्वदा समान परिणाम करता है तथा अन्तरात्मा की भावना करता है, तब वह उससे सत्य प्रेम के साथ पूछता है कि "हे स्वामिन्! कृपा करके यह बतलाइये कि धर्म क्या पदार्थ है और उसकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है?" तब जो सद्गुरु ऊपर लिखे गुणों से युक्त होता है वह उत्तर देता है कि—"हे भव्य! सुन, वस्तु का जो स्वभाव है उसको धर्म कहते हैं, जैसे पुद्गल का स्वभाव गलना, पड़ना, सड़ना तथा नष्ट होना है और चेतन का धर्म अविनाशित्व[1] है, जिस प्रकार नीम और गिलोय आदि का स्वभाव कटु[2] है तथा मिसरी आदि का स्वभाव मधुर[3] है उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप है, चिद्[4] और आनन्द स्वरूप आत्मा जब अपने स्वभाव में अर्थात् ज्ञान, दर्शन और चारित्र में रमण[5] करता है तब उसे सहज में निज धर्म का लाभ हो जाता है, इसलिये धर्म की प्राप्ति के लिये आत्मा को ज्ञान, दर्शन और चारित्र में सदा रमण करना चाहिये। निजधर्म[6] के प्रकट होने से कर्म शत्रु का विनाश हो जाता है तथा जीवात्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(प्रश्न)—पहले कहा गया था कि वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं, यहाँ पर धर्म के द्वारा मोक्ष को न बतलाकर ज्ञान, दर्शन और चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति बतलाई गई है, अतः[7] इस विषय में यह शंका है—कि समस्त[8] संसार के ज्ञानी जनों ने दया और विनय को धर्म बतलाया है तो आप वस्तु के स्वभाव को धर्म कैसे कहते हैं?

(उत्तर)—जिन लोगों ने दया और विनय को धर्म बतलाया है, वह उनका कथन व्यवहार नय की अपेक्षा से जानना चाहिये, देखो! सूत्रों में दया के ६० भेद कहे हैं तथा विनय के ४५ भेद कहे हैं, किन्तु उनको धर्म के नाम से नहीं कहा है, इसलिये दया और विनय का

१—अविनाशीपन। २—कड़ुआ। ३—मीठा। ४—चैतन्य, ज्ञान। ५—क्रीड़ा। ६—अपना। ७—इसलिये। ८—सब।

कर्त्ता[1] जो जीव है उसका यथार्थ[2] लक्षण जान कर उसका जो ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप स्वभाव है उसी को धर्म जानना चाहिये।

(प्रश्न)—यह बात कैसे मानी जावे कि दया और विनय को व्यवहार नय की अपेक्षा से धर्म बतलाया है ?

(उत्तर)—देखो! अभव्य जीव भी संयम धारण करता है, दया और विनय का भी सेवन करता है अर्थात् षट् काय जीवों की रक्षा कर दया का पालन करता है तथा गुरु का विनय भी करता है, परन्तु अभव्यत्व[3] के कारण उसका अन्तरात्मा उसमें रक्षित[4] नहीं होता है, इसलिये उसे आत्मा के विशुद्ध गुण की प्राप्ति नहीं होती है और उसके बिना उसका उद्देश्य[5] पूरा नहीं होता है, अर्थात् चारों गतियों में भ्रमण करना बन्द नहीं होता है, देखो! वस्तु का जो २ निज[6] स्वभाव है उसका ज्ञान हुए बिना अनन्त काल में भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है, किन्तु स्वभाव का विशुद्ध ज्ञान होने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(प्रश्न)—विशुद्ध ज्ञान कैसे प्रकट होता है ?

(उत्तर)—इस जीवात्मा के आठ कर्म लिपटे हुए हैं तथा प्रत्येक कर्म की अनन्त वर्गणायें हैं और वे सब पुद्गल रूप हैं, उन आठों कर्मों में से जो प्रथम कर्म है वह ज्ञान का आवरण[7] करता है—इसलिये उस प्रथम कर्म (ज्ञानावरणीय) का जब तक क्षयोपशम नहीं होता है तब तक ज्ञान भी प्रकट नहीं होता है, जिस प्रकार मेघ पटल[8] से दब जाने पर सूर्य का प्रकाश नहीं होता है किन्तु प्रबल[9] वायु आदि के द्वारा जब वह मेघावरण[10] छिन्न भिन्न[11] हो जाता है तब सूर्य का विशुद्ध प्रकाश चारों ओर फैल जाता है, इसी प्रकार ज्ञानावरणीय

१ करने वाला। २ सत्य। ३—अभव्यपन। ४—लगा हुआ अनुरक्त। ५—गरज, मतलब। ६—अपना। ७—आच्छादन। ८—मेघ की घटा ९—तेज। १०—मेघका आच्छादन। ११—अलग।

कर्म के पुद्गल जब विशुद्ध भावना आदि साधन से विनष्ट हो जाते हैं तब आत्मा का विशुद्ध ज्ञान अच्छे प्रकार से प्रकाशित हो जाता है, इसी प्रकार अन्य[1] कर्मों के विषय में भी जानना चाहिये, तात्पर्य यह है कि कर्मों की सब वर्गणाओं के दूर हुए बिना जीव को मुक्ति की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है, इसलिये पौद्गलिक[2] संयोग ही वास्तव में अज्ञान है तथा विशुद्ध आत्मा ज्ञानरूप है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आत्मा के तीन भेद हैं—बाह्यात्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा, इनमें से बाह्यात्मा उसको कहते हैं कि जो पुद्गलों का काम करता है, अपने को कर्त्ता समझता है तथा ईश्वर को भी कर्त्ता मानता है, इसके अतिरिक्त[3] दया, दान, पूजा, सेवा, तीर्थयात्रा, सवर, सामयिक, पोषा, प्रतिक्रमण, साधुवन्दन,[4] साधुदर्शन गमन[5] दीक्षा महोत्सव, मृतकोत्सव[6] गुरुकुल निर्माण, सभा-संगठन तथा पाठशाला-स्थापन, इत्यादि संसार सम्बन्धी सब ही कार्य बाह्यात्मा के ही हैं, अन्तरात्मा के अनुभव के बिना ये सब कार्य चाहे स्वर्गप्रद[7] भले ही हों परन्तु मोक्ष के दाता नहीं हो सकते हैं, क्योंकि इस बात को निश्चयतया जान लेना चाहिये कि अन्तरात्मा के अनुभव के बिना शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है—चाहे बाईस टोला में स्थित की जावे, चाहे संवेगी नाम रक्खा जावे और चाहे तेरह पन्थी कहलाया जावे, वर्तमान में देखा जाता है कि अनेक पन्थ चल रहे हैं तथा उनके अनुयायी[8] जन बड़े अभिमान के साथ अपने पन्थ का महत्त्व प्रकट करते हैं तथा अपने २ ही महत्त्व[9] की डुगडुगी बजा रहे हैं, बहुत से पन्थानुयायी महाप्रभु यह भी आलापते हैं कि सम्यक्त्व का लाभ करना हो तो हमारे पास आकर सम्यक्त्व को ले

१—दूसरे। २ पुद्गलों का। ३—सिवाय। ४—साधु को नमस्कार। ५—साधु के दर्शन के लिये जाना। ६—मृतक का उत्सव। ७—स्वर्ग के देने वाले। ८ पीछे चलने वाले। ९—बड़ाई।

कर्त्ता[1] जो जीव है उसका यथार्थ[2] लक्षण जान कर उसका जो ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप स्वभाव है उसी को धर्म जानना चाहिये।

(प्रश्न)—यह बात कैसे मानी जावे कि दया और विनय को व्यवहार नय की अपेक्षा से धर्म बतलाया है ?

(उत्तर)—देखो ! अभव्य जीव भी संयम धारण करता है, दया और विनय का भी सेवन करता है अर्थात् षट् काय जीवों की रक्षा कर दया का पालन करता है तथा गुरु का विनय भी करता है, परन्तु अभव्यत्व[3] के कारण उसका अन्तरात्मा उसमें रंजित[4] नहीं होता है, इसलिये उसे आत्मा के विशुद्ध गुण की प्राप्ति नहीं होती है और उसके बिना उसका उद्देश्य[5] पूरा नहीं होता है, अर्थात् चारों गतियों में भ्रमण करना बन्द नहीं होता है, देखो ! वस्तु का जो २ निज[6] स्वभाव है उसका ज्ञान हुए बिना अनन्त काल में भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है, किन्तु स्वभाव का विशुद्ध ज्ञान होने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(प्रश्न)—विशुद्ध ज्ञान कैसे प्रकट होता है ?

(उत्तर)—इस जीवात्मा के आठ कर्म लिपटे हुए हैं तथा प्रत्येक कर्म की अनन्त वर्गणायें हैं और वे सब पुद्गल रूप हैं, उन आठों कर्मों में से जो प्रथम कर्म है वह ज्ञान का आवरण[7] करता है—इसलिये उस प्रथम कर्म (ज्ञानावरणीय) का जब तक क्षयोपशम नहीं होता है तब तक ज्ञान भी प्रकट नहीं होता है, जिस प्रकार मेघ पटल[8] से ढक जाने पर सूर्य का प्रकाश नहीं होता है किन्तु प्रबल[9] वायु आदि के द्वारा जब यह मेघावरण[10] छिन्न भिन्न[11] हो जाता है तब सूर्य का विशुद्ध प्रकाश चारों ओर फैल जाता है, इसी प्रकार ज्ञानावरणीय

---

१ करने वाला। २ सत्य। ३—अभव्यपन। ४—रँगा हुआ अनुरक्त। ५—गरज, मतलब। ६—अपना। ७—आच्छादन। ८—मेघ की घटा। ९—तेज। १०—मेघका आच्छादन। ११—नष्ट।

कर्म के पुद्गल जब विशुद्ध भावना आदि साधन से विनष्ट हो जाते हैं तब आत्मा का विशुद्ध ज्ञान अच्छे प्रकार से प्रकाशित हो जाता है, इसी प्रकार अन्य[1] कर्मों के विषय में भी जानना चाहिये, तात्पर्य यह है कि कर्मों की सब वर्गणाओं के दूर हुए बिना जीव को मुक्ति की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है, इसलिये पौद्गलिक[2] संयोग ही वास्तव में अज्ञान है तथा विशुद्ध आत्मा ज्ञानरूप है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आत्मा के तीन भेद हैं—बाह्यात्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा, इनमें से बाह्यात्मा उसको कहते हैं कि जो पुद्गलों का काम करता है, अपने को कर्त्ता समझता है तथा ईश्वर को भी कर्त्ता मानता है, इसके अतिरिक्त[3] दया, दान, पूजा, सेवा, तीर्थयात्रा, संवर, सामयिक, पोषा, प्रतिक्रमण, साधुवन्दन,[4] साधुदर्शन गमन[5] दीक्षा महोत्सव, मृतकोत्सव[6] गुरुकुल निर्माण, सभा-संगठन तथा पाठशाला-स्थापन, इत्यादि संसार सम्बन्धी सब ही कार्य बाह्यात्मा के ही हैं, अन्तरात्मा के अनुभव के बिना ये सब कार्य चाहें स्वर्गप्रद[7] भले ही हों परन्तु मोक्ष के दाता नहीं हो सकते हैं, क्योंकि इस बात को निश्चयतया जान लेना चाहिये कि अन्तरात्मा के अनुभव के बिना शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है—चाहें बाईस टोला में स्थित की जावे, चाहे संवेगी नाम रक्खा जावे और चाहें तेरह पन्थी कहलाया जावे, वर्तमान में देखा जाता है कि अनेक पन्थ बन रहे हैं तथा उनके अनुयायी[8] जन बड़े अभिमान के साथ अपने पन्थ का महत्त्व प्रकट करते हैं तथा अपने २ ही महत्त्व[9] की डुगडुगी बजा रहे हैं, बहुत से पन्थानुयायी महाप्रभु यह भी आलापते हैं कि सम्यक्त्व का लाभ करना हो तो हमारे पास आकर सम्यक्त्व को ले

१—दूसरे। २ पुद्गलों का। ३—सिवाय। ४—साधु को नमस्कार। ५—साधु के दर्शन के लिये जाना। ६—मृतक का उत्सव। ७—स्वर्ग के देने वाले। ८ पीछे चलने वाले। ९—बड़ाई।

जावो, वाह वाह ! सम्यक्त्व की अच्छी दूकान खोल रक्खी है, भला यह तो कहिये कि सम्यक्त्व आपकी पोथी में रक्खा है—वा पात्र में भरा है, अथवा झोली में ढुलक रहा है, जो आप निकालकर उसे दे देंगे, जरा सोचिये तो सही कि सम्यक्त्व रूपी[1] वस्तु है वा अरूपी[2] वस्तु है, यदि रूपी वस्तु है तो कृपा करके उसके स्वरूप को दिखलाइये और यदि अरूपी वस्तु है तो अरूपी वस्तु को आप कैसे देते वा दे सकते हैं, इस बात को शुद्ध न्याय की रीतिसे तथा शास्त्र की रीति से विचारना चाहिये, जो छोटी अवस्था के छोटे २ बालक हैं तथा जिन बेचारों को नवकार मन्त्र तक भी याद नहीं है क्या वे शुद्ध देव, गुरु और धर्म की पहिचान कर सकेंगे ? क्या वे अन्तरात्मा के द्वारा इस बात का विचार कर सकेंगे कि यह वस्तु सत्य है वा असत्य है, जानने के योग्य है अथवा न जानने योग्य है, ग्रहण करने के योग्य है वा त्याग करने के योग्य है, क्या वे सर्व जीवों पर समभाव का परिणाम रख सकेंगे ? जब इन सब बातों के करने में वे असमर्थ[3] हैं तो वे सम्यक्त्व के पाने के अधिकारी[4] कैसे हो सकते हैं ? हमें तो यह प्रत्यक्षतया[5] दीख पड़ता है कि जो सम्यक्त्व को लुटाने के लिये तैयार हैं वे ही सम्यक्त्व से पराङ्मुख[6] और कोसों दूर हैं, क्योंकि उनमें न तो समता का परिणाम दीखता है, यदि समता का परिणाम हो तो वे पराई चुगली और निन्दा आदि में क्यों प्रवृत्त[7] हों, न तेरी मेरी करने से माया मोह का त्याग दीखता है, न उनमें राग द्वेष का ही परित्याग दीखता है क्योंकि वे दूसरे की निन्दा सुनकर प्रसन्न होते हैं, दूसरे की प्रशंसा सुनकर जलते हैं, अपने मन्तव्य की स्थापना तथा परमन्तव्य की उत्थापना करते हैं, अपने अवगुण को छिपाते हैं, दूसरे के अविद्यमान[8] भी दोष को प्रकट कर उसके सिर पर मँढ़ते हैं, बिना देखी तथा बिना सुनी बातको खड़ी कर देते हैं, क्या

१—रूप वाली। २—बिना रूपवाली। ३—अयोग्य। ४—हकदार।
५—प्रत्यक्षरीति से। ६—बहिर्मुख, विमुख। ७—लगा। ८—बिना मौजूद।

ही सम्यक्त्व के लक्षण हैं ? क्या शास्त्रों में इसी को सम्यक्त्व बतलाया ? यह विषय कहीं एकदेशी[1] हो यह बात नहीं है किन्तु जहाँ तहाँ ऐसा ही देखने में आता है, औरों के विषय में क्या कहा जावे मुझ में स्वयं ये ही दोष विद्यमान[2] हैं, मैं भी राग द्वेष में निमग्न हो रही हूँ, पारमार्थिक[3] कार्य मुझ से यथा विधि[4] नहीं बनता है, परन्तु हाँ मैं तो स्त्री पर्याय हूँ अल्पबुद्धि हूँ, किन्तु जो पुरुष हैं, महात्मा नाम से प्रसिद्ध हैं, उनको तो उपर्युक्त[5] कार्य करना उचित नहीं है, यह निश्चयतया[6] जान लेना चाहिये कि मैं किसी के अवगुण का भाषण[7] और दोष का उद्घाटन[8] नहीं करती हूँ, क्योंकि ऐसा करना अत्यन्त अनर्थकारी[9] कार्य है, मेरा तात्पर्य तो कथन करने का यही है कि हम लोगों में स्वरूप को बट्टा लगाने वाले जो दोष हैं उनका परित्याग कर देना चाहिये, मैं स्वयं कहती हूँ कि मेरी आत्मा अत्यन्त मलीन है, सत्क्रियानिष्ठ[10] नहीं है, मैं यद्यपि संयतिनी नाम रखती हूँ परन्तु मुझ में सम्यक्त्व का कहीं ठिकाना नहीं दीखता है, सो भला वास्तव में संयम शालिनी[11] कैसे हो सकती हूँ सत्य बात तो यह है कि चाहे स्त्री हो या पुरुष हो जब तक वह राग द्वेष को नहीं जीतता है, माया मोह वश तेरी मेरी को नहीं छोड़ता है तथा ऊपर लिखी हुई सब बातों को नहीं छोड़ता है तब तक उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है, जब स्वयं ही वह सम्यक्त्व से वञ्चित[12] है तो औरों को सम्यक्त्व की प्राप्ति कैसे करा सकता है ? हमारी तो यह अवस्था हो रही है कि—"ऊँट का मींगना और पाँड़ का गनेफ," हाँ जो महानुभाव इन अवगुणों से रहित हैं, जिन्होंने अन्तरात्मा का विचार किया है, जिन्होंने अन्तःकरण की मलीनता[13]

१—एक स्थान में होने वाला। २—मौजूद ३—परलोक सम्बन्धी। ४—ठीक रीति से। ५—ऊपर कहे हुए। ६—निश्चयरूप से। ७—कथन। ८—उघाड़ना। ९—अनर्थ करने वाला। १०—श्रेष्ठकार्य में तत्पर। ११—संयम वाली। १२—रहित। १३—मैलापन।

और दुर्वासना[1] को सर्वथा हटा दिया है, जो नियमपूर्वक पाँच महाव्रतों का पालन करते हैं तथा जिन्होंने मुक्तिकान्ता[2] में अपनी लौ लगाई है वे ही महात्मा हैं, सत्पुरुष हैं, साधु हैं, तथा संयती हैं, उन्हीं को धन्य है, उन्हीं का सज्जीवन[3] श्लाघ्य[4], अनुकरणीय[5], और आदर्शरूप है, उनको मैं बारम्बार नमस्कार करती हूँ, किन्तु जिनमें पूर्वोक्त[6] दोष विद्यमान हैं वे तो मेरे ही समान हैं और मेरे ही साथी हैं, मैं यह स्वयं खूब जानती हूँ कि मैं कषायों में, राग में तथा द्वेष में अत्यन्त रच पच रही हूँ, मेरे लिये वह दिन धन्य होगा, परम कल्याण का होगा तथा परम आनन्द दायक होगा कि जिस दिन मुझे शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति होकर अन्तरात्मा का ज्ञान होगा।

प्रथम कहा जा चुका है कि दूसरा आत्मा अन्तरात्मा है, अब संक्षेप में इसका कथन किया जाता है—आत्मा यद्यपि पुद्गलों में रहता है परन्तु वह स्वयं उनसे इस प्रकार न्यारा है—जैसे कि श्रीफल के भीतर गोला रहता है तथा जैसे कमल सरोवर में रह कर भी जल से न्यारा रहता है, इसी प्रकार अन्तरात्मा भी पुद्गलों में रहकर भी उनसे न्यारा है।

(प्रश्न)—यदि आत्मा पुद्गलों से न्यारा है तो वह पुद्गलों का कार्य[7] क्यों करता है ?

(उत्तर)—यह तुम्हारा कथन ठीक नहीं है, देखो आत्मा पुद्गलों का काम नहीं करता है ? किंतु पुद्गल अपना काम करते हैं तथा आत्मा अपना काम करता है।

(प्रश्न)—यदि पुद्गल अपना काम करते हैं तो जीवात्मा के चले जाने पर पुद्गल अपना काम क्यों नहीं करते हैं ?

१—बुरा संस्कार, निकृष्ट इच्छा। २—मुक्तिरूपी स्त्री। ३—श्रेष्ठ जीवन। ४—प्रशंसा के योग्य। ५—अनुकरण करने योग्य। ६—पहिले कहे हुये। ७ काम।

(उत्तर)—देखो ! जब मुद्दई और मुद्दायला सरकार में जाकर अपना इन्साफ़ कराते हैं, तब उनके इन्साफ में साक्षी अर्थात् गवाह की भी आवश्यकता[1] होती है, क्योंकि गवाह की गवाही के बिना उन दोनों का काम सिद्ध[2] नहीं हो सकता, इसी प्रकार आत्मा भी साक्षीभूत है, यदि वह साक्षीभूत[3] न हो तब तो परमात्मारूप ही हो जावे। देखो ! जब कोई पुरुष रहने के लिये भाड़े के घर को लेता है तब वह उसे यद्यपि लीपता है, पोतता है, झाड़ता है और बुहारता है, परन्तु मन में यह समझता है कि यह घर मेरा नहीं है, इसी प्रकार अन्तरात्मा भी पुद्गलों में रमण[4] करता है परन्तु वह उन्हें अपना नहीं समझता है। इस विषय में यह समझना चाहिये कि निज[5] स्वभाव रूप सत्ता में जो परमात्मत्व[6] है उसी का अपनी शक्ति के द्वारा जो ध्यान करता है उसको अन्तरात्मा कहते हैं।

तीसरा आत्मा परमात्मा है—सब कर्मों का नाश करके जो जीव का निजस्वरूप प्रकट होता है कि जिससे वह निरञ्जन, निराकार, अव्याबाध तथा अक्षय सुख भोगी कहलाता है, लोक के अन्त में सिद्ध क्षेत्र में स्थिर रूप से रहता है तथा जन्म-मरण से रहित हो जाता है उसी को परमात्मा कहते हैं।

बाह्य आत्मा में अज्ञान रहता है और अन्तरात्मा तथा परमात्मा में ज्ञान रहता है।

प्रथम कहा गया था कि वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं, इस विषय में यह जानना चाहिये कि वस्तु का जो निजी मूल स्वभाव है, वह अखण्डित[7] और अविनाशी[8] है, वस्तुता[9] सब द्रव्यों में रहती है, जैसे पुद्गलों में परमाणु रूप से द्रव्यत्व है, उनका गुण

१—ज़रूरत। २—पूरा। ३ गवाह रूप। ४—क्रीड़ा, विहार। ५—अपना। ६—परमात्मभाव, परमात्मापन। ७—खण्ड रहित। ८—विनाश रहित। ९—वस्तुभाव, वस्तुपन।

मिलना और बिछुरना आदि है तथा वर्ण और गन्ध आदि पर्याय हैं, नीम का धर्म (स्वभाव) कटु[1] है, सोंठ का स्वभाव तीखा है, आमले का स्वभाव कषाय है, नमक का स्वभाव खारा है, नींबू का स्वभाव खट्टा है तथा मिसरी का स्वभाव मीठा है, इसी प्रकार सब द्रव्यों में अपना अपना धर्म (स्वभाव) रहता है, कोई वस्तु अपने धर्म को छोड़ कर दूसरी वस्तु मे नहीं मिलती है, यदि मिलती है तो विभाव[2] के द्वारा मिलती है ?

(प्रश्न)—जीव का क्या स्वरूप है ?

(उत्तर)—जीव तो अरूपी[3] पदार्थ है, उसका ज्ञान परमात्मा के वचन से होता है, जो लोग परमात्मा के वचन को नहीं मानते हैं वे अनन्त संसारी होते हैं; जीव के वर्ण[4] नहीं है, गंधादि भी नहीं है, वह छद्मस्थ की दृष्टि में नहीं आता, वह निराकार[5] है, उसका कोई संस्थान[6] नहीं है, संस्थान के बिना आकार[7] नहीं हो सकता है, परंतु हाँ यह अवश्य मानना चाहिये कि संसारी जीव पुद्गलों से न्यारा नहीं है, जिस प्रकार दूध मे घृत है, तिलों में तैल है, पुष्पों में सुगंधि है, तथा पाषाण मे धातु मिश्रित[8] रूप से रहता है इसी प्रकार से संसारी जीव पुद्गलों से मिश्रित रहता है, शरीर में भी यद्यपि जीव है परंतु निश्चय नय के अनुसार वह उससे जुदा है, क्योंकि आत्मा का धर्म आत्मा के ही साथ रहता है, देव, अरिहन्त, गुरु, निर्ग्रन्थ तथा दयाधर्म, इनमें जो श्रद्धा करता है उसे व्यवहार नय की अपेक्षा से जानना चाहिये, किन्तु निश्चय नय के अनुसार उसकी सिद्धि नहीं है, जो पुरुष अन्तरात्मा तक पहुँच गया है अर्थात् जिसने अन्तरात्मा के स्वरूप को जान लिया है तथा जिसने सात प्रकृतियों का

१—कड़ुवा। २—विरुद्धभाव। ३—रूपरहित। ४—रंग। ५—आकार रहित। ६—अवयवविभाग। ७—शक्ल, स्वरूप। ८—मिले हुए।

नाश[1] कर दिया है उसी में निश्चय नय के अनुसार सम्यक्त्व को जानना चाहिये, सम्यक्त्वी[2] पुरुष आत्मा में रमण[3] करता है, आत्मा के अध्यवसाय स्थान असंख्यात[4] हैं उन सब योग्य अध्यवसायों में जब आत्मा सर्वथा रंग जाता है तब उसका कल्याण होता है, वह या तो उसी भव में मोक्ष को प्राप्त होता है, नहीं तो सात वा आठ भव में तो वह अवश्यमेव मोक्ष को प्राप्त होता है, व्यवहार नय सम्यक्त्व वाला पुरुष आत्मा के स्वरूप को नहीं जान सकता है, क्योंकि व्यावहारिक[5] श्रद्धा मन से होती है तथा मन पुद्गल रूप है, पुद्गल से आत्म-बोध[6] नहीं हो सकता है।

(प्रश्न)—आत्म-बोध होने के क्या लक्षण हैं ?

(उत्तर)—जिस पुरुष को आत्म-बोध हो जाता है वह सब विषयों को विकृतरूप[7] जानता है, इसीलिये उसकी दृष्टि में वे सब त्याज्य[8] होते हैं, जिस प्रकार सड़े हुए अन्न में यद्यपि स्वाद नहीं होता है तथापि उसमें मूर्ख तो प्रवृत्ति करते ही हैं; परन्तु बुद्धिमान पुरुष उसे विकारकारी[9] जानकर उसका परित्याग कर देते हैं, इसी प्रकार आत्म-बोध वाला पुरुष सब विषयों को त्याज्य जानकर उनसे पराङ्मुख[10] हो जाता है तथा गुरु मुख से प्राप्त हुआ जो अनुभव ज्ञानरूपी अमृत है उसका वह सदा पान करता है, यह बात बिलकुल निर्विवाद[11] है कि अनुभव ज्ञान के बिना अन्दर का मैल भी दूर नहीं होता है, देखो ! मैल से लिपटी हुई कांच की बोतल हो और उसे केवल बाहर से धो डाला जावे तो उसका मैल निवृत्त नहीं होता है अर्थात् उसके भीतर मैल जमा ही रहता है, किन्तु जब उसे क्षारयुक्त[12] जलादि से भीतर से

१—नाश। २—सम्यक्त्व वाला। ३—क्रीड़ा, विहार। ४—बे गिनती। ५—व्यवहार सम्बंधिनी। ६—आत्मा का ज्ञान। ७—विकारयुक्त। ८—छोड़ने योग्य। ९—बिगाड़ करने वाला। १०—बहिर्मुख। ११—बिना विवाद के। १२—खार के सहित।

मिलना और बिखरना आदि है तथा वर्ण और गन्ध आदि पर्याय हैं, नीम का धर्म (स्वभाव) कटु[1] है, सोंठ का स्वभाव तीखा है, आमले का स्वभाव कषाय है, नमक का स्वभाव खारा है, नींबू का स्वभाव खट्टा है तथा मिसरी का स्वभाव मीठा है, इसी प्रकार सब द्रव्यों में अपना अपना धर्म (स्वभाव) रहता है, कोई वस्तु अपने धर्म को छोड़ कर दूसरी वस्तु में नहीं मिलती है, यदि मिलती है तो विभाव[2] के द्वारा मिलती है ?

(प्रश्न)—जीव का क्या स्वरूप है ?

(उत्तर)—जीव तो अरूपी[3] पदार्थ है, उसका ज्ञान परमात्मा के वचन से होता है, जो लोग परमात्मा के वचन को नहीं मानते हैं वे अनन्त संसारी होते हैं; जीव के वर्ण[4] नहीं है, गंधादि भी नहीं है, वह छद्मस्थ की दृष्टि में नहीं आता, वह निराकार[5] है, उसका कोई संस्थान[6] नहीं है, संस्थान के विना आकार[7] नहीं हो सकता है, परंतु हाँ यह अवश्य मानना चाहिये कि संसारी जीव पुद्गलों से न्यारा नहीं है, जिस प्रकार दूध में घृत है, तिलों में तैल है, पुष्पों में सुगंधि है, तथा पाषाण में धातु मिश्रित[8] रूप से रहता है इसी प्रकार से संसारी जीव पुद्गलों से मिश्रित रहता है, शरीर में भी यद्यपि जीव है परंतु निश्चय नय के अनुसार वह उससे जुदा है, क्योंकि आत्मा का धर्म आत्मा के ही साथ रहता है, देव, अरिहन्त, गुरु, निर्ग्रन्थ तथा दयाधर्म, इनमें जो श्रद्धा करता है उसे व्यवहार नय की अपेक्षा से जानना चाहिये, किन्तु निश्चय नय के अनुसार उसकी सिद्धि नहीं है, जो पुरुष अन्तरात्मा तक पहुँच गया है अर्थात् जिसने अन्तरात्मा के स्वरूप को जान लिया है तथा जिसने सात प्रकृतियों का

१—कड़ुआ। २—विरुद्धभाव। ३—रूपरहित। ४—रंग। ५—आकार रहित। ६—अवयवविभाग। ७—शक्ल, स्वरूप। ८—मिले हुए।

नाश[1] कर दिया है उसी में निश्चय नय के अनुसार सम्यक्त्व को जानना चाहिये, सम्यक्त्वी[2] पुरुष आत्मा में रमण[3] करता है, आत्मा के अध्यवसाय स्थान असंख्यात[4] हैं उन सब योग्य अध्यवसायों में जब आत्मा सर्वथा रम जाता है तब उसका कल्याण होता है, वह या तो उसी भव में मोक्ष को प्राप्त होता है, नहीं तो सात वा आठ भव में तो वह अवश्यमेव मोक्ष को प्राप्त होता है, व्यवहार नय सम्यक्त्व वाला पुरुष आत्मा के स्वरूप को नहीं जान सकता है, क्योंकि व्यावहारिक[5] श्रद्धा मन से होती है तथा मन पुद्गल रूप है, पुद्गल से आत्म-बोध[6] नहीं हो सकता है।

(प्रश्न)—आत्म बोध होने के क्या लक्षण हैं ?

(उत्तर)—जिस पुरुष को आत्म-बोध हो जाता है वह सब विषयों को विकृतरूप[7] जानता है, इसीलिये उसकी दृष्टि में वे सब त्याज्य[8] होते हैं, जिस प्रकार सडे हुए अन्न में यद्यपि स्वाद नहीं होता है तथापि उसमें मूर्ख तो प्रवृत्ति करते ही हैं, परन्तु बुद्धिमान पुरुष उस विकारकारी[9] जानकर उसका परित्याग कर देते हैं, इसी प्रकार आत्म-बोध वाला पुरुष सब विषयों को त्याज्य जानकर उनसे पराङ्मुख[10] हो जाता है तथा गुरु मुख से प्राप्त हुआ जो अनुभव ज्ञानरूपी अमृत है उसका वह सदा पान करता है, यह बात बिलकुल निर्विवाद[11] है कि अनुभव ज्ञान के बिना अन्दर का मैल भी दूर नहीं होता है, देखो। मैल से लिपटी हुई काच की बोतल हो और उसे केवल बाहर से धो डाला जावे तो उसका मैल निवृत्त नहीं होता है अर्थात् उसके भीतर मैल जमा ही रहता है, किन्तु जब उसे क्षारयुक्त[12] जलादि से भीतर से

१—नाश। २—सम्यक्त्व वाला। ३—क्रीड़ा, विहार। ४—बे गिनती। ५—व्यवहार सम्बन्धिनी। ६—आत्मा का ज्ञान। ७—विकारयुक्त। ८—छोड़ने योग्य। ९—बिगाड़ करने वाला। १०—बहिर्मुख। ११—बिना विवाद के। १२—क्षार के सहित।

भी धोया जाता है तब ही वह साफ और स्वच्छ होती है, इसी प्रकार बाहरी अनेक शुद्धियों के करने पर भी अनुभव ज्ञान के बिना अन्तरात्मा का मैल दूर नहीं होता है, देखो ! जब कोई पुरुष मन, वचन और शरीर, इन तीनों योगों को निश्चल[1] करके आतमा का ध्यान करता है तब उसे ध्यान का आनन्द मिलता है, वह आनन्द देवेन्द्र[2] फणीन्द्र,[3] और नरेन्द्र[4] को भी कभी नहीं मिल सकता है, यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि अनुभव ज्ञान से ही प्रभु की प्राप्ति होती है, अनुभव ज्ञान के द्वारा जो अन्तरंग[5] आत्म-बोध होता है वही सुखप्राप्ति का मूल[6] है, इसलिये अनुभव ज्ञानरूप जो चिन्तामणि रत्न है, उसे छोड़ कर और जगह नहीं भटकना चाहिये, देखो ! यह जो संसार रूपी महानद है वह अति अगाध[7] और गम्भीर[8] है, उसमें विषय विकार और रागद्वेष रूपी जल भरा है, करोड़ों यत्न करने पर भी जीवात्मा अनुभव ज्ञान के बिना उसके पार नहीं हो सकता है, ज्ञान के बिना मनुष्य जंगल के रोज के समान अथवा खर अर्थात् गदहे के समान होता है, मोहान्धकार[9] में फँसकर मनुष्य सांसारिक[10] विषयों में पच पच कर मरता है परन्तु ज्ञान की प्राप्ति के लिये कुछ भी उद्यम नहीं करता है, हे सांसारिक जीव ! जो तू आत्मा के सुख को चाहे तो किम्पाक फल के समान जो सांसारिक भोग है उसका परित्याग करदे, तथा कहीं भी मत भटक, किंतु अपने अन्तरात्मा में ही ज्ञानरूपी दीपक का प्रकाश कर, अपने स्वरूप को पहिचान ले तथा रागद्वेप का त्याग कर, मेरी तेरी करना छोड़ दे, तब तेरा निस्तार[11] होगा, आन्तर[12] ज्ञान के बिना मनुष्य कुत्ते के समान चारों ओर भटकता और भौंकता फिरता है, संसार में प्राय: यह दशा देखी जाती है कि लोग भेड़ के समान एक के पीछे एक रूप में चलते हैं जैसे एक भेड़ जब में में करती है तब उसके

१—स्थिर। २—देवों का स्वामी। ३—नागों का स्वामी। ४—राजा। ५—भीतरी। ६—जड़, कारण। ७—अथाह। ८—गहरा। ९—मोह रूप अन्धकार। १०—संसार के। ११—छुटकारा। १२—भीतरी।

पीछे दूसरी भी में में करने लगती हैं तथा एक भेड़ जिधर को मुँह करके चलती है उसी ओर उसके पीछे २ सब ही चलने लगती हैं—तथा में में करने का मतलब कुछ भी नहीं समझती हैं, इसी प्रकार बाह्यात्मा[1] पुरुष सदसद्[2] का विवेक[3] नहीं कर सकता है, न अपने ही स्वरूप को पहिचान सकता है कि मैं कौन हूं, किस प्रकार और किस लिये यहाँ आया हूँ, मेरा कर्त्तव्य क्या है, यह संसार क्या है तथा मेरा निस्तार[4] कैसे हो सकता है, इत्यादि, बहुत से लोग व्यवहार नयानुयायी[5] होकर एकान्त पक्ष पर आग्रह[6] किया करते हैं, उनका ऐसा करना उचित नहीं है, क्योंकि भगवत्प्रणीत[7] स्याद्वाद पक्ष है, अतः एकान्ततया व्यवहार नय का आश्रय लेकर अपने पक्ष को पुष्ट करना उचित नहीं है, किंतु व्यवहार और निश्चय, इन दोनों मतों का आश्रय लेना चाहिये।

एक साधारण[8] सी बात है कि वर्तमान में सहस्रों जैन भ्राता सामायिक करते हैं, परन्तु यह भी नहीं जानते हैं कि वास्तव में सामायिक किसको कहते हैं, सामायिक करना हमारा कर्त्तव्य क्यों है, इसका फल क्या है तथा उसे किस प्रकार करना चाहिये, इत्यादि, बस वे लोग तो एक दूसरे की देखा देखी करके ही उसमें प्रवृत्ति करते हैं, ऐसे भ्राताओं से प्रसंग वशात्[9] हमें यहाँ पर यह कहना आवश्यक[10] है कि भाइयो! सामायिक की विधि, उसके लाभ और उसके उद्देश्य[11] को समझ कर उसमें प्रवृत्ति करो, देखो! मन, वचन और काय, इन तीनों योगों को स्थिर कर प्रभुभक्ति रूप अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिये जो नियत समय पर अन्तरात्मा में ध्यान लगाया जाता है उसे सामायिक कहते हैं, अथवा मनोयोग, वाग् योग और काययोग को

१—बाहरी आत्मा वाला। २—सत्यासत्य। ३—विचार। ४—छुटकारा। ५—व्यवहार नय के पीछे चलने वाला। ६—हठ। ७—भगवान् का बनाया हुआ। ८—मामूली। ९—प्रसंग के अनुसार। १०—जरूरी। ११—गरज, मतलब।

स्थिर कर अन्तरात्मा में आत्म लाभ के लिये जो प्रभु का ध्यान लगाया जाता है उसे सामायिक कहते हैं, अथवा समाधिपूर्वक आत्म ज्ञान के लिये जो प्रवृत्ति है उसको सामायिक कहते हैं, इस (सामायिक) के चार भेद हैं—सम्यक्त्व सामायिक, सूत्र सामायिक, देश विरति सामायिक और सर्व विरति सामायिक, इनमें से सम्यक्त्व सामायिक उसको होता है कि जिसने सातों प्रकृतियों का क्षय अथवा क्षयोपशम किया है, सूत्र का विचार करना, पढ़ना, पढ़ाना अथवा तत्सम्बन्धी चर्चा करना, तथा निरन्तर ज्ञान के लिये उद्यम करना, इसका नाम सूत्र सामायिक है, ग्यारह प्रकृतियों का क्षयोपशम होने से देश विरति सामायिक होता है तथा सर्वविरति सामायिक साधु का होता है इसमें पन्द्रह प्रकृतियों[1] का क्षयोपशम होता है ।

स्मरण रहे कि सामायिक प्रवृत्ति में मनुष्य को दुर्वासनाओं[2] की निवृत्ति और शुभ वासनाओं के प्रादुर्भाव[3] के लिये आत्मनिन्दन[4] अवश्य करना चाहिये, क्योंकि आत्मनिन्दन से शुभ संस्कार का प्रादुर्भाव होने से भविष्यत् में पाप-कार्य में प्रवृत्ति नहीं होती है, आत्मनिन्दन समय में मनुष्य को अपने मन में यह विचार करना चाहिये कि—हे आत्मा, तू अनादि काल से कुगुरु, कुदेव और कुधर्म में प्रवृत्त रह चुका है, रस लालसा[5] आदि विषयों के कारण तेरी दृष्टि मलीन हो रही है, कभी तू सम्यक्त्व-मोहनी की ओर दृष्टि डालता है, है, कभी मिश्र मोहनी की ओर झुकता है, कभी तू काम-राग, स्नेह-राग और दृष्टि-राग में अनुराग करता है, कभी ज्ञानविराधना, दर्शन विराधना और चारित्र विराधना में प्रवृत्त हो द्वेष का अनुसरण[6] करता है, कभी तू मनोदण्ड, वाग्दण्ड और कायदण्ड में प्रवृत्त होकर अहिंसा व्रत में

१—चारित्र मोहनीय की १२ प्रकृतियों का तथा दर्शन मोहनीय की ३ प्रकृतियों का, इस प्रकार १५ प्रकृतियों का । २—खराब इच्छाओं । ३—उत्पत्ति ४—आत्मा की निन्दा । ५—रसों की प्राप्ति की इच्छा । ६—अनुगमन ।

पराङ्मुख[1] हो जाता है, कभी तू हास्य, रति और अरति में क्रीडा[2] कर बाल लीला को दिखलाता है, कभी तू भय, शोक, दुगछा, कृष्ण लेश्या, नील लश्या तथा कापोत लश्या का पीछा कर बीभत्स रस की आकृति को धारण करता है, कभी तू ऋद्धिगारव, सातागारव, मायाशल्य, नियाणा शल्य तथा मिथ्या दर्शनशल्य में प्रवृत्त होकर माया राक्षसी की उपासना करता है, अरे आत्मा! तू महादुष्ट और दुराचारी[3] है, अरे नीच! तू अनन्तानुबन्धी की चौकड़ी में अनादि काल से फँस रहा है, तूने प्रथम गुणस्थान को भी नहीं बदला है, तेरे अन्दर तृष्णा की तरंगें उछल रही हैं, तू जो कुछ सत्क्रिया[4] भी करता है वह शून्य मन से लोक दिखावे के लिये करता है, धैर्य युक्त[5] मन से न करने के कारण वह तेरी सत्क्रिया भी व्यर्थ ही है, अरे पापी! तू पौद्गलिक[6] क्षणभंगुर[7] सुख के लिये कितने कुकर्मों को करता है, यह मेरे पास पारस पत्थर है, यह मेरे पास रसकूपिका है, ये मेरे नव निधान हैं तथा ये मेरे सोने के पलँग हैं, ये मेरे रहने के अति उच्च[8] प्रासाद[9] हैं, ये मेरे उद्यान[10] हैं तथा ये मेरे यहाँ हस्त्यादि[11] पशु समुदाय हैं, इस प्रकार मोह माया में फँस कर तू मदान्ध[12] हो रहा है, अरे पापी! तू अनेक यंत्र, मंत्र, तंत्र कर दूसरों का प्रवञ्चन[13] कर द्रव्य का उपार्जन कर पौद्गलिक सुख का भोग करता है, अरे मूर्ख! जब दशवें गुणस्थान तक लोभ का परिहार[14] नहीं है तो तुझे निर्लोभ कैसे कह सकते हैं, तुझ बेचारे की क्या गिनती है, अरे अधम! तू मन में यह विचार करता है कि यह मेरा घर बार है, ये मेरे पिता, माता, पुत्र, कलत्र[15] और सम्बन्धी हैं, यह तेरी परम[16] मूर्खता[17] है, क्योंकि तू अनन्त वार ऐसे ही घर कर चुका है,

---

१—विमुख। २—खेल। ३—दुष्ट व्यवहार वाला। ४—अच्छा कार्य। ५—धीरज के सहित। ६—पुद्गलों के। ७—क्षण में नष्ट होने वाले। ८—बहुत ऊँचे। ९—महल। १०—बाग। ११—हाथी आदि। १२—मद से अन्धा। १३—ठगाई। १४—त्याग। १५—स्त्री। १६—बड़ी। १७—बेवकूफी।

स्थिर कर अन्तरात्मा में आत्म लाभ के लिये जो प्रभु का ध्यान लगाया जाता है उसे सामायिक कहते हैं, अथवा समाधिपूर्वक आत्म ज्ञान के लिये जो प्रवृत्ति है उसको सामायिक कहते हैं, इस (सामायिक) के चार भेद हैं—सम्यक्त्व सामायिक, सूत्र सामायिक, देश विरति सामायिक और सर्व विरति सामायिक, इनमें से सम्यक्त्व सामायिक उसको होता है कि जिसने सातों प्रकृतियों का क्षय अथवा क्षयोपशम किया है, सूत्र का विचार करना, पढ़ना, पढाना अथवा तत्सम्बन्धी चर्चा करना, तथा निरन्तर ज्ञान के लिये उद्यम करना, इसका नाम सूत्र सामायिक है, ग्यारह प्रकृतियों का क्षयोपशम होने से देश विरति सामायिक होता है तथा सर्वविरति सामायिक साधु का होता है इसमें पन्द्रह प्रकृतियों[1] का क्षयोपशम होता है।

स्मरण रहे कि सामायिक प्रवृत्ति में मनुष्य को दुर्वासनाओं[2] की निवृत्ति और शुभ वासनाओं के प्रादुर्भाव[3] के लिये आत्मनिन्दन[4] अवश्य करना चाहिये, क्योंकि आत्मनिन्दन से शुभ संस्कार का प्रादुर्भाव होने से भविष्यत् में पाप-कार्य में प्रवृत्ति नहीं होती है, आत्म-निन्दन समय में मनुष्य को अपने मन में यह विचार करना चाहिये कि—हे आत्मा, तू अनादि काल से कुगुरु, कुदेव और कुधर्म में प्रवृत्त रह चुका है, रस लालसा[5] आदि विषयों के कारण तेरी दृष्टि मलीन हो रही है, कभी तू सम्यक्त्व-मोहनी की ओर दृष्टि डालता है, है, कभी मिश्र मोहनी की ओर झुकता है, कभी तू काम-राग, स्नेह-राग और दृष्टि-राग में अनुराग करता है, कभी ज्ञानविराधना, दर्शन विराधना और चारित्र विराधना में प्रवृत्त हो द्वेष का अनुसरण[6] करता है, कभी तू मनोदण्ड, वाग्दण्ड और कायदण्ड में प्रवृत्त होकर अहिंसा व्रत से

१—चारित्र मोहनीय की १२ प्रकृतियों का तथा दर्शन मोहनीय की ३ प्रकृतियों का, इस प्रकार १५ प्रकृतियों का। २—खराब इच्छाओं। ३—उत्पत्ति ४—आत्मा की निन्दा। ५—रसों की प्राप्ति की इच्छा। ६—अनुगमन।

पराङ्मुख[1] हो जाता है, कभी तू हास्य, रति और अरति में क्रीड़ा[2] कर बाल लीला को दिखलाता है, कभी तू भय, शोक, दुगंछा, कृष्ण लेश्या, नील लेश्या तथा कापोत लेश्या का पीछा कर बीभत्स रस की आकृति को धारण करता है, कभी तू ऋद्धि-गारव, सातागारव, मायाशल्य, नियाणा शल्य तथा मिथ्या दर्शन-शल्य में प्रवृत्त होकर माया राक्षसी की उपासना करता है, अरे आत्मा! तू महादुष्ट और दुराचारी[3] है, अरे नीच! तू अनन्तानुबन्धी की चौकड़ी में अनादि काल से फँस रहा है, तुझे प्रथम गुणस्थान को भी नहीं बदला है, तेरे अन्दर तृष्णा की तरंगें उछल रही हैं, तू जो कुछ सत्क्रिया[4] भी करता है वह शून्य मन से लोक दिखाने के लिये करता है, धैर्य युक्त[5] मन से न करने के कारण वह तेरी सत्क्रिया भी व्यर्थ ही है, अरे पापी! तू पौद्गलिक[6] क्षणभंगुर[7] सुख के लिये कितने कुकर्मों को करता है, यह मेरे पास पारस पत्थर है, यह मेरे पास रस-कूपिका है, ये मेरे नव निधान हैं तथा ये मेरे सोने के पलँग हैं, ये मेरे रहने के अति उच्च[8] प्रासाद[9] हैं, ये मेरे उद्यान[10] हैं तथा ये मेरे यहाँ हस्त्यादि[11] पशु समुदाय हैं, इस प्रकार मोह माया में फँस कर तू मदान्ध[12] हो रहा है, अरे पापी! तू अनेक यंत्र, मंत्र, तंत्र कर दूसरों का प्रवञ्चन[13] कर द्रव्य का उपार्जन कर पौद्गलिक सुख का भोग करता है, अरे मूर्ख! जब दशवें गुणस्थान तक लोभ का परिहार[14] नहीं है तो तुझे निर्लोभ कैसे कह सकते हैं, तुझ बेचारे की क्या गिनती है, अरे अधम! तू मन में यह विचार करता है कि यह मेरा घर बार है, ये मेरे पिता, माता, पुत्र, कलत्र[15] और सम्बन्धी हैं, यह तेरी परम[16] मूर्खता[17] है, क्योंकि तू अनंत बार ऐसे ही घर कर चुका है,

---

१—विमुख। २—खेल। ३—दुष्ट व्यवहार करने वाला। ४—अच्छा कार्य। ५—धीरज के सहित। ६—पुद्गलों के। ७—क्षण में नष्ट होने वाले। ८—बहुत ऊँचे। ९—महल। १०—बाग। ११—हाथी आदि। १२—मद से अन्धा। १३—ठगाई। १४—त्याग। १५—स्त्री। १६—बड़ी। १७—बेहूदी।

स्थिर कर अन्तरात्मा में आत्म लाभ के लिये जो प्रभु का ध्यान लगाया जाता है उसे सामायिक कहते है, अथवा समाधिपूर्वक आत्म ज्ञान के लिये जो प्रवृत्ति है उसको सामायिक कहते हैं, इस (सामायिक) के चार भेद हैं—सम्यक्त्व सामायिक, सूत्र सामायिक, देश विरति सामायिक और सर्व विरति सामायिक, इनमें से सम्यक्त्व सामायिक उसको होता है कि जिसने सातों प्रकृतियों का क्षय अथवा क्षयोपशम किया है, सूत्र का विचार करना, पढ़ना, पढ़ाना अथवा तत्सम्बन्धी चर्चा करना, तथा निरन्तर ज्ञान के लिये उद्यम करना, इसका नाम सूत्र सामायिक है, ग्यारह प्रकृतियों का क्षयोपशम होने से देश विरति सामायिक होता है तथा सर्वविरति सामायिक साधु का होता है इसमें पन्द्रह प्रकृतियों[1] का क्षयोपशम होता है।

स्मरण रहे कि सामायिक प्रवृत्ति में मनुष्य को दुर्वासनाओं[2] की निवृत्ति और शुभ वासनाओं के प्रादुर्भाव[3] के लिये आत्मनिन्दन[4] अवश्य करना चाहिये, क्योंकि आत्मनिन्दन से शुभ संस्कार का प्रादुर्भाव होने से भविष्यत् में पाप-कार्य में प्रवृत्ति नहीं होती है, आत्मनिन्दन समय में मनुष्य को अपने मन में यह विचार करना चाहिये कि—हे आत्मा, तू अनादि काल से कुगुरु, कुदेव और कुधर्म में प्रवृत्त रह चुका है, रस लालसा[5] आदि विषयों के कारण तेरी दृष्टि मलीन हो रही है, कभी तू सम्यक्त्व-मोहनी की ओर दृष्टि डालता है, है, कभी मिश्र मोहनी की ओर मुड़ता है, कभी तू काम-राग, स्नेह-राग और दृष्टि-राग में अनुराग करता है, कभी ज्ञानविराधना, दर्शन विराधना और चारित्र विराधना में प्रवृत्त हो द्वेष का अनुसरण[6] करता है, कभी तू मनोदण्ड, वाग्दण्ड और कायदण्ड में प्रवृत्त होकर अहिंसा व्रत से

१—चारित्र मोहनीय की १२ प्रकृतियों का तथा दर्शन मोहनीय की ३ प्रकृतियों का, इस प्रकार १५ प्रकृतियों का। २—खराब इच्छाओं। ३—उत्पत्ति ४—आत्मा की निन्दा। ५—रसों की प्राप्ति की इच्छा। ६—अनुगमन।

कभी पूरा नहीं होगा, अरे जीव! तू अभिमान[१] में मर कर मैं मैं करता है, क्या तू नहीं जानता है कि किसी समय विष्ठा के अन्दर कीट रूप तू ही था? अब तू मान रूपी गज[२] पर सवार होकर मैं मैं करता है, देख! ब्राह्मी सुन्दरी बाई के समझाने पर सजल जैसे मानी का भी मान नेंक देर में ही इस प्रकार उतर गया था जैसे धोने से शरीर का मैल उतर जाता है, उसकी अपेक्षा तेरी क्या गिनती है? तू खूब समझ ले कि यदि तू इस मान का त्याग न करेगा तो तेरी बुरी दशा होगी, अरे जीव! भरत महाराज की ऋद्धि का तो विचार कर कि उनकी ऋद्धि कैसी थी और उनका सौभाग्य कैसा था, देख! उनके यहाँ चौदह रत्नों का निधान[३] था, बत्तीस हजार देश थे, बत्तीस हजार मुकुटबन्ध राजा उनके आधीन थे, उनके अन्तःपुर[४] में चौंसठ हजार रानियां थीं, एक एक किले में दो दो वाराङ्गनायें[५] निवास करती थीं, रानियों के महल अनुपम[६] छवि[७] से प्रकाशमान थे, उनके छ्यानवे करोड़ ग्राम थे, बीस हजार सोने और रूपे की खानें थीं, चौरासी लाख गज[८], अश्व[९] और रथ थे, छ्यानवे करोड़ पदाति[१०] थे, तीन लाख आयुधशालायें[११] थीं, चौरासी लाख कोटपाल[१२] थे, चौरासी लाख निशान थे, दस करोड़ ध्वजा और पताकायें थीं, पाँच लाख मनुष्य दीपक जलाने वाले थे, सेना के निवास के लिये छत्तीस हजार घर थे, उनके तीन करोड़ सेठ थे, उनके यहाँ तीन लाख बाजे प्रतिदिन बजते थे, चौदह हजार मेले लगते थे, तीन सौ साठ रसोईदार थे, तीन लाख वैद्य थे, उनका लश्कर अड़तालीस कोश में समाता था, चार करोड़ मन अन्न प्रतिदिन लगता था, दस लाख मन नमक लगता था, उनकी ऋद्धि[१३] का कहाँ तक वर्णन किया जावे, यदि ऋद्धि का अच्छे प्रकार से वर्णन

१—घमण्ड। २—हाथी। ३—खजाना। ४—रनिवास। ५—वेश्यायें। ६—अनोखी। ७—शोभा। ८—हाथी। ९—घोड़े। १०—पैदल। ११—हथियारों के घर। १२—कोतवाल। १३—सम्पत्ति।

अनतवार अनेक जनों के साथ में नाता जोड़ चुका है, अरे मूर्ख! तू अपनी उत्पत्ति की तरफ तो ध्यान दे, तूने कैसे २ दुःख भोगे हैं, नरक में भी अनतवार भटक चुका है, वहाँ यमराज की मार भी खा चुका है, दश प्रकार की क्षेत्र वेदना¹ को सह चुका है, अनेक घोर कष्टों का सहन कर चुका है, तू सागरों तक पड़ा २ पुकारता रहा तो भी तेरा उद्देश्य² पूरा नहीं हुआ, अरे! तू चार स्थावरों में भी असख्यात काल तक भटकता रहा है, वनस्पति काय में भी अनन्त काल तक भटक चुका है, तू अनत जन्म मरणों को कर चुका है, तू एक श्वासोच्छ्वास में साढे सत्रह भवों को कर चुका है, दो घड़ी में तू पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस (६५५३६) जन्म मरण कर चुका है, अरे मूर्ख! क्या तुझे यह मालूम नहीं है कि जब तेरा कुछ पुण्य का अकुर प्रकट हुआ था तब तू द्वीन्द्रिय³ होकर उसकी दो लाख जातियों में घूमता रहा और मलमूत्र में कीडारूप में जन्म लेकर अपने किये का फल भोगता रहा है, क्या तुझे वह दिन भूल गया है? अरे निर्लज्ज⁴ जीव! अब तो तू कुछ होश सभाल, अधिक पुण्य बढ़ने पर तू द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय⁵ हुआ था, त्रीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय⁶ हुआ, चतुरिन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय⁷ हुआ, अब तूने पुण्यवशात्⁸ मनुष्य जन्म प्राप्त किया है, इस मनुष्य जन्म में भी आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, पूर्ण आयु, पाँच इन्द्रियाँ तथा नैरोग्य शरीर, इत्यादि सर्व सामग्री तुझे प्राप्त हुई हैं, अब तो तू पौद्गलिक⁹ सुख की लुब्धता¹⁰ को छोड़ कर अपने कल्याण के लिये उद्यम कर, अरे जीव! जैसे कोई पुरुष कौए को उड़ाने के लिये हाथ में आये हुए चिन्तामणि रत्न को फेंक देता है इस प्रकार तू मनुष्य जन्म में प्राप्त हुए चिन्तामणि रत्न रूप धर्म को विषय भोग रूपी कौए को उड़ाने के लिये मत फेंक, नहीं तो तेरा उद्देश्य¹¹

१—क्षेत्र की तकलीफ। २—गरज, मतलब। ३—दो इन्द्रियों वाला। ४—बेशर्म। ५—तीन इन्द्रियों वाला। ६—चार इन्द्रियों वाला। ७—पाँच इन्द्रियों वाला। ८—पुण्य के कारण। ९—पुद्गलों के। १०—लोभ। ११—गरज, मतलब।

अनंतवार अनेक जनो के साथ में नाता जोड़ चुका है, अरे मूर्ख! तू अपनी उत्पत्ति की तरफ तो ध्यान दे, तूने कैसे २ दुःख भोगे हैं, तू नरक मे भी अनंतवार भटक चुका है, वहाँ यमराज की मार भी खा चुका है, दश प्रकार की क्षेत्र वेदना[1] को सह चुका है, अनेक घोर कष्टों का सहन कर चुका है, तू सागरों तक पड़ा २ पुकारता रहा तो भी तेरा उद्देश्य[2] पूरा नहीं हुआ, अरे! तू चार स्थावरों में भी असंख्यात काल तक भटकता रहा है, वनस्पति काय में भी अनन्त काल तक भटक चुका है, तू अनंत जन्म मरणों को कर चुका है, तू एक श्वासोच्छ्वास में साढ़े सत्रह भवों को कर चुका है, दो घड़ी मे तू पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस (६५५३६) जन्म मरण कर चुका है, अरे मूर्ख! क्या तुझे यह मालूम नहीं है कि जब तेरा कुछ पुण्य का अङ्कुर प्रकट हुआ था तब तू द्वीन्द्रिय[3] होकर उसकी दो लाख जातियों में घूमता रहा और मलमूत्र मे कीड़ारूप में जन्म लेकर अपने किये का फल भोगता रहा है, क्या तुझे वह दिन भूल गया है? अरे निर्लज्ज[4] जीव! अब तो तू कुछ होश संभाल, अधिक पुण्य बढ़ने पर तू द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय[5] हुआ था, त्रीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय[6] हुआ, चतुरिन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय[7] हुआ, अब तूने पुण्यवशात्[8] मनुष्य जन्म प्राप्त किया है, इस मनुष्य जन्म में भी आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, पूर्ण आयु, पाँच इन्द्रियाँ तथा नैरोग्य शरीर, इत्यादि सर्व सामग्री तुझे प्राप्त हुई हैं, अब तो तू पौद्गलिक[9] सुख की लुब्धता[10] को छोड़ कर अपने कल्याण के लिये उद्यम कर, अरे जीव! जैसे कोई पुरुष कौए को उड़ाने के लिये हाथ में आये हुए चिन्तामणि रत्न को फेंक देता है इस प्रकार तू मनुष्य जन्म में प्राप्त हुए चिन्तामणि रत्न रूप धर्म को विषय भोग रूपी कौए को उड़ाने के लिये मत फेंक, नहीं तो तेरा उद्देश्य[11]

१—क्षेत्र की तकलीफ। २—गरज, मतलब। ३—दो इन्द्रियों वाला। ४—बेशर्म। ५—तीन इन्द्रियों वाला। ६—चार इन्द्रियों वाला। ७—पाँच इन्द्रियों वाला। ८—पुण्य के कारण। ९—पुद्गलों के। १० लोभ। ११—गरज, मतलब।

कभी पूरा नहीं होगा, अरे जीव ! तू अभिमान[1] में भर कर मैं मैं करता है, क्या तू नहीं जानता है कि किसी समय विष्ठा के अन्दर कीट रूप तू ही था ? अब तू मान रूपी गज[2] पर सवार होकर मैं मैं करता है, देख ! ब्राह्मी सुन्दरी बाई के समझाने पर सजल जैसे मानी का भी मान नेक देर में ही इस प्रकार उतर गया था जैसे धोने से शरीर का मैल उतर जाता है, उसकी अपेक्षा तेरी क्या गिनती है ? तू खूब समझ ले कि यदि तू इस मान का त्याग न करेगा तो तेरी बुरी दशा होगी, अरे जीव ! भरत महाराज की ऋद्धि का तो विचार कर कि उनकी ऋद्धि कैसी थी और उनका सौभाग्य कैसा था, देख ! उनके यहाँ चौदह रत्नों का निधान[3] था, बत्तीस हजार देश थे, बत्तीस हजार मुकुटबन्ध राजा उनके आधीन थे, उनके अंत पुर[4] में चौंसठ हजार रानियां थीं, एक एक जिले में दो दो वाराङ्गनायें[5] निवास करती थीं, रानियों के महल अनुपम[6] छवि[7] से प्रकाशमान थे, उनके छयानवे करोड़ ग्राम थे, बीस हजार सोने और रूपे की खानें थीं, चौरासी लाख गज[8], अश्व[9] और रथ थे, छयानवे करोड़ पदाति[10] थे, तीन लाख आयुधशालायें[11] थीं, चौरासी लाख कोटपाल[12] थे, चौरासी लाख निशान थे, दस करोड़ ध्वजा और पताकायें थीं, पाँच लाख मनुष्य दीपक जलाने वाले थे, सेना के निवास के लिये छत्तीस हजार घर थे, उनके तीन करोड़ सेठ थे, उनके यहाँ तीन लाख बाजे प्रतिदिन बजते थे, चौदह हजार गोते लगते थे, तीन सौ साठ रसोईदार थे, तीन लाख वैद्य थे, उनका लश्कर अड़तालीस कोश में समाता था, चार करोड़ मन अन्न प्रतिदिन लगता था, दस लाख मन नमक लगता था, उनकी ऋद्धि[13] का कहाँ तक वर्णन किया जावे, यदि ऋद्धि का अच्छे प्रकार से वर्णन

१—घमण्ड । २—हाथी । ३—खजाना । ४—रनिवास । ५—वेश्यायें । ६—अनोखी । ७—शोभा । ८—हाथी । ९—घोड़े । १० पैदल । ११—हथियारों के घर । १२—कोतवाल । १३—सम्पत्ति ।

किया जावे तो एक बड़ा सा ग्रन्थ बन जावे, यहाँ पर तो चेतावनी देने के लिये थोड़ा सा कथन किया है, एक दिन जब भरत महाराज स्नानगृह में नहाने के लिये गये तब उन्होंने वहाँ इस प्रकार अनित्य भावना को भाया कि माता, पिता, भ्राता, स्त्री, पुत्र, स्वजन और परिवार आदि यह सब मेले के समान हैं, अहा ! इस संसार का स्वरूप ऐसा है जैसे कि बिजली की चमक होती है, सन्ध्या[१] का रंग होता है, जैसे कुञ्जर[२] के कान होते हैं तथा जैसे दर्भ[३] की अनी[४] पर जल का विन्दु होता है अर्थात् इन सबकी चंचलता[५] के समान संसार की भी चंचलता है, इस संसार का स्वभाव अत्यन्त ही अस्थिर है, इसलिये धिक्कार है मेरे विषय सुखों को, जोकि थोड़े ही समय में इस संसार में पानी के बुलबुले के समान बिलीन[६] हो जावेंगे, संसार में परम धन्य वे ही महानुभाव हैं जो कि श्रीतीर्थङ्कर महाराज के कहे हुए देश विरति और सर्वविरति धर्म का पालन करते हैं, दान देते हैं, शील का पालन करते हैं, तपस्या को करते हैं तथा सद्भावना को भाते हैं, इस प्रकार भावना को भाते ही भरत महाराज ने केवल ज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त किया। अरे जीव ! इस कथन का तात्पर्य यह है कि तू तो भरत महाराज के आगे तिलतुष[७] के समान भी नहीं है, फिर तू किस बात का मान करता है ? देख ! उस समय में तो त्रेसठ शलाका पुरुष थे, चरम शरीरी थे, चौथे आरे के जीव थे, तू तो इस पञ्चम काल में इस भरतक्षेत्र में कीटवत्[८] है, तेरी गिनती ही क्या है ? अरे जीव ! यह कर्म रूपी शत्रु अति बलवान् है, इसका विश्वास मत कर, सदा इससे बचा रह, यह तो चौदह पूर्वधारियों को भी उठाकर पटक देता है, यह अपनी शक्ति से ग्यारहवें गुण स्थान तक के जीव का अधःपतन[९] करता है फिर तेरी तो गिनती ही क्या है ? जब तक यह मोह तेरे पीछे लगा है तब तक तू आठ कर्म और एक सौ अड़तालीस प्रकृतियों को कभी नहीं जीत

१—शाम। २— [illegible] ४—नोक। ५—अस्थिरता।
६—नष्ट। ७—तिलका [illegible] । ९—नीचे गिरना।

कता है। अरे जीव ! तू सदा जिनप्रणीत[1] आगम का मनन किया कर, सन्तोष गुण का ग्रहण कर तथा शमता[2] रूपी जल से तृष्णा के दाह को शान्त करदे, ऐसा करने से ही तेरा उद्देश्य सफल होगा, देख, अपने मन में इस बात का विचार कर कि उन साधु और मुनिराजों को धन्य है जो कि पाँच समितियों तथा तीन गुप्तियों का त्रियोग से[3] पालन करते हैं, षट्काय जीवों की रक्षा करते हैं, सात भयों का निवारण करते हैं, आठ मदों का तिरस्कार करते हैं, नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य का यथार्थ[4] रीति से पालन करते हैं, दश प्रकार के यतिधर्म[5] का उद्योत[6] करते हैं, ग्यारह अंगों का अध्ययन[7] करते हैं, बारह बारह उपाङ्गों का मनन करते हैं तथा अपने सर्व सुखों का परित्याग कर यथार्थ विधि से चारित्र का पालन करते हैं, धन्य है उन मुनिराजों को जो कि प्रभु की कही हुई क्रिया का पालन करते हैं, तथा धन्य है उन श्रावकों को जो कि देश विरति हैं तथा जो प्रभु की आज्ञा के अनुसार धर्म का पालन करते हैं। प्रात काल उठ कर सामायिक को करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं, देव और गुरु का दर्शन करते हैं, प्रभु कथित द्वादशाङ्गी के वचनों का श्रवण करते हैं, गुरु की भक्ति करते हैं, देव और गुरु को वन्दना करते हैं, दान, शील और तप का सेवन करते हैं, पर्व तिथि में पोसा तथा देवसी प्रतिक्रमण करते हैं, तथा सर्वदा प्रभु की आज्ञा के अनुसार चलते हैं, मुझे भी इन शुभ कार्यों के करने का कब सुअवसर[8] प्राप्त होगा, ऐसा मन में विचार करने से तेरा भी शुभ परिणाम होगा, अरे आत्मा ! तूने अनेक निकृष्ट[9] काम किये हैं इसलिये तेरा बुरा हाल होगा, तेरे खोटे परिणामों को देखकर यही कहना पड़ता है कि तेरी खोटी गति होगी, अरे जीव ! तू शुद्ध मन से सामायिक को किया कर, उसमें निन्दा, विकथा और मद का परिहार[10] किया कर, अरे जीव ! तू

१—जिन कथित। २—शान्ति। ३—मनोयोग, वाग्योग तथा काय योग से। ४—ठीक। ५—साधुधर्म। ६—प्रकाश। ७—पठन। ८—अच्छा मौका। ९—खराब। १०—त्याग।

किया जावे तो एक बड़ा सा ग्रन्थ बन जावे, यहाँ पर तो चेतावनी देने के लिये थोड़ा सा कथन किया है, एक दिन जब भरत महाराज स्नानगृह में नहाने के लिये गये तब उन्होंने वहाँ इस प्रकार अनित्य भावना को भाया कि माता, पिता, भ्राता, स्त्री, पुत्र, स्वजन और परिवार आदि यह सब मेले के समान हैं, अहा! इस संसार का स्वरूप ऐसा है जैसे कि बिजली की चमक होती है, सन्ध्या[1] का रंग होता है, जैसे कुञ्जर[2] के कान होते हैं तथा जैसे दर्भ[3] की अनी[4] पर जल का बिन्दु होता है अर्थात् इन सबकी चंचलता[5] के समान संसार की भी चंचलता है, इस संसार का स्वभाव अत्यन्त ही अस्थिर है, इसलिये धिक्कार है मेरे विषय सुखों को, जोकि थोड़े ही समय में इस संसार में पानी के बुलबुले के समान विलीन[6] हो जावेंगे, संसार में परम धन्य वे ही महानुभाव हैं जो कि श्रीतीर्थङ्कर महाराज के कहे हुए देश विरति और सर्वविरति धर्म का पालन करते हैं, दान देते हैं, शील का पालन करते हैं, तपस्या को करते हैं तथा सद्भावना को भाते हैं, इस प्रकार भावना को भाते ही भरत महाराज ने केवल ज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त किया। अरे जीव! इस कथन का तात्पर्य यह है कि तू तो भरत महाराज के आगे तिलतुष[7] के समान भी नहीं है, फिर तू किस बात का मान करता है? देख। उस समय में तो त्रेसठ शलाका पुरुष थे, चरम शरीरी थे, चौथे आरे के जीव थे, तू तो इस पञ्चम आरा में इस भरतक्षेत्र में कीटवत्[8] है, तेरी गिनती ही क्या है? अरे जीव! यह कर्म रूपी शत्रु अति बलवान् है, इसका विश्वास मत कर, सदा इससे बचा रह, यह तो चौदह पूर्वधारियों को भी उठाकर पटक देता है, यह अपनी शक्ति से ग्यारहवें गुण स्थान तक के जीव का अधःपतन[9] करता है फिर तेरी तो गिनती ही क्या है? जब तक यह मोह तेरे पीछे लगा है तब तक तू आठ कर्म और एक सौ अड़तालीस प्रकृतियों को कभी नहीं जीत

१—सायं। २—हाथी। ३ डाभ। ४—नोक। ५—अस्थिरता। ६—नष्ट। ७—तिल का छिलका। ८—कीड़े के समान। ९—नीचे गिराना।

रता है। अरे जीव ! तू सदा जिनप्रणीत[1] आगम का मनन किया कर, न्तोष गुण का ग्रहण कर तथा शमता[2] रूपी जलसे तृष्णा के दाह को ान्त करदे, ऐसा करने से ही तेरा उद्देश्य सफल होगा, देख, अपने न में इस बात का विचार कर कि उन साधु और मुनिराजों को न्य है जो कि पाँच समितियों तथा तीन गुप्तियों का त्रियोग से[3] ालन करते हैं, षट्काय जीवों की रक्षा करते हैं, सात भयों का निवारण रते हैं, आठ मदों का तिरस्कार करते हैं, नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य का थार्थ[4] रीति से पालन करते हैं, दश प्रकार के यतिधर्म[5] का उद्योत[6] रते हैं, ग्यारह अंगों का अध्ययन[7] करते हैं, बारह बारह उपाङ्गों का ालन करते हैं तथा अपने सर्व सुखों का परित्याग कर यथार्थ विधि से चारित्र का पालन करते हैं, धन्य है उन मुनिराजों को जो कि प्रभु की कही हुई क्रिया का पालन करते हैं, तथा धन्य है उन श्रावकों को जो कि देश विरति हैं तथा जो प्रभु की आज्ञा के अनुसार धर्म का पालन करते हैं। प्रात:काल उठ कर सामायिक को करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं, देव और गुरु का दर्शन करते हैं, प्रभु कथित द्वादशाङ्गी के वचनों का श्रवण करते हैं, गुरु की भक्ति करते हैं, देव और गुरु को वन्दना करते हैं, दान, शील और तप का सेवन करते हैं, पर्व तिथि में पोसा तथा देवसी प्रतिक्रमण करते हैं, तथा सर्वदा प्रभु की आज्ञा के अनुसार चलते हैं, मुझे भी इन शुभ कार्यों के करने का कब सुअवसर[8] प्राप्त होगा, ऐसा मन में विचार करने से तेरा भी शुभ परिणाम होगा, अरे आत्मा ! तूने अनेक निकृष्ट[9] काम किये हैं इसलिये तेरा बुरा हाल होगा, तेरे खोटे परिणामों को देखकर यही कहना पड़ता है कि तेरी खोटी गति होगी, अरे जीव ! तू शुद्ध मन से सामायिक को किया कर, उसमें निन्दा, विकथा और मद का परिहार[10] किया कर, अरे जीव ! तू

१—जिन कथित। २—शान्ति। ३—मनोयोग, वाग्योग तथा काय योग से। ४—ठीक। ५—साधुधर्म। ६—प्रकाश। ७—पठन। ८—अच्छा मौका। ९—खराब। १०—त्याग।

शास्त्र का पठन, गुणन, और वाँचना किया कर कि जिससे तू भव सागर से पार उतरे, यदि तू स्वाध्याय मे प्रवृत्त[1] रहेगा तो ... का बहुमान करने से तुझे तत्त्वज्ञान होगा, यदि तू स्वाध्याय मे प्रवृत्ति[2] नहीं करेगा तो तू समझ ले कि मेरे ज्ञान के ऊपर ज्ञानवरणीय का पड़दा पड़गया है, अरे जीव ! देख, जो श्रुतज्ञान का आराधन[3] करते हैं तथा श्रुतज्ञान का बहुमान करते हैं उनके ज्ञान, दर्शन और चारित्र निर्मल हो जाते हैं उन्हीं को ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा उन्हीं को केवल ज्ञान और केवल दर्शन की प्राप्ति होती है तथा उन्हीं का मुक्तिरूपी रमणी[4] से पाणिग्रह[5] होता है, अरे जीव ! लुन लक्ष सुवर्ण खण्ड के दान करने से दाता को जो पुण्य होता है उतना ही पुण्य शुद्ध मन से सामायिक के करने से होता है, अरे जीव ! तू माया के भरोसे मत भूल, यह माया बडी ठगिनी है, यह ठग कर मनुष्य को अपने जाल मे ऐसा फँसाती है कि उससे निकलना कठिन हो जाता है, अरे जीव ! तू सामायिक मे प्रवृत्त होकर उत्तम भावनाओं को भाया कर कि जिससे तेरा कल्याण हो, क्योंकि कल्याणार्थी[6] जन सामायिक में उत्तम भावनाओं को ही भाया करते हैं, अरे देख ! आनन्द, कामदेव, शतपोखली तथा सेठ पूर्णदास, इत्यादि भद्रजन[7] किस प्रकार विशुद्ध भावना पूर्वक सामायिक में प्रवृत्त होते थे, अरे जीव ! तेरी तो यह सामायिक होती है कि तू सामायिक में बैठ कर घर के काम काज की चिन्ता करता है, परनिन्दा और विकथा को करता है, खिजता है, मन में, आर्त्त और रौद्र ध्यान करता है, इसलिये तेरा सामायिक निष्फल जाता है, अरे देख ! सामायिक उस मनुष्य का सफल होता है जो कि समता का परिणाम रखकर अपने और पराये को समान समझता है, जो कञ्चन[8] और पत्थर को समान गिनता है तथा

१—तत्पर। २—तत्परता। ३—सेवन। ४—स्त्री। ५—विवाह। ६—कल्याण चाहने वाला। ७—श्रेष्ठ। ८—सोना।

जो सत्य, मित[1] और हित वचन को बोलता है तात्पर्य यह है कि वही पुरुष यथार्थ रीति से सामायिक व्रत का पालन करता है, अरे जीव ! तू अपना भला चाहता है तथा दूसरे का बुरा चाहता है, यह तेरा व्यवहार सामायिक को विकृत[2] करता है, अरे जीव ! तू मृषावाद[3] का सर्वथा त्याग करदे, क्योंकि इससे बढ़कर आत्मसुख बाधक कोई कार्य नहीं है, अरे जीव ! तू अपने आत्मस्वरूप को तो देख, तेरा निज स्वरूप अजेय है, अस्पृश्य है, अघात्य है, अलक्षी है, अविनाशी है, अरे जीव ! तू अपने स्वरूप को ध्यान के साथ सँभाल तथा मन में इस बात को सोच कि तेरा शत्रु कौन है, तथा तेरा मित्र कौन है, अरे जीव ! कामादि समुदाय ही तेरा शत्रु है तथा केवल धर्म ही तेरा मित्र है, अरे जीव ! आठ कर्म ही तेरे शत्रु हैं तथा ज्ञान ही तेरा मित्र है, अरे जीव ! तू आठ कर्म रूप शत्रुओं को ज्ञान रूपी अग्नि के द्वारा शीघ्र ही भस्म कर दे, ऐसा करने से ही तेरा उद्देश्य[4] सफल होगा, अरे जीव ! तू इस बात का विचार कर कि मैं भव्य हूँ, अथवा अभव्य हूँ, अथवा दूरभव्य हूँ, अथवा बहुभवी हूँ, अरे मैं तो अपने को अभव्य ही दीखता हूँ, पीछे तो मेरे स्वरूप को ज्ञानी महाराज जानें, अरे जीव ! तुझ से दो घडी तक मन को एकाग्रकर सामायिक व्रत का भी पालन नहीं होता है, तू तो सामायिक में बैठ कर कभी खाज करता है, कभी कड़का निकालता है, कभी नखों से पृथिवी को करोदता है, कभी ऊंघ लेता है तथा कभी जभाई लेता है, अरे तेरे इस सामायिक से तुझे क्या लाभ होसकता है, अरे जीव ! तू विशुद्ध भाव से ज्ञानी महाराज से प्रार्थना कर कि जो वे कृपा करके तुझे सामायिक का पात्र[5] बना कर उसके करने की योग्यता प्रदान करें। इस प्रकार आत्म निन्दन करने से मनुष्य के हृदय में आत्मबल की जागृति[6] होती है, दुर्वासनाओं[7] का विनाश होता है, शुभ संस्कारों का

१—थोड़ा। २—विकारयुक्त। ३—मिथ्याभाषण। ४—गरज, मकसद। ५—योग्य। ६—जागरण। ७—खराब इच्छाओं।

शास्त्र का पठन, गुणन, और वाँचना किया कर कि जिससे तू भव-सागर से पार उतरे, यदि तू स्वाध्याय में प्रवृत्त[1] रहेगा तो श्रुतज्ञान का बहुमान करने से तुझे तत्त्वज्ञान होगा, यदि तू स्वाध्याय में प्रवृत्ति[2] नहीं करेगा तो तू समझ ले कि मेरे ज्ञान के ऊपर ज्ञानवरणीय कर्म का पड़दा पड़गया है, अरे जीव ! देख, जो श्रुतज्ञान का आराधन[3] करते हैं तथा श्रुतज्ञान का बहुमान करते हैं उनके ज्ञान, दर्शन और चारित्र निर्मल हो जाते हैं उन्हीं को ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा उन्हीं को केवल ज्ञान और केवल दर्शन की प्राप्ति होती है तथा उन्हीं का मुक्तिरूपी रमणी[4] से पाणिग्रह[5] होता है, अरे जीव ! सुन लक्ष सुवर्ण खण्ड के दान करने से दाता को जो पुण्य होता है उतना ही पुण्य शुद्ध मन से सामायिक के करने से होता है, अरे जीव ! तू माया के भरोसे मत भूल, यह माया बड़ी ठगिनी है, यह ठग कर मनुष्य को अपने जाल में ऐसा फँसाती है कि उससे निकलना कठिन हो जाता है, अरे जीव ! तू सामायिक में प्रवृत्त होकर उत्तम भावनाओं को भाया कर कि जिससे तेरा कल्याण हो, क्योंकि कल्याणार्थी[6] जन सामायिक में उत्तम भावनाओं को ही भाया करते हैं, अरे देख ! आनन्द, कामदेव, शंखपोखली तथा सेठ पूर्णदास, इत्यादि भद्रजन[7] किस प्रकार विशुद्ध भावना पूर्वक सामायिक में प्रवृत्त होते थे, अरे जीव ! तेरी तो यह सामायिक होती है कि तू सामायिक में बैठ कर घर के काम काज की चिन्ता करता है, परनिन्दा और विकथा को करता है, खिजता है, मन में, आर्त और रौद्र ध्यान करता है, इसलिये तेरा सामायिक निष्फल जाता है, अरे देख ! सामायिक उस मनुष्य का सफल होता है जो कि समता का परिणाम रखकर अपने और पराये को समान समझता है, जो कञ्चन[8] और पत्थर को समान गिनता है तथा

१—तत्पर। २—तत्परता। ३—सेवन। ४—स्त्री। ५—विवाह
६—कल्याण चाहने वाला। ७—श्रेष्ठ। ८—सोना।

करता है अथवा वचन के द्वारा कहकर उसे माँगता है, वह तीर्थङ्कर की आज्ञा का निवारण करता है।

श्रीसूत्रकृताङ्ग के सातवें अध्ययन के तीसरे उद्देशक में कहा है कि जो आहार चाहे विशुद्ध भी हो परन्तु उसमें एक कण भी आधाकर्मी का मिलाया गया हो तो ऐसे आहार को जो साधु सहस्र घरों के अन्तर पर भी भोग करता है वह उभयपक्ष सेवी[1] कहा जाता है तथा उसको अनन्त जन्म मरणों की प्राप्ति होती है।

स्थानाङ्ग के तीसरे स्थानक में तथा भगवतीसूत्र के पहिले शतक के नवें उद्देशक में कहा है कि जो साधु को अशुद्ध आहार पानी देता है वह अपूर्ण (अधूरी) आयु को बाँधता है।

दशवैकालिक के छठे अध्ययन में तथा प्रश्न व्याकरण के दशवें अध्ययन में छठे प्रश्न में कहा है कि साधु को बासे आहार तथा बासी तैलादि औषधि को नहीं रखना चाहिये, जो बासे आहार तथा बासी औषधि को रखता है वह संयम से भ्रष्ट होता है।

भगवतीसूत्र में कहा है कि—साधु होकर जो आहार का भोग करता हुआ उसका बखान[2] करता है तो मानों चारित्र को जलाने के लिये वह अंगार के समान आहार को करता है तथा उसकी बुराई करता है तो मानों धुआँ के समान आहार करता है।

आचाराङ्ग में कहा है कि साधु होकर गृहस्थ के साथ में आहार के लिये न जावे।

निशीथसूत्र में कहा है कि साधु गृहस्थ को साथ में लेकर स्वयं विहार न करे, न करावे और न उसका अनुमोदन करे, यदि ऐसा करे तो उसको एक मास का प्रायश्चित्त लगता है।

१—दोनों पक्षों का सेवन करने वाला। २—प्रशंसा करता है।

प्रादुर्भाव[1] होता है, अन्तःकरण की वृत्तियां निर्मल होती हैं, ज्ञानप्राप्ति के लिये वासना जागृत होती है, कर्त्तव्यपालन की ओर मन दौड़ता है, हृदय मे धर्म प्राप्ति की जागृति होती है तथा विवेक कलिका[2] के विकाश[3] से बुद्धि निर्मल होती है, किसी महात्मा ने ठीक कहा है कि:—

> त्यागि मान जो नर करत, आतम निन्दा धीर।
> बुद्धि तासु[4] निर्मल हुवे, शान्त होत ज्यों नीर॥१॥
> सत्य भाव से करहु तुम, आतम निन्द प्रवीन[5]।
> उदित ज्ञान यासें तुरत, होत कर्म रिपु छीन॥२॥
> ज्ञान उदय पुनि होत है, विरती को सदभास।
> जासों पावत जीव यह, अनुपम मुक्ति विलास॥३॥

२—साधु का आचार

साधु के आचार का विस्तार पूर्वक वर्णन भूरसुन्दरी विवेक विलास में किया जा चुका है, यहाँ पर कतिपय सूत्र प्रमाणों के द्वारा अति संक्षेप से उसका कथन किया जाता है:—

श्रीभगवतीसूत्र में कहा है कि जो साधु आधाकर्मी आहार का भोग करता है उससे षट्काय की दया नहीं हो सकती है, ऐसा साधु चार गति और चौबीस दण्डकरूप संसार में दीर्घ काल[6] तक भ्रमण करेगा।

उक्त सूत्र के पाँचवें शतक के छठे उद्देशक में कहा है कि—जो साधु होकर आधा कर्मी आहार के ऊपर मन चलाता है उसका चिन्तन

१—उत्पत्ति। २—ज्ञान की कली। ३—खिलाव। ४—उसकी। ५—चतुर। ६—बहुत समय।

दशवैकालिक तथा उत्तराध्ययन में कहा है कि साधु को पात्र नहीं रँगना चाहिये कोरनी नहीं करनी चाहिये, यदि वह ऐसा करेगा तो उसे चौमासी प्रायश्चित्त लगेगा। साधु को आधाकर्मी ओघा और पात्र का सेवन भी नहीं करना चाहिये, यदि वह ऐसा करेगा तो तीर्थङ्कर की आज्ञा का लोपक गिना जावेगा। साधु को फस्त नहीं खुलवानी चाहिये, सिंगड़ी नहीं लगवानी चाहिये, लोहू नहीं निकलवाना चाहिये और न गृहस्थ से ये काम करवाने चाहियें, यदि वह ऐसा करेगा तो चौमासी प्रायश्चित्त का भागी होगा, हाँ साधु का कार्य साधु कर देवे तो कोई हर्ज की बात नहीं है, यदि साधु के कांटा लग जावे तो उसे गृहस्थ से नहीं निकलवाना चाहिये, नहरनी से नखों को नहीं कटवाना चाहिये, यदि साधु ऐसा करेगा तो भगवान् की आज्ञा से बाहर होगा, साधु को मैल नहीं उतारना चाहिये तथा पसीने को वस्त्रादि से नहीं पोछना चाहिये, यदि साधु ऐसा करेगा तो मासिक प्रायश्चित्त का भागी होगा, साधु को हाथ, पैर, कान, आँख, और दाँत आदि अंगों को अथवा शरीर को एक बार अथवा अनेक बार नहीं धोना चाहिये, यदि वह ऐसा करेगा तो मासिक प्रायश्चित्त का भागी होगा। रोगी, वृद्ध और तपस्वी साधु को छोड़कर हृष्ट पुष्ट साधु को गृहस्थ के घर नहीं बैठना चाहिये, यदि वह ऐसा करेगा तो कुशील[1] कहलावेगा।

दशवैकालिक अध्ययन में कहा है कि साधु को शोभा के लिये सुगंधित तैल आदि को नहीं लगाना चाहिये, यदि वह ऐसा करेगा तो चौमासी प्रायश्चित्त का भागी होगा। साधु को पार्श्वस्थादि की प्रशंसा[2] नहीं करनी चाहिये यदि वह ऐसा करेगा तो प्रायश्चित्त का भागी होगा, कुशील साधु को चातुर्वर्ण संघ में उपदेश नहीं करना चाहिये क्योंकि उसका उपदेश करना गधे के रेंकने के समान है, यदि साधु तप के विषय में चोरी करेगा तो तपचोर[3] होगा, वचन की

१—कुत्सित शीलवाला। २—तारीफ। ३—तप का चोर।

उत्तराध्ययन में कहा है कि जो साधु सूर्य का उदय होते समय अथवा अस्त होते समय आहार पानी करता है वह पापी श्रमण[1] कहलाता है।

उत्तराध्ययन के सत्रहवें अध्ययन में कहा है कि यदि उपभोग करने से आहार पानी बच जावे तो साधु उसे न रक्खे, यदि वह उसे रक्खेगा तो प्रायश्चित्त का भागी होगा, तथा साधु व साध्वी नित्यप्रति दूध, दही और घृत आदि का भोग करेगा तो पाप का भागी होगा।

आचाराङ्ग में कहा है कि—साधु होकर आधाकर्मी स्थानक का भोग न करे, यदि वह उसका भोग करेगा तो संसार में भ्रमण करेगा।

आचाराङ्ग आदि सूत्रों में कहा है कि—जो मकान साधु के निमित्त[2] लिपाया चुपाया गया हो या उसपर छप्पर बधाया गया हो, या जो मकान साधु के निमित्त बनवाया गया हो अथवा उस की मरम्मत कराई गई हो उसमें साधु को नहीं रहना चाहिये, यदि वह उसमें रहेगा तो उसे चौमासी प्रायश्चित्त होगा, साधु के लिये जितने उपकरण[3] रखने के लिये भगवान् ने कहा है यदि साधु उनसे अधिक उपकरणों को रक्खेगा तो उसे चौमासी प्रायश्चित्त लगेगा, तथा साधु को शोभा के निमित्त कपड़े को धोना तथा रंगना नहीं चाहिये यदि वह ऐसा करेगा तो संयम भ्रष्ट होगा।

आचाराङ्ग सूत्र में कहा है कि जिस वस्त्र में बराबर की रेखा चमकती हो, अथवा जो वस्त्र अधिक मूल्य[4] का हो उस वस्त्र का भोग साधु न करे, यदि वह उसका भोग करेगा तो संयम से भ्रष्ट[5] होगा।

निशीथ सूत्र में कहा है कि साधु को गृहस्थ से बोझ नहीं उठवाना चाहिये, यदि वह उससे बोझ का उठवावेगा तो प्रायश्चित्त का भागी होगा।

१—साधु। २—वास्ते। ३—पात्र आदि। ४—कीमत। ५—पतित।

दशवैकालिक तथा उत्तराध्ययन में कहा है कि साधु को पात्र नहीं रँगना चाहिये कोरनी नहीं करनी चाहिये, यदि वह ऐसा करेगा तो उसे चौरासी प्रायश्चित्त लगेगा। साधु को आधाकर्मी ओघा और पात्र का सेवन भी नहीं करना चाहिये, यदि वह ऐसा करेगा तो तीर्थङ्कर की आज्ञा का लोपक गिना जावेगा। साधु को फस्त नहीं खुलवानी चाहिये, सिंगडी नहीं लगवानी चाहिये, लाहू नहीं निकलवाना चाहिये और न गृहस्थ से ये काम करवाने चाहियें, यदि वह ऐसा करेगा तो चौमासी प्रायश्चित्त का भागी होगा, हाँ साधु का कार्य साधु कर देवे तो कोई हर्ज की बात नहीं है, यदि साधु के काटा लग जावे तो उसे गृहस्थ से नहीं निकलवाना चाहिये, नहरनी से नखों को नहीं कटवाना चाहिये, यदि साधु ऐसा करेगा तो भगवान् की आज्ञा से बाहर होगा, साधु को मैल नहीं उतारना चाहिये तथा पसीने को वस्त्रादि से नहीं पोछना चाहिये, यदि साधु ऐसा करेगा तो मासिक प्रायश्चित्त का भागी होगा, साधु को हाथ, पैर, कान, आँख, और दाँत आदि अगों को अथवा शरीर को एक वार अथवा अनेक वार नहीं धोना चाहिये, यदि वह ऐसा करेगा तो मासिक प्रायश्चित्त का भागी होगा। रोगी, वृद्ध और तपस्वी साधु को छोड़कर हृष्ट पुष्ट साधु को गृहस्थ के घर नहीं बैठना चाहिये, यदि वह ऐसा करेगा तो कुशील[1] कहलावेगा।

दशवैकालिक अध्ययन मे कहा है कि साधु को शोभा के लिये सुगंधित तैल आदि को नहीं लगाना चाहिये, यदि वह ऐसा करेगा तो चौमासी प्रायश्चित्त का भागी होगा। साधु को पार्श्वस्थादि की प्रशसा[2] नहीं करनी चाहिये यदि वह ऐसा करेगा तो प्रायश्चित्त का भागी होगा, कुशील साधु को चातुर्वर्ण्य सघ में उपदेश नहीं करना चाहिय क्योंकि उसका उपदेश करना गधे के रेंकने के समान है, यदि साधु तप के विषय में चोरी करेगा तो तपश्चोर[3] होगा, वचन की

१—कुत्सित शीलवाला। २ —तारीफ। ३—तपका चोर।

चोरी करेगा तो वचन चोर होगा, यदि गुण रहित होकर गुणवान् साधु के रूप को धारण करेगा तो रूप का चोर होगा, तथा जो आचार हीन होकर अपने को आचारवान्[1] बतलावेगा तो वह आचार चोर होगा, इस प्रकार का चोर होकर भी जो साधु अपनी चोरी को गुप्त रक्खेगा उसे प्रकाशित नहीं करेगा तो वह आचार का चोर बनेगा, यदि साधु सूत्र के अर्थ की चोरी करेगा तो वह भाव चोर बनेगा तथा वह किलमेषी देवता में जावेगा और वहाँ से च्युत[2] होकर नरकगति व तिर्यग गति में जावेगा तथा उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी। वन्दना और स्तुति करने पर साधु को हर्ष[3] नहीं करना चाहिये, निन्दा को सुनकर शोक[4] नहीं करना चाहिये, अपने सत्कार और सम्मान की इच्छा मन में कभी नहीं रखनी चाहिये, चारों विकथाओं में से एक भी विकथा को नहीं करना चाहिये, द्रव्य निन्दा और भाव निन्दा को कभी नहीं करना चाहिये, साधु को सर्वदा निर्मम (ममता रहित) होना चाहिये तथा राग द्वेष का सर्वथा त्याग करना चाहिये क्योंकि ऐसे ही अनगार[5] मुक्ति के अधिकारी होते हैं।

जो साधु कुशील और आचार भ्रष्ट होता है वह सड़े कान वाली कुत्ती के समान होता है, जिस प्रकार सड़े कान वाली कुतिया जहाँ जाती है वहीं उसे दुत्कार ही मिलता है इसी प्रकार आचार भ्रष्ट[6] और दुराचारी[7] साधु जहाँ जाता है वहीं उसका अपमान[8] होता है, जिस प्रकार शूकर[9] का बच्चा अमृतकुण्ड को छोड़कर मल से आपूत[10] गढ़े में ही अपना मुंह डालता है कारण यह है कि उसका जातिस्वभाव ही ऐसा होता है इसी प्रकार दुराचारी साधु शुद्ध संयम का त्याग कर अत्याचार और दुराचार में प्रवृत्त होता है, जो साधु संयम को स्वीकार कर चित्त को एकाग्र कर अच्छे प्रकार से उसका पालन नहीं करता है

१—आचार वाला। २—गिरकर। ३—आनन्द। ४—रंज। ५—साधु। ६—आचार से पतित। ७—दुष्ट व्यवहार वाला। ८—अनादर। ९—सुअर। १०—भरे हुए।

अपने को पाँचों इन्द्रियों के विषयों से नहीं हटाता है, राग और द्वेष रूपी बन्धन को नहीं तोड़ता है उसे कायर साधु जानना चाहिये वह अपना कल्याण कभी नहीं कर सक्ता है, जो साधु पांच समितियों तथा तीन गुप्तियों में रमण[1] नहीं करता है उसे श्री महावीर स्वामी के धर्म से अनभिज्ञ[2] जानना चाहिये, चाहें उसे साधु नाम धारण किये बहुत वर्ष क्यों न होगये हों तथा बहुत समय तक लोचादि क्लेश का भी जिसने सहन क्यों न किया हो परन्तु जिसका महाव्रत स्थिर नहीं है वह अपने आत्मा को संसार से पार नहीं कर सक्ता है जिस प्रकार हाथ की पोली (खाली) मुट्ठी व्यर्थ होती है, इसी प्रकार ज्ञान दर्शन और चारित्र से रहित साधु का आत्मा असार[3] है जैसे कांच का टुकड़ा वैडूर्य मणि की तरह दीखता है परन्तु उसमें वैडूर्य मणि के गुण नहीं होते हैं इसी प्रकार दुराचारी साधु नामधारी पुरुष रजोहरण[4] और मुखवस्त्रिका[5] आदि संयमोपकरणों का धारण कर साधु जैसा मालूम होता है परन्तु असंयम का त्याग और संयम का ग्रहण न करने से वह वास्तवमें साधु नहीं है, ऐसा पुरुष अनन्त भवों तक संसार में ही भ्रमण करेगा, नरकादि की वेदना[6] से उसकी निवृत्ति नहीं होगी, जैसे कोई महामूर्ख मनुष्य कालकूट विषको पीकरके आत्मसुख की अभिलाषा[7] करे उसी प्रकार जो पुरुष असंयम को संयम समझता है तथा हिंसा में धर्म को मानता है, उस मूर्ख को द्रव्यलिंगी[8] साधु समझना चाहिये, उसे शान्तिसुख की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है, बहुत से साधु नामधारी पुरुष ज्योतिष् निमित्त, स्वप्न, लक्षण, भूकम्पादि व्यवस्था, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, वैद्यक व्यवहार (चूर्ण गोली इत्यादि) करते व कराते हैं, उन्हें भी आचारभ्रष्ट[9] ही जानना चाहिये,वे लोग अपनी अज्ञानता[10] से इस बात को नहीं सोचते हैं कि हमारे ये काम परलोक में हमारे लिये

१—विहार। २—अनजान। ३—निष्फल। ४—ओघा। ५—मुहपत्ती। ६—कष्ट। ७—इच्छा। ८—द्रव्य के द्वारा लिंगों (चिह्नों) का रखने वाला। ९—आचार से पतित। १०—मूर्खता।

सहायक नहीं होंगे, इसलिये परलोक मे सहायता के लिये हमें संयम का पालन करना चाहिये, हमारे कहने का तात्पर्य* यह है कि अनेक साधु वेषधारी*-पुरुष साधुधर्म का आचरण* न कर संयम की विराधना* करते हैं ऐसे लोग, दोनों भवों में अपने ही आत्मा के विराधक* होते हैं।

३—चर्चा के बोल वा प्रश्नोत्तर।

श्री जैन सिद्धान्त के विषय में अनेक अल्प बुद्धि जन प्राय अनेक बातों में प्रश्न किया करते हैं, उनका यथासमय शास्त्र सिद्धान्तवेत्ता जन उन्हें उत्तर तो दिया ही करते हैं परन्तु तो भी उन प्रश्नकर्त्ता जनों का उस उत्तर से कभी तो सन्तोष होता भी है तथा कभी सन्तोष नहीं भी होता है। सन्तोष न होनेका कारण यह है कि प्रश्नकर्त्ता जनों को प्राय: शास्त्रीय ज्ञान तो होता नहीं है अतएव शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार जो उन्हें उत्तर दिया जाता है उससे उन्हें संतोष का न होना एक साधारण बात है, कभी २ असन्तोष का कारण यह भी देखा जाता है कि—उत्तरदाता केवल शास्त्रीय सिद्धान्त से ही उन्हें उत्तर देते हैं, उसमें युक्ति आदि की योजना नहीं करते हैं, उत्तर में युक्ति आदि की भी बड़ी आवश्यता होती है, क्योंकि शास्त्रीय सिद्धान्त के द्वारा उत्तर देते समय युक्ति आदि के द्वारा समझाने पर प्रश्नकर्त्ता का समाधान शीघ्र ही हो जाता है, इसका कारण यही है कि युक्ति आदि के द्वारा समझाने पर प्रश्न के सब पहलू हल हो जाते हैं।

श्री जैन सिद्धान्त अति गम्भीर महासागर के तुल्य है, उसके विषय में [illegible] प्रश्न उठ सकते हैं, उनका उत्तर

[illegible] वेष रखने वाले। [illegible] —व्यवहार। [illegible] करने वाले।

तो एक महान् ग्रन्थ बनाकर रखने से भी नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रश्न उत्पन्न होने का तो कोई ठिकाना ही नहीं है, यहाँ पर संक्षेप से उन प्रश्नों को उद्धृत कर[1] उनका उत्तर दिया जाता है कि जिनको साधारण लोग प्रायः किया करते हैं, प्रश्नों का उत्तर यहाँ पर शास्त्रीय[2] प्रमाण और युक्ति आदि के द्वारा दिया जाता है—आशा है कि प्रश्न कर्त्ताओं को उनके अनेक प्रश्नों के विषय में इन उत्तरों से अवश्य समाधान[3] होगा।

(प्रश्न)—संसार में जीव अधिक हैं अथवा शरीर अधिक हैं ?

(उत्तर)—जघन्यतया[4] एक एक जीव के पास तीन तीन शरीर होते हैं, इसलिये जीव थोड़े हैं तथा शरीर अधिक हैं।

(प्रश्न)—शरीर कितने प्रकार के हैं ?

(उत्तर)— शरीर पाँच प्रकार के हैं—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण।

(प्रश्न)—कृपा करके यह बतलाइये कि किन२ जीवों के कौन कौन से तीन २ शरीर होते हैं ?

(उत्तर)—सुनो—नारकी देवता के वैक्रिय, तैजस और कार्मण ये तीन शरीर होते हैं, पृथवी, जल, अग्नि, वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा संमूर्छिम पञ्चेन्द्रिय, इन सबके औदारिक, तैजस, और कार्मण, ये तीन शरीर होते हैं, बादर वायुकाय गर्भज- पञ्चेन्द्रिय जीव तथा तिर्यग जीव, इनके औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण, ये चार शरीर होते हैं तथा गर्भज मनुष्य के औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर होते हैं।

(प्रश्न)—आहारक शरीर एक समय में कितने होते हैं।

(उत्तर)—जघन्य[5] से एक दो वा तीन होते हैं तथा उत्कृष्टतया[6] दो हजार से नौ हजार तक होते हैं।

१—उद्धृत कर। २—शास्त्र। ३—सन्तोष। ४—कम से कम। ५—कम से कम। ६—अधिकता से।

सहायक नहीं होंगे, इसलिये परलोक में सहायता के लिये इसे संयम का पालन करना चाहिये, हमारे कहने का तात्पर्य[1] यह है कि जो साधु वेषधारी[2] पुरुष साधुधर्म का आचरण[3] न कर, संयम की विराधना[4] करते हैं ऐसे लोग दोनों भवों में अपने ही आत्मा के विराधक[5] होते हैं।

२—चर्चा के बोल वा प्रश्नोत्तर।

श्री जैन सिद्धान्त के विषय में अनेक अल्प बुद्धि जन प्रायः अनेक बातों में प्रश्न किया करते हैं, उनका यथासमय शास्त्र सिद्धान्त वेत्ता जन उन्हें उत्तर तो दिया ही करते हैं परन्तु तो भी उन प्रश्नकर्त्ता जनों का उस उत्तर से कभी तो सन्तोष होता भी है तथा कभी सन्तोष नहीं भी होता है। सन्तोष न होने का कारण यह है कि प्रश्नकर्त्ता जनों को प्रायः शास्त्रीय ज्ञान तो होता नहीं है अतएव शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार जो उन्हें उत्तर दिया जाता है उससे उन्हें संतोष का न होना एक साधारण बात है, कभी २ असन्तोष का कारण यह भी देखा जाता है कि—उत्तरदाता केवल शास्त्रीय सिद्धान्त से ही उन्हें उत्तर देते हैं, उसमें युक्ति आदि की योजना नहीं करते हैं, उत्तर में युक्ति आदि की भी बड़ी आवश्यकता होती है, क्योंकि शास्त्रीय सिद्धान्त के द्वारा उत्तर देते समय युक्ति आदि के द्वारा समझाने पर प्रश्नकर्त्ता का समाधान शीघ्र ही हो जाता है, इसका कारण यही है कि युक्ति आदि के द्वारा समझाने पर प्रश्न के सब फन्दे हल हो जाते हैं।

श्री जैन सिद्धान्त अति गम्भीर महासागर के तुल्य है, उसके विषय में अनभिज्ञ जनों को असंख्यात प्रश्न उठ सकते हैं, उनका उत्तर

१—मतलब। २—साधु का वेष धारण करने। ३—व्यवहार। ४—खण्डना, भंजन, विनाश। ५—विनाश करने वाले।

तो एक महान् ग्रन्थ बनाकर रखने से भी नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रश्न उत्पन्न होने का तो कोई ठिकाना ही नहीं है, यहाँ पर संक्षेप से उन प्रश्नों को उद्धृत कर[1] उनका उत्तर दिया जाता है कि जिनको साधारण लोग प्रायः किया करते हैं, प्रश्नों का उत्तर यहाँ पर शास्त्रीय[2] प्रमाण और युक्ति आदि के द्वारा दिया जाता है—आशा है कि प्रश्न कर्त्ताओं को उनके अनेक प्रश्नों के विषय में इन उत्तरों से अवश्य समाधान[3] होगा।

(प्रश्न)—संसार में जीव अधिक हैं अथवा शरीर अधिक हैं ?

(उत्तर)—जघन्यतया[4] एक एक जीव के पास तीन तीन शरीर होते हैं, इसलिये जीव थोड़े हैं तथा शरीर अधिक हैं।

(प्रश्न)—शरीर कितने प्रकार के हैं ?

(उत्तर)— शरीर पाँच प्रकार के हैं—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण।

(प्रश्न)—कृपा करके यह बतलाइये कि किन २ जीवों के कौन कौन से तीन २ शरीर होते हैं ?

(उत्तर)—सुनो—नारकी देवता के वैक्रिय, तैजस और कार्मण ये तीन शरीर होते हैं, पृथवी, जल, अग्नि, वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा संमूर्छिम पञ्चेन्द्रिय, इन सबके औदारिक, तैजस, और कार्मण, ये तीन शरीर होते हैं, बादर वायुकाय गर्भज पञ्चेन्द्रिय जीव तथा तिर्यग जीव, इनके औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण, ये चार शरीर होते हैं तथा गर्भज मनुष्य के औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर होते हैं।

(प्रश्न)—आहारक शरीर एक समय में कितने होते हैं।

(उत्तर)—जघन्य[5] से एक, दो वा तीन होते हैं तथा उत्कृष्टतया[6] दो हजार से नौ हजार तक होते हैं।

१—रखकर। २—शास्त्र। ३—सन्तोष। ४—कम से कम। ५—कम से कम। ६—अधिकता से।

सहायक नहीं होंगे, इसलिये परलोक में सहायता के लिये हमें संयम का पालन करना चाहिये, हमारे कहने का तात्पर्य[1] यह है कि अनेक साधु वेषधारी[2] पुरुष साधुधर्म का आचरण[3] न कर संयम की विराधना[4] करते हैं ऐसे लोग दोनों भवों में अपने ही आत्मा के विराधक[5] होते हैं।

३—चर्चा के बोल वा प्रश्नोत्तर।

श्री जैन सिद्धान्त के विषय में अनेक अल्प बुद्धि जन प्रायः अनेक बातों में प्रश्न किया करते हैं, उनका यथासमय शास्त्र सिद्धान्तवेत्ता जन उन्हें उत्तर तो दिया ही करते हैं परन्तु तो भी उन प्रश्नकर्त्ता जनों का उस उत्तर से कभी तो सन्तोष होता भी है तथा कभी सन्तोष नहीं भी होता है। सन्तोष न होनेका कारण यह है कि प्रश्नकर्त्ता जनों को प्रायः शास्त्रीय ज्ञान तो होता नहीं है अतएव शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार जो उन्हें उत्तर दिया जाता है उससे उन्हें सन्तोष का न होना एक साधारण बात है, कभी २ असन्तोष का कारण यह भी देखा जाता है कि—उत्तरदाता केवल शास्त्रीय सिद्धान्त से ही उन्हें उत्तर देते हैं, उसमें युक्ति आदि की योजना नहीं करते हैं, उत्तर में युक्ति आदि की भी बड़ी आवश्यता होती है, क्योंकि शास्त्रीय सिद्धान्त के द्वारा उत्तर देते समय युक्ति आदि के द्वारा समझाने पर प्रश्नकर्त्ता का समाधान शीघ्र ही हो जाता है; इसका कारण यही है कि युक्ति आदि के द्वारा समझाने पर प्रश्न के सब पहलू हल हो जाते हैं।

श्री जैन सिद्धान्त अति गम्भीर महासागर के तुल्य है, उसके विषय में अनभिज्ञ जनों को असंख्यात प्रश्न उठ सकते हैं, उनका उत्तर

१—मतलब। २—साधु का वेष रखने वाले। ३—व्यवहार। ४—अवहेलना, अपमान, तिरस्कार। ५—अपमान करने वाले।

(प्रश्न)—नारकी देवता को निद्रा होती है वा नहीं ?

(उत्तर)—नारकी देवता को निद्रा तो होती है, परन्तु वह मनुष्य की तरह निद्रा नहीं लेता है।

(प्रश्न)—मार्ग में गमन करते समय जीव के प्राण कितने होते हैं ?

(उत्तर)—मार्ग में गमन करते समय जीव से एक आयुः प्राण होता है।

(प्रश्न) मार्ग में गमन करते समय जीव के शरीर कितने होते हैं ?

(उत्तर)—मार्ग में गमन करते समय जीव के तैजस और कार्मण ये दो शरीर होते हैं।

(प्रश्न)—चारों गतियों में पर्याप्त[1] जीवों का आयु कितना है ?

(उत्तर)—उस समय में जिसका जितना आयु होता है उसमें से अन्तर्मुहूर्त कम होता है।

(प्रश्न)— सिद्ध के जीव का कौनसा काय होता है ?

(उत्तर)—सिद्ध का जीव जीवास्तिकाय में रहता है, अर्थात् धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्ति काय, लोकास्तिकाय ये चारों प्रदेश समान होते हैं।

(प्रश्न)—एक अंगुल के पोरुआ में जीव के कितने प्रदेश मिलते हैं ?

(उत्तर)—एक अंगुल के पोरुआ में जीव के असंख्यात[2] प्रदेश हैं तथा निगोद जीव के अनन्त प्रदेश हैं।

(प्रश्न)—सुना है कि अंगुल के पोरुआ में जीव के नौ भेद मिलते हैं, ये कौनसे नौ भेद हैं ?

(उत्तर)—एकेन्द्रिय सूक्ष्म बादर अपर्याप्त द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त संज्ञी पञ्चेन्द्रिय

१—पर्याप्तियों से युक्त। २—अगिनती।

(प्रश्न)—आहारक शरीर वाले एक जीव को अनेक भवों की अपेक्षा आहारक शरीर कितनी बार आता है ?

(उत्तर)—सब भवों में एक जीव उत्कृष्टतया चार बार करता है, चक्रवर्ती की पदवी एक जीव को संसार में उत्कृष्टतया दो बार मिलती है ।

(प्रश्न)—अनन्त कौन २ से पदार्थ हैं ?

(उत्तर)—सिद्ध, निगोद, पुद्गल, काल, वनस्पति जीव, जीव के भव, केवल ज्ञान तथा अलोक, ये सब अनन्त हैं । —

(प्रश्न)—मार्ग में गमन करते समय जीव के कितने योग होते हैं ।

(उत्तर)—मार्ग में गमन करते समय जीव के एक कार्मण योग होता है ।

(प्रश्न)—मार्ग में गमन करते समय जीव के उपयोग कितने होते हैं ।

(उत्तर)—मार्ग में गमन करते समय जीव के जघन्यतया[1] एक केवल ज्ञान का उपयोग होता है तथा उत्कृष्टतया[2] समुच्चय से दस उपयोग होते हैं ।

(प्रश्न)—वे दस उपयोग कौन से हैं ।

(उत्तर)—तीन अज्ञान, तीन ज्ञान, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन तथा केवल ज्ञान, ये दस उपयोग हैं ।

(प्रश्न)—जीव कितने गुण स्थानों में मरता है तथा कितने गुणस्थानों में नहीं मरता है ?

(उत्तर)—मिश्रव गुणस्थान क्षीणमोहनीय गुणस्थान, तथा सयोगी गुणस्थान इनमें जीव नहीं मरता है तथा दूसरे और ग्यारहवें गुणस्थान में जीव मरता है ।

१ न्यूनता से । २—अधिकता से ।

(प्रश्न)—भाषा किस से उत्पन्न होती है ?

(उत्तर)—शरीर से भाषा उत्पन्न होती है।

(प्रश्न)—भाषा आदि किस के पास रहती है ?

(उत्तर)—भाषा आदि जीव के पास रहती है।

(प्रश्न)—भाषा के पुद्गल कहाँ तक पहुँचते हैं ?

(उत्तर)—भाषा के पुद्गल अलोक तक जाकर अड़ जाते हैं।

(प्रश्न)—पाँच चारित्रों में जीव का एक भेद है तथा देशविरति में जीव का एक भेद है, उसे बतलाइये ?

(उत्तर)—संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त रूप एक भेद होता है।

(प्रश्न)—श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय तथा रसनेन्द्रिय की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग में होती है तथा उसमें घट घटती और बढ़ती नहीं है, स्पर्शेन्द्रिय की अवगाहना शरीर के अनुसार होती है, माता के रुधिर और पिता के शुक्र से शरीर का बन्धान होता है, वे रुधिर और शुक्र के पुद्गल कब तक रहते हैं।

(उत्तर)—वे पुद्गल आयुः पर्यन्त[1] रहते हैं।

(प्रश्न)—पञ्चेन्द्रियों में कितनी कामी[2] इन्द्रियाँ हैं, कितनी भोगी[3] इन्द्रियाँ हैं ?

(उत्तर)—दो इन्द्रियाँ कामी हैं तथा तीन इन्द्रियाँ भोगी हैं।

(प्रश्न)—कौनसी दो इन्द्रियाँ कामी हैं। तथा कौनसी तीन इन्द्रियाँ भोगी हैं ?

(उत्तर)—कान और आँख; ये दो इन्द्रियाँ कामी हैं तथा नाक, जीभ और त्वचा, ये तीन इन्द्रियाँ भोगी हैं।

(प्रश्न)—संसार में कामी जीव अधिक हैं अथवा भोगी जीव अधिक हैं, अथवा नो कामी और नो भोगी अधिक हैं ?

१—उम्र भर। २—काम करने वाली। ३—भोग करने वाली।

अपर्याप्त एकेन्द्रिय सूक्ष्मपर्याप्त सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, तथा एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त, ये नौ भेद जानने चाहियें।

(प्रश्न)—एक आकाश प्रदेश के ऊपर अजीव के कितने भेद होते हैं ?

(उत्तर)—एक आकाश प्रदेश के ऊपर अजीव के नौ भेद मिलते हैं—धर्मास्तिकाय, देश, प्रदेश, अधर्मास्तिकाय देश प्रदेश पुद्गलास्तिकाय स्कन्ध देश प्रदेश परमाणु और काल।

(प्रश्न)—केवल ज्ञान कहाँ तक होता है ?

(उत्तर)—ऊर्ध्वभाग[1] तथा अधोभाग[2] में चौदह रज्जुलोक तक होता है तथा तिर्यग्[3] भाग में एक रज्जु तक होता है।

(प्रश्न)—किन २ जीवों का वैक्रिय शरीर कितने समय तक रहता है ?

(उत्तर)—नारकी जीव जो वैक्रियरूप करता है वह (वैक्रियरूप) एक अन्तर्मुहूर्त से कम रहता है, वह (वैक्रियरूप) चार अन्तर्मुहूर्त तक रहता है, देवता जो वैक्रिय शरीर करता है वह (वैक्रिय शरीर) पन्द्रह दिन तक रहता है, वायु का जीव जो वैक्रिय शरीर करता है वह (वैक्रिय शरीर) एक अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

(प्रश्न)—वायु के जीव का वैक्रिय शरीर एक समय में कितना होता है ?

(उत्तर)—पल्योपम के असख्यातवें भाग में जितना समय होता है उतना ही वायु के जीव का वैक्रिय शरीर होता है।

(प्रश्न)—भाषा का संस्थान[4] किस प्रकार का होता है ?

(उत्तर)—भाषा का संस्थान वज्र के आकार[5] के समान होता है।

१—ऊपरी भाग। २—नीचे का भाग। ३ तिरछा भाग। ४—अवयव विभाग। ५—शक्ल।

(प्रश्न)—भगवती सूत्र के ग्यारहवें शतक के बारहवें उद्देशक में पोगल संन्यासी के अधिकार में कहा है कि विभंगज्ञानी जघन्यतया अंगुल के असंख्यातवें भाग को देखता है, ऊर्ध्व भाग में पाँचवें ब्रह्म-लोक तक देखता है, अधोभाग में केवलीगम्य विषय को विभंग ज्ञान से जानता है अवधिदर्शन से देखता है, दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता है, मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान, मत्य ज्ञान, श्रुताज्ञान, इनका दर्शन तो चक्षु अचक्षु है, अवधिज्ञान का अवधि दर्शन है, विभंगज्ञान का भी अवधि दर्शन है तथा केवल ज्ञान का केवल दर्शन है, परन्तु मनः पर्यवज्ञान का दर्शन कौन सा है ?

(उत्तर)—मनः पर्यवज्ञान का अचक्षुर्दर्शन है तथा कुछ अंश[1] चक्षुर्दर्शन का भी है।

(प्रश्न) किस रीति से उक्त बात मानी जाती है ?

(उत्तर)—मनः पर्यवज्ञान से मनका निर्मलत्व[2] होकर आत्मा की निर्मलता[3] होती है, यह जो मनका निर्मलत्व है वह चक्षुर्दर्शन तथा अचक्षुर्दर्शन रूप ही है, पीछे तो इस विषय में जो कुछ कथन बहुसूत्री का हो वही सत्य है। देखो तेरहवें गुणस्थान के अन्त में पहिले मनो-योग का निरोध[4] करता है, फिर वचन योग का निरोध करता है, पीछे काय योग का निरोध करता है, पीछे श्वासोच्छ्वास का निरोध करता है, पीछे चौदहवें गुणस्थान में आरूढ़ होता है तथा शैलेशी अवस्था का त्याग करता है।

(प्रश्न)—योगों का निरोध क्रिया से होता है अथवा क्रिया के बिना ही होता है ?

(उत्तर)—योगों का निरोध क्रिया से नहीं होता है, क्योंकि योग के बिना क्रिया नहीं होती है, योगों का निरोध तो आत्मा के

१—भाग, हिस्सा। २—निर्मलता, पवित्रता ३—सफ़ाई। ४—रुकावट।

(उत्तर) सब से थोड़े कामी जीव हैं।

(प्रश्न)—ऐसा क्यों है ?

(उत्तर)—देखो ! चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव कामी कहलाते हैं और वे कामी इसलिये माने जाते हैं कि उनके आँख और कान होते हैं, वे कामी जीव सब से थोड़े हैं, नो कामी नो भोगी[1] जीव अनन्तगुण हैं तथा उनकी अपेक्षा भोगी जीव अनन्त-गुण हैं।

(प्रश्न)—नो कामी नो भोगी जीवों की अपेक्षा भोगी जीव अनन्त गुण क्यों हैं ?

(उत्तर) देखो ! एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय, ये सब जीव भोगी कहलाते हैं, ये सब सिद्ध जीवों की अपेक्षा अनन्तगुण हैं।

(प्रश्न)—अवेदी जीव अधिक हैं अथवा अकषायी जीव अधिक हैं ?

(उत्तर)—अवेदी जीव अधिक हैं।

(प्रश्न)—अवेदी जीव अधिक क्यों हैं?

(उत्तर)—जो अकषायी जीव हैं वे सब अवेदी हैं, नवें गुण-स्थान के ऊपर के तीन भाग अवेदी हैं वे सकषायी होने पर भी अवेदी में ही मिलते हैं।

(प्रश्न)—चलते हुए वायु में जीव के कितने भेद हैं ?

(उत्तर)—बादर एकेन्द्रिय के अपर्याप्त और पर्याप्त, ये दो भेद हैं।

---

१ —जो न तो कामी हैं और न भोगी हैं उन्हें नो कामी नो भोगी कहते हैं, ऐसे सिद्धजीव होते हैं, तथा तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान के चरम शरीरी जीव भी नो कामी नो भोगी कहे जाते हैं।

(प्रश्न)—श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति में जीव के कितने भेद मिलते हैं ?

(उत्तर)—उत्कृष्टतया १२ भेद मिलते हैं अर्थात् सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, ये दो भेद नहीं मिलते हैं।

(प्रश्न)—परमाणु पुद्गल का संस्थान[1] कैसा है ?

(उत्तर)—इसका संस्थान अवक्तव्य[2] कहा गया है।

(प्रश्न) सम्यक्त्व के सहित जीव नरक में जाता है या नहीं ?

(उत्तर)—छः नरक तक जाता है, क्योंकि छः नरकों के मार्ग में जाते समय सम्यक्त्व होता है परन्तु सातवें नरक के मार्ग में जाते समय सम्यक्त्व नहीं होता है।

(प्रश्न)—साधु के गुणों में मनोगुप्ति, वचनगुप्ति तथा काय-गुप्ति को कहा गया है तथा मनः समिति, वचन समिति और काय समिति का भी कथन किया गया है, कृपा कर यह बतलाइये कि गुप्ति और समिति में क्या भेद है ?

(उत्तर)—पाप अर्थात् सावद्य कार्य से हटने और योगों के रोकने को गुप्ति कहते हैं तथा धर्म कार्य में योगों के जोड़ने को समिति कहते हैं।

(प्रश्न)—प्राणातिपात को आस्रव कहा है, उसे क्रिया भी कहा गया है तथा उसे पाप भी कहा गया है, कृपया यह बतलाइये कि आस्रव, क्रिया और पाप, इन तीनों में क्या भेद है ?

(उत्तर)—आस्रव में कार्य का त्याग नहीं होता है, परन्तु कार्य को करता नहीं है, तात्पर्य[3] यह है कि योग तो खुला रहता है परन्तु कार्य में प्रवृत्ति नहीं करता है, यही आस्रव का स्वरूप है, योग को जो व्यापार अर्थात् कार्य में जोड़ना है उसको क्रिया कहते हैं, तात्पर्य यह है कि योग के चलाने को क्रिया कहते हैं तथा जीव के प्रदेशों पर जो अशुभ पुद्गलों का लगना है उसको पाप कहते हैं।

१—आकृति विशेष। २—न कहने योग्य। ३—मतलब।

स्वभाव से होता है, देखो ! अक्रिय[1] होकर आत्मा योगों के व्यापार को रोकता है, तात्पर्य यह है कि आत्मा का जो निश्चलत्व[2] है वही जीव का स्वभाव है।

(प्रश्न)—मार्ग में चलने वाले जीव अधिक हैं अथवा सिद्ध अधिक हैं ?

(उत्तर)—मार्ग में चलने वाले जीव अधिक हैं, क्योंकि निगोद में समय २ पर अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं तथा च्युत होते हैं, इसलिये मार्ग में चलने वाले जीव सिद्धों से अनन्त गुण हैं।

(प्रश्न)—अनुत्तर विमानवासी देवों के देवियाँ नहीं हैं तो उनको ब्रह्मचारी क्यों नहीं कहा ?

(उत्तर)—देव के अव्रत नाम कर्म का उदय रहता है, अतः[3] अप्रत्याख्यान चतुष्क का उदय होता है, इसलिये व्रत के बिना ब्रह्मचारी नहीं कहे जा सकते हैं, हाँ मन्द[4] विषय अथवा उपशान्त विषय[5] कहे जाते हैं।

(प्रश्न)—उनका सुख तो अनन्त कहा गया है, तो यह बात कैसे सिद्ध होती है।

(उत्तर)—भोग के विषय से उपशान्त विषय का सुख अनन्त और अधिक होता है, इसलिये उनका सुख अनन्त कहा गया है।

(प्रश्न)—कोई पुरुष एक हाथ क्षेत्र का उल्लंघन करता है उसमें जितना समय लगता है, उस काल का समय अधिक है, अथवा एक हाथ नीचे का आकाश प्रदेश अधिक है ?

(उत्तर)—एक हाथ क्षेत्र का प्रदेश समय घटते २ असंख्याता अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी का समय पूरा हो जाता है अत काल प्रदेश की अपेक्षा क्षेत्र प्रदेश सूक्ष्म है।

१—क्रिया से रहित। २—स्थिरता। ३—इसलिये। ४—कम विषय वाले। ५ उपशम से युक्त विषय वाले।

ज्ञानावरणीय और मिथ्यात्वमोहनीय का जिसमें क्षयोपशम होता है उसको ज्ञान कहते हैं; परन्तु जिसमें ज्ञानावरणीय कर्म का तो क्षयोपशम होता है तथापि मिथ्यात्व मोहनीय का उदय होता है उसको अज्ञान कहते हैं, जैसे नेत्र की दृष्टि के निर्मल[1] होने पर भी धतूरे के रस का अञ्जन करने पर श्वेत[2] वस्तु भी पीली दीखती है, वह वास्तव में नेत्र का दोष नहीं है किंतु धतूरे के रस का अंजन करने से ऐसा होता है, इसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम तो निर्मल आँख के समान है, जो कि वस्तु का ज्ञान कराता है, परन्तु धतूरे के रस के अञ्जन के समान मिथ्यात्व मोहनीय का उदय है, उसके कारण विपरीत[3] ज्ञान होता है।

(प्रश्न)—शुक्ल पक्षी में और परीत संसारी में क्या भेद हैं ?

(उत्तर)—काल लवों के अधिक योग से अर्धपुद्गल देश कम काल जीव के लिये संसार कहा गया है, उसको शुक्लपक्षी कहते हैं, परीत संसारी जीव ने तो शुद्ध श्रद्धा रूप सम्यक्त्व को पाकर संसार को परीत किया है इसलिये उसको परीत संसारी कहते हैं। देखो ! शुक्ल पक्षी तो निगोद में भी होता है परन्तु परीत संसारी तो संज्ञिपञ्चेन्द्रिय पर्याप्तों में ही हो सकता है, फिर इसका निर्णय[4] तो बहु सूत्री ही कर सकते हैं; परीत के दो भेद हैं—काय परीत तथा संसार परीत, इनमें से काय परीत उसको कहते हैं कि जो जीव साधारण शरीर के बिना अलग २ होता है तथा जो संसार को परीत करता है उसको संसार परीत कहते हैं।

(प्रश्न)—दशाश्रुत स्कन्ध में श्रावक की ग्यारह प्रतिमायें कही गई हैं, उनमें से पहिली दर्शन प्रतिमा कही है। किंतु बहुत से लोग यह कहते हैं कि साधु और श्रावक की प्रतिमायें विच्छिन्न[5] हो गई हैं, यदि वे विच्छिन्न होगई हैं तो पहिली प्रतिमा शुद्ध सम्यक्त्व की कैसे हो सकती है ?

१—साफ। २—सफेद। ३—उलटा। ४—निश्चय। ५—नष्ट।

(प्रश्न)—सिद्ध का जीव जन्म और मरण को करता है अथवा नहीं करता है ?

(उत्तर)—सिद्ध का जीव जन्म और मरण को करता है।

(प्रश्न)—किस न्याय से ऐसा होता है ?

(उत्तर)—उपर्युक्त[1] कथन नय की अपेक्षा से है, तात्पर्य यह है कि नैगम नय की अपेक्षा से सिद्ध का जीव जन्म और मरण को करता है तथा एवम्भूत नय की अपेक्षा से सिद्ध का जीव जन्म और मरण को नहीं करता है, देखो ! नैगम नय की अपेक्षा से सब भव्य जीव सिद्ध के समान हैं, इन्हीं में निगोद के जीवों का भी ग्रहण होता है।

(प्रश्न)—तीनों लोकों का मध्य भाग किन २ स्थानों में है ?

(उत्तर)—समुच्चय विशिष्ट[2] लोक का मध्य भाग रत्न प्रभा पृथिवी घनोदधि घन वायतन वाय का उल्लंघन करता है नीचे आकाश है, उस आकाश के असंख्यातवें भाग का भी उल्लंघन करने के स्थान में लोक का मध्यभाग है, अधोलोक का मध्य भाग चौथी पङ्क प्रभा पृथिवि घनोदधि घन वायतन वाय, इन चारों का उल्लंघन करना चाहिये तथा चौथी पृथिवी का आकाश भी अवगाहन करना चाहिये, वहाँ पर है, ऊर्ध्वलोक का मध्य आयाम[3] पाँचवें देव लोक के रिष्टप्रन में है, तिर्यग् लोक का मध्यभाग मेरु पर्वत का मध्यभाग क्षुल्लक प्रतर है।

(प्रश्न)—मतिज्ञान, मत्यज्ञान, श्रुतज्ञान तथा श्रुताज्ञान ये सब ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ही उत्पन्न होते हैं तो फिर ज्ञान में और अज्ञान में क्या भेद है ?

(उत्तर)—यद्यपि ऊपर कहे हुए ज्ञान और अज्ञान, ये दोनों ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ही उत्पन्न होते हैं तथापि

१—ऊपर कहा हुआ। २—समुच्चय (समष्टि) से युक्त। ३—विस्तार।

है तो एक समय में दो हर्ष प्रद्योतन[1] नहीं हो सकते हैं, क्योंकि एक समय में मन में दो विषयों के अनुभव की स्थिति नहीं हो सकती है ?

(उत्तर)—यह बात संवेगियों से जाकर पूछो कि जो गाना, बजाना आदि आडम्बर रूप आरम्भ को करके अट्ठाई महोत्सव की धूम मचाते हैं।

(प्रश्न)—पाँचों लेश्यायें किसमें पाई जाती हैं ?

(उत्तर)—संज्ञी के अलखिया में पाँचों लेश्यायें पाई जाती हैं।

(प्रश्न)—ऐसा क्यों होता है ?

(उत्तर)—देखो ! चार लेश्यायें तो पृथिवी काय में मिलती हैं तथा एक लेश्या तेरहवें गुणस्थान में शुक्ल के नो संज्ञी तथा नो असंज्ञी में मिलती है।

(प्रश्न)—स्त्री वेद की स्थिति एक समय की किस प्रकार होती है ?

(उत्तर)—देखो ! जीव पहिले अवेदी[2] था, फिर वह पीछे को गिरा, फिर स्त्री वेद में एक समय तक ठहर कर फिर काल कर गया, इस प्रकार से स्त्री वेद की स्थिति एक समय की है। जीव तो वास्तव में अपौद्गलिक है, इन्द्रियादि के सहित जीव पौद्गलिक कहा जाता है तथा इन्द्रिय रहित जीव भी अपौद्गलिक कहा जाता है, तिर्यग् जीव का वैक्रियकरण अन्तर्मुहूर्त का है, मनुष्य का वैक्रियकरण चार अन्तर्मुहूर्त का है, एक बार वैक्रिय करण को करके अन्तर्मुहूर्त तक ठहर जाता है, फिर उसी में वैक्रिय करण को करता है, इस प्रकार तीन बार करता है, देवता सम्बन्धी विषय को भी इसी प्रकार से जानना चाहिये, परन्तु इस विषय में निश्चय तो केवलीगम्य[3] ही है।

(प्रश्न)—त्रसकाय का जीव जब त्रसकाय में ही रहता है तो उसे उत्कृष्टतया असंख्यात काल लगता है, यह बात किस प्रकार होती है ?

१—खुशी का प्रकट करना। २—वेद रहित। ३—केवली के जानने योग्य।

(उत्तर)—यद्यपि पहिली प्रतिमा मौजूद है तथापि द सम्यक्त्व और शङ्का व काँक्षा से रहित इस पञ्चम काल में उसक होना कठिन है, इस रीति से प्रथम प्रतिमा का ठिकाना लगना कठि है, इस विषय में तत्त्व तो केवलीगम्य[१] है।

(प्रश्न)—बहुत से सूत्रों में षड्द्रव्य का वर्णन है, इस विष में पूछना यह है कि द्रव्य किसको कहते हैं, गुण किसको कहते तथा पर्याय किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—वस्तु को द्रव्य कहते हैं, वस्तु का जो गुण है उस को गुण कहते हैं तथा पर्याय उसको कहते हैं कि जो द्रव्य और गु में हानि और वृद्धि के द्वारा मिलता है और पृथक् होता है।

(प्रश्न)—कृपया इस विषय को उदाहरण के द्वारा समझाइये

(उत्तर)—देखो ! गुड़ रूप जो पदार्थ है उसको द्रव्य कहते उसमें जो मीठापन है उसको गुण कहते हैं, उसका जो तौलना नापना है तथा जो घटना और बढ़ना है वही पर्याय है, फिर देखो घट रूप जो पदार्थ है वह द्रव्य है, वह जलादि पदार्थ को जो आश्रय देता है वही उसका गुण है तथा अनेक वस्तुओं को जो आश्र देता है वही पर्याय है।

(प्रश्न)—अट्ठाई महोत्सव किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—अट्ठाई महोत्सव आठ दिन का होता है।

(प्रश्न)—मल्लिनाथ भगवान् ने प्रथम प्रहर[२] में दीक्षा ली अ दूसरे प्रहर में उनको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ था, अब इन दो विषयों का अट्ठाई महोत्सव मिश्रित[३] किया जाता है या पृथक् पृथक् कि जाता है, यदि दोनों का महोत्सव मिश्रित किया जाता है तो व मिश्रित कैसे किया जा सकता है, क्योंकि महोत्सव नाम हर्ष प्रयोजन व

१—केवली से जानने योग्य। २—सहारा। ३—पहर। ४—मिल हुआ, इकट्ठा।

है तो एक समय में दो हर्ष प्रद्योतन[1] नहीं हो सकते हैं, क्योंकि एक समय में मन में दो विषयों के अनुभव की स्थिति नहीं हो सकती है ?

(उत्तर)—यह बात सजोगियों से जाकर पूछो कि जो गाना, बजाना आदि आडम्बर रूप आरम्भ को करके अट्ठाई महोत्सव की धूम मचाते हैं।

(प्रश्न)—पाँचों लेश्यायें किसमें पाई जाती हैं ?

(उत्तर)—संज्ञी के अलधिया में पाँचों लेश्यायें पाई जाती हैं।

(प्रश्न)—ऐसा क्यों होता है ?

(उत्तर)—देखो ! चार लेश्यायें तो पृथिवी काय में मिलती हैं तथा एक लेश्या तेरहवें गुणस्थान में शुक्ल के नो सज्ञी तथा नो असज्ञी में मिलती है।

(प्रश्न)—स्त्री वेद की स्थिति एक समय की किस प्रकार होती है ?

(उत्तर)—देखो ! जीव पहिले अवेदी[2] था, फिर वह पीछे को गिरा, फिर स्त्री वेद में एक समय तक ठहर कर फिर काल कर गया, इस प्रकार से स्त्री वेद की स्थिति एक समय की है। जीव तो वास्तव में अपौद्गलिक है, इन्द्रियादि के सहित जीव पौद्गलिक कहा जाता है तथा इन्द्रिय रहित जीव भी अपौद्गलिक कहा जाता है, तिर्यग् जीव का वैक्रियकरण अन्तर्मुहूर्त का है, मनुष्य का वैक्रियकरण चार अन्तर्मुहूर्त का है, एक बार वैक्रिय करण को करके अन्तर्मुहूर्त तक ठहर जाता है, फिर उसी में वैक्रिय करण को करता है, इस प्रकार तीन बार करता है, देवता सम्बन्धी विषय को भी इसी प्रकार से जानना चाहिये, परन्तु इस विषय में निश्चय तो केवलीगम्य[3] ही है।

(प्रश्न)—त्रसकाय का जीव जब त्रसकाय में ही रहता है तो उसे उत्कृष्टतया असंख्यात काल लगता है, यह बात किस प्रकार होती है ?

१—धुरी का प्रकट करना। २—वेद रहित। ३—केवली से जानने योग्य।

(उत्तर)—यद्यपि पहिली प्रतिमा मौजूद है तथापि दृढ़ सम्यक्त्व और शङ्का व कांक्षा से रहित इस पञ्चम काल में उसका होना कठिन है, इस रीति से प्रथम प्रतिमा का ठिकाना लगना कठिन है, इस विषय में तत्त्व तो केवलीगम्य[१] है।

(प्रश्न)—बहुत से सूत्रों में षड्द्रव्य का वर्णन है, इस विषय में पूछना यह है कि द्रव्य किसको कहते हैं, गुण किसको कहते हैं तथा पर्याय किसको कहते हैं?

(उत्तर)—वस्तु को द्रव्य कहते हैं, वस्तु का जो गुण है उसी को गुण कहते हैं तथा पर्याय उसको कहते हैं कि जो द्रव्य और गुण में हानि और वृद्धि के द्वारा मिलता है और पृथक् होता है।

(प्रश्न)—कृपया इस विषय को उदाहरण के द्वारा समझाइये।

(उत्तर)—देखो! गुड़ रूप जो पदार्थ है उसको द्रव्य कहते हैं उसमें जो मीठापन है उसको गुण कहते हैं, उसका जो तौलना है, नापना है तथा जो घटना और बढ़ना है वही पर्याय है, फिर देखो! घट रूप जो पदार्थ है वह द्रव्य है, वह जलादि पदार्थ को जो आश्रय[२] देता है वही उसका गुण है तथा अनेक वस्तुओं को जो आधार देता है वही पर्याय है।

(प्रश्न)—अट्ठाई महोत्सव किसको कहते हैं?

(उत्तर)—अट्ठाई महोत्सव आठ दिन का होता है।

(प्रश्न)—मल्लिनाथ भगवान् ने प्रथम प्रहर[३] में दीक्षा ली थी, दूसरे प्रहर में उनको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ था, अब इन दोनों विषयों का अट्ठाई महोत्सव मिश्रित[४] किया जाता है या पृथक् पृथक् किया जाता है, यदि दोनों का महोत्सव मिश्रित किया जाता है तो वह मिश्रित कैसे किया जा सकता है, क्योंकि महोत्सव ज्यमहर्ष प्रयोजन का

१—केवली से जानने योग्य। २—सहारा। ३—पहर। ४—मिला हुआ, इकट्ठा।

(प्रश्न)—यह बात किस प्रकार मानी जाती है ?

(उत्तर)—देखो ! जब मनुष्य अथवा तिर्यग् में वैक्रिय को करता है तब वह उसमें अन्तर्मुहूर्त्त तक रह कर काल कर जाता है, वहाँ से वह सातवीं नारकी में जाता है, बस इसी कारण से उक्त विषय को जानना चाहिये । सर्वार्थ सिद्धि को जाने वाला जीव पूर्वभव में वैक्रिय को नहीं करता है, इसका कारण यह है कि अप्रमादी[1] जीव सर्वार्थ सिद्धि में जाता है, तात्पर्य[2] यह है कि दशवें तथा ग्यारहवें स्थानक का स्वामी ही सर्वार्थ सिद्धि में जाता है, इसलिये तिर्यग् जीव तो अन्तर्मुहूर्त्त की आयु वाला जीव होने से सातों नारकियों में जाता है, अन्तर्मुहूर्त्त की आयु वाला मनुष्य पहिली नारकी में जाता है, जब तिर्यग् जाति जीव तिर्यग् जाति में से उत्पन्न होता है तब उसको अप्रतिमा कहा जाता है तथा जो शेष तीन गतियों में से जाता है उसको प्रतिमा कहा गया है ।

(प्रश्न)—शास्त्रों में आठ प्रमाणों का वर्णन है, उनमें से पहिला प्रमाण पल का है, दूसरा प्रमाण सागर का है, तीसरा प्रमाण सूची का है, इन तीनों प्रमाणों के विषय में कुछ कथन कीजिये कि ये किस प्रकार माने जाते हैं ?

(उत्तर)—इस विषय का वर्णन असत्कल्पना[3] के द्वारा किया जाता है, देखो ! एक अगुल के नीचे पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस रखने से जो परिमाण होता है, इतने ही परिमाण वाली एक अगुल के नीचे सूची है, आकाश प्रदेश लोक में असख्यात प्रतरों को जानना चाहिये, उन्हीं को एक एक आकाश का प्रतर कहा गया है ।

(प्रश्न)—प्रतर किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस (६५५३६) आकाश प्रदेश एक अगुल के नीचे होते हैं, उन ६५५३६ को ६५५३६ से

१—प्रमाद से रहित । २—मतलब । ३—असत्य कल्पना ।

(उत्तर)—उक्त विषय तेज और वायु के जीवों की अपेक्षा से जानना चाहिये, यह विषय जीवाभिगम सूत्र में कहा गया है।

(प्रश्न)—स्त्री स्त्रीत्व[1] में निरन्तर कितने समय तक रहती है?

(उत्तर)—एकादेश की अपेक्षा सो ११० पल प्रत्येक पूर्व कोटि तक रहती है।

(प्रश्न)—यह बात किस प्रकार मानी जाती है?

(उत्तर)—वह पचपन पचपन पलों के दो भव तो देवी के करती है तथा छः भव और भी कोटि कोटि पूर्व के करती है, इस प्रकार उक्त विषय को जान लेना चाहिये, तात्पर्य यह है कि जिसकी जितनी स्थिति होती है उतनी ही कही जाती है, आठ भवों से अधिक भवों को नहीं करती है, संहरण[2] की अपेक्षा से एक एक स्त्री की स्थिति जघन्यतया अन्तर्मुहूर्त की है, संहरण करने के बाद अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् काल कर जाती है तथा उत्कृष्टतया स्थिति तीन पल्य पूर्व कोटि की है।

(प्रश्न)—उक्त बात क्यों मानी जाती है?

(उत्तर)—देखो! कोटि पूर्व की पहिली स्थिति, उसका भोग किया, वहाँ से काल करने के बाद वहाँ ही उत्पन्न हो गई, अर्थात् तीन पल्योपम की युगलिनी होगई, इस प्रकार से उक्त विषय को जान लेना चाहिये।

(प्रश्न)—वैक्रिय का जीव यदि वैक्रिय में ही रहे तो उसकी स्थिति का क्या परिमाण है?

(उत्तर)—वैक्रिय का जीव यदि वैक्रिय में ही रहता है तो उसकी जघन्य[3] स्थिति एक समय की होती है तथा उत्कृष्ट[4] स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त अधिक तेंतीस सागर की होती है।

१—स्त्री भाव, स्त्रीपन। २—एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाया जाना। ३—कम से कम। ४—अधिक से अधिक।

जाननी चाहिये, जुगुलिया दो जाति के तिर्यंग् में होते हैं, अर्थात् स्थलचरों में और खेचरों में होते हैं, मनुष्य सातवीं नारकी के साथ साथ भव का कारण सातों नारकियों का निकला हुआ मनुष्य नहीं होता है, तीन विकलेन्द्रियों में दो दृष्टियाँ होती हैं, एक समय में दो मिथ्यादृष्टि तथा समदृष्टि अपर्याप्तों में मिलते हैं, परन्तु वे अपर्याप्तों[1] में काल नहीं करते हैं, किन्तु जिन अपर्याप्तों में होते हैं उन्हीं में काल को पाते हैं, देवता, पृथिवी, जल, वनस्पति में आता है परन्तु अपर्याप्त काल को नहीं करता है, एक आकाश प्रदेश पर सूक्ष्म अनन्त प्रदेशियाँ रहती हैं, एक आकाश प्रदेश पर एक परमाणु तथा प्रदेशी स्कन्ध, इस प्रकार से चार पाँच संख्यात असंख्यात अनन्त प्रदेशी स्कन्धों पर बैठने वाला होता है, अथवा एक आकाश प्रदेश पर अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध तथा असंख्य प्रदेशी के संख्यात प्रदेशी के प्रदेशों को जानना चाहिये, तमस्काय, अरुणोवर समुद्र से बढ़कर संख्यात योजनों के सतह सौ इकीस योजनों तक समश्रेणि एक प्रदेश हैं उनमें से कई एक तो समश्रेणि[2] की अपेक्षा से कहे गये हैं वहाँ तो संख्यात योजनों की समश्रेणि है, यह जानना चाहिये।

(प्रश्न)—संभोग के कितने भेद हैं ?

(उत्तर)—संभोग के १२ भेद हैं, उपधि सूत्र, अहार, हस्त-संयोजन, दिलाना, आमन्त्रण, खड़े होना, वन्दना करना, वैयावृत्य, एक स्थान में रहना, एक आसन पर बैठना तथा आलाप और संलाप करना।

(प्रश्न)—किनको वाचना नहीं देनी चाहिये ?

(उत्तर)—जो विगय[3] को खावे, विनय को न करे तथा कषायों का उपशाम न करे, इन तीनों को वाचना नहीं देनी चाहिये।

१—पर्याप्तियों से रहित। २—समान श्रेणि (पङ्क्ति) वाले। ३—विकृत भोजन।

गुणन किया जाता है तब वह प्रतर बन जाता है, उस प्रतर को ६५५३६ से फिर गुणा करना चाहिये उसको घन कहते हैं, तथा समस्त लोक के आकाश प्रदेश की जो श्रेणि[1] है उसको सूची कहते हैं, समस्त लोक के चारों तरफ के सूक्ष्म भाग को प्रतर कहते हैं, प्रतर को सूची के साथ में गुणा करने से जो होता है उसको लोक का घन कहते हैं, ऊर्ध्व देश में अनन्त गुण मेरु स्फटिक में चार प्रदेशियाँ दीखती हैं, वहाँ काल रहता है, उन चार प्रदेशियों के ऊर्ध्व भाग के ऊपर चार प्रदेशों में अनन्त जीवों के प्रदेश हैं, उन प्रदेशों के ऊपर काल का समय रहता है, उसको अनन्त कहा गया है, अधो लोक में काल नहीं तथा पहिली और दूसरी नारकी में जो मनुष्य अथवा तिर्यग् जाते हैं उनमें छ सिद्ध पाये जाते हैं, तीसरी नारकी में पाँच पाये जाते हैं, इस प्रकार से प्रत्येक नारकी में कमती करते जाना चाहिये, इस प्रकार से सातवीं नारकी में एक पाया जाता है तथा वज्र ऋषभ नाराच सहनन को प्राप्त होता है, तिर्यग् जीव तो जघन्य अंगुल के असख्यात के असख्यातवें भाग की अवगाहना करता है तथा उत्कृष्टतया हजार योजन वाले समूचे प्रदेश की अवगाहना करता है, यदि मनुष्य प्रथम नारकी में जाता है तो जघन्यतया प्रत्येक अगुल वाला होता है तथा उत्कृष्टतया पाँच सौ धनुष वाला होता है, उसकी अपेक्षा जघन्यतो प्रत्येक मास वाला होता है तथा उत्कृष्टतया पूर्व कोटि वाला होता है, दूसरी नारकी में जघन्यतया[2] प्रत्येक हाथ वाला जीव होता है तथा उत्कृष्टतया[3] पाँच सौ धनुष् वाला होता है, उसकी अपेक्षा जघन्य प्रत्येक वर्ष वाला तथा उत्कृष्ट पूर्व कोटि वाला होता है, इसी की अपेक्षा से नौ २ गर्भो को जानना चाहिये, जुगुलिया मनुष्य तथा तिर्यग् देवता में जाते हैं, वे अपनी स्थिति से कम स्थिति को तो पा लेते हैं परन्तु अधिक स्थिति को नहीं पाते हैं, नाग कुमारों में पाँच पल्योपम कम स्थिति कही है, यह स्थिति तीन पल्योपमकी तो यहाँ की

१—पंक्ति। २—कम से कम। ३—अधिक से अधिक।

(प्रश्न)—नारकी देवता, जुगलिया मनुष्य तथा जुगलिया तिर्यञ्च, ये परभव का आयु कब बाँधते हैं ?

(उत्तर)—ये सब छः मास तक रहते हैं, पीछे परभव का आयु बाँधते हैं, बाकी तीसरे भाग में अन्तर्मुहूर्त पहिले आयु को बाँधते हैं ?

(प्रश्न)—द्रव्य परमाणु किस को कहते हैं ?

(उत्तर)—जो द्रव्य की अपेक्षा एक द्रव्य की अवगाहना करता है उस परमाणु को भाव की अपेक्षा परमाणु नहीं कहना चाहिये, काल की अपेक्षा यदि एक समय की स्थिति होती है तो काल का परमाणु बनता है, किन्तु यदि वह एक समय से अधिक समय वाली होती है तो काल का परमाणु नहीं बनता है।

(प्रश्न)—क्षेत्र परमाणु किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—जो परमाणु एक आकाश प्रदेश का अवगाहन[1] करता है उसको क्षेत्रपरमाणु कहते हैं, देखो ! यदि अनन्त प्रदेशी स्कन्ध आकाश पर बैठता है तो वह द्रव्य का तो परमाणु नहीं है किन्तु क्षेत्र का परमाणु है, तथा काल की अपेक्षा जो एक समय की स्थिति है उस अनन्त प्रदेशी की तो काल की अपेक्षा स्थिति होती है, उसे काल-परमाणु कहते हैं तथा भाव की अपेक्षा से जो एक गुण काला है उसे भाव परमाणु कहते हैं, काल की अपेक्षा जो एक समय की स्थिति का पुद्गल है उसको काल परमाणु कहा गया है, शेष भंगों[2] को भी इसी प्रकार जान लेना चाहिये तथा भाव की अपेक्षा जो परमाणु एक गुण काला है वह वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि जो २० बोल हैं उनमें से एक गुण काला हुआ, उसे १९ बोलों का तो अपरमाणु कहना चाहिये तथा एक बोल का परमाणु कहना चाहिये, इसी प्रकार से सब भाँगों को जान लेना चाहिये, तथा छः प्रदेशी स्कन्ध के वर्ण का भंग इस प्रकार कहना चाहिये कि छः प्रदेशी स्कन्ध पाँच आकाश

१—मथन, स्थान का घेरना। २—भाँगों।

(प्रश्न)—वाचना की विधि कितनी हैं ?

(उत्तर)—वाचना की छः विधि हैं:—संहिता, पद, पदार्थ, पद विग्रह, वाचना और पृच्छना।

(प्रश्न)—श्रवण[1] की क्या विधि है ?

(उत्तर)—चुपका होकर श्रवण करना चाहिये, हुङ्कार देना चाहिये, "तथ्य वचन है" इस प्रकार कहना चाहिये, मन में सन्देह के उत्पन्न होने पर तर्क करना चाहिये, तर्क करने पर जो उत्तर गुरु के द्वारा प्राप्त हो उसका विचार करना चाहिये, विस्तारपूर्वक समझना चाहिये, उसका मन में धारण करना चाहिये तथा जब २ सन्देह उत्पन्न हो तब २ गुरु के पास जाकर विनय पूर्वक[2] पूछना चाहिये।

(प्रश्न)—कौन २ से पुद्गल किस २ इन्द्रिय के किस प्रकार लगते हैं ?

(उत्तर)—खरखरे पुद्गल सब से थोड़े चक्षुइन्द्रिय के लगते हैं तथा सब से अधिक स्पर्शेन्द्रिय[3] के लगते हैं, लहुए लहुए पुद्गल सबसे अधिक चक्षु इन्द्रिय के लगते हैं तथा सब से थोड़े पुद्गल स्पर्शेन्द्रिय के लगते हैं।

(प्रश्न)—कृपा कर के इन्द्रियों का बहुलत्त्व[4] बतलाइये ?

(उत्तर)—इन्द्रियों का बहुलत्त्व अंगुल का असंख्यातवां भाग है, सार पुद्गलों का ग्रहण करने के लिये पुद्गल को अंगुल के असंख्यातवें भाग का जानना चाहिये, श्रोत्रेन्द्रिय से लेकर स्पर्शेन्द्रिय तक जो इन्द्रियाँ पुद्गलों का ग्रहण करती हैं उन्हें अंगुल के असंख्यातवें भाग का जानना चाहिये, स्पर्शेन्द्रिय सर्व शरीर का आवरण[5] करती है इसलिये जहाँ उसका स्पर्श होता है उसे अंगुल का असंख्यातवां भाग का जानना चाहिये।

१—शास्त्र का सुनना। २—विनय के साथ। ३—त्वचा। ४—विस्तार। ५—आच्छादन।

(उत्तर)—पञ्च महा विदेहों में चार महाव्रत रूपी धर्म है, अरिहन्त को तीर्थकर्त्ता कहा गया है, एक एक वर्ष में चार चार तीर्थ हैं, इसलिये चारों वर्षों में सोलह तीर्थ हैं, अरिहन्तों को प्रवचनी कहा गया है तथा अरिहन्तों की प्ररूपित[1] द्वादशाङ्गी रूपी वाणी को प्रवचन कहा गया है।

(प्रश्न)—कती संचिया, अकती संचिया, अवत्तक संचिया और वलिया किन को कहते हैं?

(उत्तर)—दो से लेकर जहाँ तक असंख्यात पूरे नहीं होते हैं वहाँ तक कती संचिया कहे जाते हैं, जो एक समय में असंख्यात उत्पन्न होते हैं उनको अकती संचिया कहते हैं, तथा एक समय में जो एक उत्पन्न होता है उसको अवत्तग संचिया कहते हैं तथा घनोदधि में जो बादर अप्‌काय है, तथा जैसे परात का तला होता है उसे तो घनोदधि कहना चाहिये तथा जैसे परात का कना होता है उसे घनो-दधि वलिया कहना चाहिये।

(प्रश्न)—संज्ञी मनुष्य की स्थिति कितनी होती है?

(उत्तर)—संज्ञी मनुष्य की स्थिति जघन्योत्कृष्टरूप[2] से अन्त-र्मुहूर्त की होती है वह अपर्याप्त[3] काल कर जाता है, केवल साढ़े तीन पर्याप्तियों को बाँधता है, यदि वह श्वास को लेता है तो उच्छ्वास को नहीं लेता है, इस प्रकार साढ़े तीन पर्याप्तियाँ ही रहती हैं।

(प्रश्न)—चक्षुर्दर्शन मे जीव के कितने भेद हैं?

(उत्तर)—चक्षुर्दर्शन मे जीव के छः भेद हैं—परन्तु कोई आचार्य तीन भेद कहते हैं, वे केवल पर्याप्तों का ही ग्रहण करते हैं परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि अपर्याप्तों मे भी चक्षु-र्दर्शन होता है, देखो! चौंदरी में यद्यपि पाँच पर्याप्तियाँ हैं तथापि

१—कही हुई। २—जघन्य और उत्कृष्ट रूप से। ३—पर्याप्तियों से रहित।

प्रदेशों पर बैठा हुआ है, उनमें से एक परमाणु काला है, एक नीला है एक लाल है, एक पीला है तथा एक सफेद है, वह जो एक आकाश प्रदेश पर बैठा है, इस प्रकार से ७+८+९+१० सख्यात असख्यात और अनन्त प्रदेशी, इन सब में पाँच वर्ण मिलते हैं, उन्हें इस प्रकार से जानना चाहिये आठ स्पर्श, के भग जिस प्रकार कहे हैं, वे सब ही प्राय सब में तो अनन्त प्रदेशीस्कन्ध हैं उन सब को खरखरा जानना चाहिये। उक्तप्रदेश में थोड़ा बहुत सबही उक्त प्रकार से जानना चाहिये।

(प्रश्न)—छ लेश्याओं का उत्कृष्ट[1] स्थान कैसा होता है ?

(उत्तर)—छ लेश्याओं का उत्कृष्ट स्थान असख्यात होता है।

(प्रश्न)—यह असख्यात क्यों होता है ?

(उत्तर)—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट, ये तीन भेद हैं, इनके फिर प्रत्येक के तीन २ भेद हैं जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। देखो, जघन्य जघन्य, जघन्य मध्यम, जघ योत्कृष्ट, मध्यम जघन्य, मध्यम मध्यम, मध्योत्कृष्ट, उत्कृष्ट जघन्य, उत्कृष्ट मध्यम तथा उत्कृष्टोत्कृष्ट, इस प्रकार से कुल पूर्वोक्त[2] नौ भेद होते हैं, अब इन नौओं भेदों के फिर भी प्रत्येक जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट, ये तीन भेद होते हैं इस प्रकार से असख्यात भेद हो जाते हैं, पाँच स्थावर हैं, उनमें से चार स्थावरों में तो असख्यात जीव उत्पन्न होते हैं तथा असख्यात जीव, च्यवन को प्राप्त होते हैं, यह एक स्थान का कथन नहीं है, क्योंकि सब लोक में पृथिवी व्याप्त[3] है, इसलिये समुच्चयतया[4] इस विषय को जानना चाहिये तथा जो राई परिमाण पृथिवी काय है उसमें भी असख्यात जीव उत्पन्न होते हैं तथा च्युत[5] होते हैं, तात्पर्य यह है कि इन के असख्यात असख्यात भेद जानने चाहियें।

(प्रश्न)—पच्च महा विदेह के विषय में कुछ कथन कीजिये ?

१—उत्र म प्रधिक। २—पहले कहे हुए। ३—भरी [illegible]।
४—समुच्चय की रीति से। ५—पतित।

प्रकार से भाषा भी पुद्गलों को लेती जाती है तथा छोड़ती भी जाती है।

(प्रश्न)—जुगलियों के ज्ञान के विषय में कुछ कथन कीजिये।

(उत्तर)—जुगलिये जघन्य मति ज्ञान में, श्रुतिज्ञान में तथा अवधिज्ञान में नहीं होते हैं तथा मध्यम और उत्कृष्ट में होते हैं इस लिये उनको जघन्य मध्यम मध्यम ज्ञान होता है, उत्कृष्ट नहीं होता है।

(प्रश्न)—जघन्य अवधिज्ञान कब होता है ?

(उत्तर)—जघन्य अवधिज्ञान पैदा होते समय होता है तथा परभव[१] से लेकर जिसे आता है उसे मध्यम लेकर आता है।

(प्रश्न)—अनन्त भाग हीन किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—अनन्त के ढिगले में से एक का जो निकालना है उसको अनन्त भाग हीन कहते हैं।

(प्रश्न)—असंख्यात भाग हीन किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—अनन्तों की संख्यात ढेरियाँ करके उनमें से एक ढेरी का जो निकालना है उसे संख्यात भाग हीन कहते हैं।

(प्रश्न)—अनन्त गुणहीन किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—अनन्तों की आधी आधी ढेरी करके उसमें से एक ढेरी के निकालने को अनन्त गुणहीन कहते हैं।

(प्रश्न)—असंख्यात गुणहीन किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—अनन्तों की संख्यात ढेरियाँ करके उनमें से सब ढेरियों को निकाल लेना चाहिये, केवल एक ढेरी बाकी रहनी चाहिये, इसी को असंख्यात गुणहीन कहते हैं।

(प्रश्न)—संख्यात गुणहीन किसको कहते हैं ?

१—दूसरा भव।

जब कि इन्द्रियपर्याप्ति तीसरी है तो पहिली पर्याप्ति तो बंधती है यों तो जो चार पर्याप्तियों को बाँधता है उसे भी अपर्याप्त[1] ही कहना चाहिये, श्री प्रज्ञापना के पाँचवें पद की इस विषय में साची है, असंज्ञी मनुष्य मे चार उपयोग पाये जाते हैं—दो दर्शन और दो ज्ञान यदि इन चारों उपयोगों से युक्त है तो वह पर्याप्त तो नहीं हो सकता है।

(प्रश्न)—प्रतर किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—ऊपर के तिरछे लोक का जैसा चार सौ योजन का ऊपर एक आकाश प्रदेश सम चौरस एक रज्जु प्रमाण का है उसी को प्रतर जानना चाहिये।

(प्रश्न)—तिरछे लोक का ऊपर का प्रतर किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—उसी के ऊपर का जो आकाश है उसको ऊपर के तिरछे लोक का प्रतर कहा है, ये दोनों ही प्रतर संयुक्त[2] हैं।

(प्रश्न)—क्षायिक सम्यक्त्व वाला तथा उपशम सम्यक्त्व वाला जीव उत्कृष्टतया कितने भवों को करता है ?

(उत्तर)—क्षायिक सम्यक्त्व वाला जीव उत्कृष्टतया तीन भवों से अधिक भवों को नहीं करता है तथा उपशम सम्यक्त्व वाला जीव उत्कृष्टतया देशोनार्धपुद्गल तक रुलता[3] है।

(प्रश्न)—भाषा के पुद्गल किस प्रकार के हैं ?

(उत्तर)—भाषा के पुद्गल चतुः स्पर्शी[4] हैं तथा निकलने के बाद वे अष्ट स्पर्शी[5] हो जाते हैं।

(प्रश्न)—ऐसा क्यों होता है ?

(उत्तर)—इस विषय में घण्टा का दृष्टान्त जानना चाहिये, जैसे घण्टा पुद्गलों को लेता जाता है तथा उन्हें छोड़ता जाता है इसी

१—पर्याप्तियों वाला। २—मिले हुए। ३—भटकता है। ४—चार का स्पर्श करने वाले। ५—आठ का स्पर्श करने वाले।

चाहिये अर्थात् अवधिज्ञान और विभंग अज्ञान, इन दोनों को कहना चाहिये, क्योंकि यहाँ पर अवधि का समुच्चयतया पाठ है।

(प्रश्न)—श्रीभगवती सूत्र के आठवें शतक में पाँच विहारों का वर्णन है, कृपया उन विहारों को स्पष्टतया समझावें।

(उत्तर)—उक्त सूत्र में जो पाँच विहारों का वर्णन है उन्हें संक्षेप में इस प्रकार जानना चाहिये कि उन विहारों में से आगम विहारी के विषय में यह कहा गया है कि दश पूर्वधारी से लेकर चौदह पूर्वधारी तक तथा त्रिज्ञानी[1] और पञ्चज्ञानी[2] के विहार में जो चलता है उसको आगम विहारी कहते हैं, सूत्र की धारणा से जो चलता है उसको सूत्रविहारी कहते हैं, जो बहुसूत्री की आज्ञा में रहता है उसको आज्ञा विहारी कहते हैं अथवा बहुसूत्री विहारी कहते हैं, बहु सूत्री के पास रह कर तथा जिन भगवान् की आज्ञा मन में धारण करके उसी आज्ञा के अनुसार जो चलता है उसको धारणा विहारी कहते हैं तथा सर्वोत्तम आचार से व्यवहार करने वाले साधु के समान जो वर्त्ताव करता है उसको जीव-विहारी कहते हैं।

(प्रश्न)—सूक्ष्म वनस्पति में अनन्त जीव हैं अथवा प्रत्येक जीव हैं?

(उत्तर)—सूक्ष्म वनस्पति में अनन्त जीव हैं किन्तु[3] प्रत्येक जीव नहीं हैं।

(प्रश्न)—एक भव में श्रेणी कितने वार आती है?

(उत्तर)—एक भव में श्रेणी दो वार आती है, देखो! एक वार उपशम श्रेणी आती है, फिर जीव उससे गिर जाता है, तब फिर क्षायिक श्रेणी आती है, उसके कारण वह मुक्ति में चला जाता है, अथवा दोनों वार उपशम श्रेणी ही आती है, अनेक भवों में श्रेणी पाँच वार भी आती है, दो भवों में दो दो वार श्रेणी आती है तथा तीसरे भव में क्षायिक श्रेणी आती है, उसके आने से ही जीव मुक्ति में चला जाता है।

१—तीन ज्ञान वाला। २—पाँच ज्ञान वाला। ३—परन्तु, बल्कि।

(उत्तर)—अनन्तों की संख्यात ढेरियाँ करके सब को निकाल लेवे, केवल एक ढेरी को बाकी रहने दे, इसी को संख्यात गुणहीन कहते हैं।

(प्रश्न)—प्रयोगसी पुद्गल किनको कहते हैं ?

(उत्तर)—जीव जितने पुद्गलों का ग्रहण करता है वे सब पुद्गल प्रयोगसी कहे जाते हैं।

(प्रश्न)—मृषा पुद्गल किनको कहते हैं ?

(उत्तर)—जीव जिन पुद्गलों को छोड़ देता है उन्हें मृषा पुद्गल कहते हैं जैसे नख[१], केश[२] तथा कलेवर[३], इनमें अनेक जाति के जीव हो जाते हैं। मन, वचन और शरीर, इनके योग के सब पुद्गल जो मृषा रूप में परिवर्तित होते[४] हैं वे पुद्गल परिणमित[५] होते जाते हैं तथा छूटते जाते हैं जैसे कि भाषा के पुद्गलों को जीव लेता जाता है तथा छोड़ता जाता है, इसी प्रकार से मृषा पुद्गलों को भी जानना चाहिये।

(प्रश्न)—विस्सा पुद्गल किनको कहते हैं ?

(उत्तर)—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान, ये सब पुद्गल स्वभाव में परिणत होते हैं, इसी लिये इनको विस्सा पुद्गल कहते हैं जैसे कि किसी वस्तु पर स्वभाव से ही मैल चढ़ जाता है।

(प्रश्न)—नारकी देवता प्रतिपाती ज्ञान से देखता है अथवा अप्रतिपाती ज्ञान से देखता है ?

(उत्तर)—नारकी देवता अप्रतिपाती ज्ञान से देखता है।

(प्रश्न)—उक्त बात क्यों मानी जाती है ?

(उत्तर)—देखो ! सम्यग् दृष्टि से मिथ्यात्वी हो जाता है तथा मिथ्यात्वी से सम्यग् दृष्टि हो जाता है, सम्यग् दृष्टि में तीन ज्ञान पाये जाते हैं तथा मिथ्यात्वी में तीन अज्ञान पाये जाते हैं, यह बात श्रीप्रज्ञापना जी में कही है, इसलिये अवधिदर्शन के साथ में दोनों को पढ़ना

१—नाखून। २—बाल। ३—शरीर। ४—बदल जाते हैं। ५—परिणाम को प्राप्त।

चाहिये अर्थात् अवधिज्ञान और विभंग अज्ञान, इन दोनों को कहना चाहिये, क्योंकि वहाँ पर अवधि का समुच्चयतया पाठ है।

(प्रश्न)—श्रीभगवती सूत्र के आठवें शतक में पाँच विहारों का वर्णन है, कृपया उन विहारों को स्पष्टतया समझावें।

(उत्तर)—उक्त सूत्र में जो पाँच विहारों का वर्णन है उन्हें संक्षेप में इस प्रकार जानना चाहिये कि उन विहारों में से आगम विहारी के विषय में यह कहा गया है कि दश पूर्वधारी से लेकर चौदह पूर्वधारी तक तथा त्रिज्ञानी[1] और पञ्चज्ञानी[2] के विहार में जो चलता है उसको आगम विहारी कहते हैं, सूत्र की धारणा से जो चलता है उसको सूत्रविहारी कहते हैं, जो बहुसूत्री की आज्ञा में रहता है उसको आज्ञा विहारी कहते हैं अथवा बहुसूत्री विहारी कहते हैं, बहु सूत्री के पास रह कर तथा जिन भगवान् की आज्ञा मन में धारण करके उसी आज्ञा के अनुसार जो चलता है उसको धारणा विहारी कहते हैं तथा सर्वोत्तम आचार से व्यवहार करने वाले साधु के समान जो वर्त्ताव करता है उसको जीत-विहारी कहते हैं।

(प्रश्न)—सूक्ष्म वनस्पति में अनन्त जीव हैं अथवा प्रत्येक जीव हैं?

(उत्तर)—सूक्ष्म वनस्पति में अनन्त जीव हैं किन्तु[3] प्रत्येक जीव नहीं हैं।

(प्रश्न)—एक भव में श्रेणी कितने वार आती है?

(उत्तर)—एक भव में श्रेणी दो वार आती है, देखो! एक वार उपशम श्रेणी आती है, फिर जीव उससे गिर जाता है, तब फिर क्षायिक श्रेणी आती है, उसके कारण वह मुक्ति में चला जाता है, अथवा दोनों वार उपशम श्रेणी ही आती है, अनेक भवों में श्रेणी पाँच वार भी आती है, दो भवों में दो दो वार श्रेणी आती है तथा तीसरे भव में क्षायिक श्रेणी आती है, उसके आने से ही जीव मुक्ति में चला जाता है।

१—तीन ज्ञान वाला। २—पाँच ज्ञान वाला। ३—परन्तु, बल्कि।

(उत्तर)—अनन्तों की संख्यात ढेरियाँ करके सब को निकाल लेवे, केवल एक ढेरी को बाकी रहने दे, इसी को संख्यात गुणहीन कहते हैं।

(प्रश्न)—प्रयोगसी पुद्गल किनको कहते हैं ?

(उत्तर)—जीव जितने पुद्गलों का ग्रहण करता है वे सब पुद्गल प्रयोगसी कहे जाते हैं।

(प्रश्न)—मृषा पुद्गल किनको कहते हैं ?

(उत्तर)—जीव जिन पुद्गलों को छोड़ देता है उन्हे मृषा पुद्गल कहते हैं जैसे नख[1], केश[2] तथा कलेवर[3], इनमें अनेक जाति के जीव हो जाते हैं। मन, वचन और शरीर, इनके योग के सब पुद्गल जो मृषा रूप में परिवर्तित होते[4] हैं वे पुद्गल परिणमित[5] होते जाते हैं तथा छूटते जाते हैं जैसे कि भाषा के पुद्गलों को जीव लेता जाता है तथा छोड़ता जाता है, इसी प्रकार से मृषा पुद्गलो को भी जानना चाहिये।

(प्रश्न)—विस्रसा पुद्गल किनको कहते हैं ?

(उत्तर)—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान, ये सब पुद्गल स्वभाव में परिणत होते हैं, इसी लिये इनको विस्रसा पुद्गल कहते हैं जैसे कि किसी वस्तु पर स्वभाव से ही मैल चढ़ जाता है।

(प्रश्न)—नारकी देवता प्रतिपाती ज्ञान से देखता है अथवा अप्रतिपाती ज्ञान से देखता है ?

(उत्तर)—नारकी देवता अप्रतिपाती ज्ञान से देखता है।

(प्रश्न)—उक्त बात क्यों मानी जाती है ?

(उत्तर)—देखो! सम्यग् दृष्टि से मिथ्यात्वी हो जाता है तथा मिथ्यात्वी से सम्यग् दृष्टि हो जाता है, सम्यग् दृष्टि में तीन ज्ञान पाये जाते हैं तथा मिथ्यात्वी में तीन अज्ञान पाये जाते हैं, यह बात श्रीप्रज्ञापना जी में कही है, इसलिये अवधिदर्शन के साथ में दोनों को कहना

१—नाखुन। २—बाल। ३—शरीर। ४—बदल जाते हैं। ५—परिणाम को प्राप्त।

चाहिये अर्थात् अवधिज्ञान और विभंग अज्ञान, इन दोनों को कहना चाहिये, क्योंकि वहाँ पर अवधि का समुच्चयतया पाठ है।

(प्रश्न)—श्रीभगवती सूत्र के आठवें शतक में पाँच विहारों का वर्णन है, कृपया उन विहारों को स्पष्टतया समझावें।

(उत्तर)—उक्त सूत्र में जो पाँच विहारों का वर्णन है उन्हें संक्षेप में इस प्रकार जानना चाहिये कि उन विहारों में से आगम विहारी के विषय में यह कहा गया है कि दश पूर्वधारी से लेकर चौदह पूर्वधारी तक तथा त्रिज्ञानी[1] और पञ्चज्ञानी[2] के विहार में जो चलता है उसको आगम विहारी कहते हैं, सूत्र की धारणा से जो चलता है उसको सूत्रविहारी कहते हैं, जो बहुसूत्री की आज्ञा में रहता है उसको आज्ञा विहारी कहते हैं अथवा बहुसूत्री विहारी कहते हैं, बहु सूत्री के पास रह कर तथा जिन भगवान् की आज्ञा मन में धारण करके उसी आज्ञा के अनुसार जो चलता है उसको धारणा विहारी कहते हैं तथा सर्वोत्तम आचार से व्यवहार करने वाले साधु के समान जो वर्त्ताव करता है उसको जीत-विहारी कहते हैं।

(प्रश्न)—सूक्ष्म वनस्पति में अनन्त जीव हैं अथवा प्रत्येक जीव हैं?

(उत्तर)—सूक्ष्म वनस्पति में अनन्त जीव हैं किन्तु[3] प्रत्येक जीव नहीं हैं।

(प्रश्न)—एक भव में श्रेणी कितने वार आती है?

(उत्तर)—एक भव में श्रेणी दो वार आती है, देखो! एक वार उपशम श्रेणी आती है, फिर जीव उससे गिर जाता है, तब फिर क्षायिक श्रेणी आती है, उसके कारण वह मुक्ति में चला जाता है, अथवा दोनों वार उपशम श्रेणी ही आती है, अनेक भवों में श्रेणी पाँच वार भी आती है, दो भवों में दो दो वार श्रेणी आती है तथा तीसरे भव में क्षायिक श्रेणी आती है, उसके आने से ही जीव मुक्ति में चला जाता है।

१—तीन ज्ञान वाला। २—पाँच ज्ञान वाला। ३—परन्तु, बल्कि।

(प्रश्न)—जीवाभिगम सूत्र में स्थावर तीन कहे गये हैं वे स्थावर कौन से हैं ?

(उत्तर)—पृथ्वी, जल और वनस्पति ये तीन स्थावर हैं।

(प्रश्न)—त्रसकाय के कितने भेद हैं ?

(उत्तर)—त्रसकाय के भी तीन भेद हैं—तेजस्काय, वायुकाय और औदारिक, इनको भयशील[१] तथा चलनशील[२] होने से त्रस कहते हैं।

(प्रश्न)—जल का भी चलन स्वभाव है तो उसको त्रसकाय क्यों नहीं कहा है ?

(उत्तर)—जल की ऊर्ध्वगमन[३] की शक्ति नहीं है, किंतु उसकी नीचे की ओर जाने की शक्ति है, अत[४] उसको त्रसकाय नहीं कहा है।

(प्रश्न)—बाईस परिषहों का चार कर्मों मे समावेश होता है वह किस प्रकार से होता है ?

(उत्तर)—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय, इन चार कर्मों में बाईस परिषहों का समावेश होता है, उन्हें इस प्रकार जानना चाहिये कि ज्ञानावरणीय में क्रम से दो परीषह होते हैं तथथा पनापरीषह और ज्ञानपरीषह, वेदनी में क्रम से ग्यारह परीषह होते हैं उनमें से ९ का वेदन करता है, दर्शन मोहनीय में एक परीषह रहता है उसको दर्शन परीषह कहते हैं इसी का वेदन करता है, चारित्र मोहनीय में सात परीषहों का वेदन करता है, अन्तराय में एक अलाभ परीषह है उसी का वेदन करता है, जिसको सात तथा आठ कर्मों का बन्धन होता है उसमें २२ परीषह होते हैं, वह २० परीषहों का वेदन करता है।

(प्रश्न)—छ कर्मों के बाँधने वाले तथा सराग छद्मस्थ[५] के कितने परीषह होते हैं ?

१—भययुक्त। २—चलने के स्वभाव वाला। ३—ऊपर को जाने की। ४—इसलिये। ५—राग के सहित छद्मस्थ।

(उत्तर) उनके १४ परीषह होते हैं तथा वे १२ परीषहों का वेदन करते हैं, एक कर्म के बाँधने वाले छद्मस्थ वीतराग के १४ परीषह होते हैं, एक कर्म के बाँधने वाले केवली में ११ परीषह होते हैं।

(प्रश्न)—जुगलियापन में कितने ज्ञानों को पाता है ?

(उत्तर)—जुगलियापन में दो ज्ञानों को पाता है अर्थात् जघन्य और मध्यम ज्ञान को पाता है किन्तु उत्कृष्ट ज्ञान को नहीं पाता है।

(प्रश्न)—नारकी जीव की योनि कौनसी मानी जाती है ?

(उत्तर)—जो नारकी जीव नैरयिक कुम्भी में उत्पन्न होता है उसकी तैजस योनि जाननी चाहिये, शीतयोनि में उत्पन्न होने वाले जीव को उष्णता की वेदना[1] होती है तथा उष्णयोनि में उत्पन्न जीव को शीत की वेदना होती है, वे अपनी २ योनि में सुख पाते हैं।

(प्रश्न)—देवयोनि के विषय में कथन कीजिये ?

(उत्तर)—देवता की शीत योनि जाननी चाहिये।

(प्रश्न)—तेजस् काय में कौनसी योनि है ?

(उत्तर)—तेजस् काय में उष्ण योनि मिलती है, अत[2] वह शीत में मर जाता है।

(प्रश्न)—देवता की अचित्त योनि क्यों कही गई है ?

(उत्तर)—देखो ! जीव में जीव नहीं पैदा होता है, वह पास में अचित्त विरति को करता है।

(प्रश्न)—पाँच स्थावरों में तथा तीन विकलेन्द्रियों में तीन योनियाँ क्यों मिलती हैं ?

(उत्तर)—जो जीव जीव के सचित्त शरीर का आहार लेता है इसलिये उसकी सचित्त योनि कही गई है, जो जीव अचित्त का अहार करता है उसकी अचित्त योनि कही गई है।

१—तकलीफ, कष्ट। २—इसलिये।

(प्रश्न)—आठ कर्मों का बाँधना किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—देखो ! ज्ञानावरणीय छः प्रकार का है, उसका जो बँधन है उसे ज्ञानावरणीय कहते हैं, इसी प्रकार से शेष कर्मों के विषय में भी जान लेना चाहिये।

(प्रश्न)—उदय किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—जिसके उपस्थित[1] होने पर फल की प्राप्ति होती है अथवा नहीं होती है उसको उदय कहते हैं, जैसे ज्ञानावरणीय का उदय होने पर अज्ञान रूप फल की प्राप्ति होती है तथा ज्ञानरूप फल की प्राप्ति नहीं होती है, अर्थात् उद्यम करने पर भी ज्ञान नहीं मिलता है, इसी प्रकार से सब कर्मों के विषय में जान लेना चाहिये।

(प्रश्न)—उदीरणा किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—कर्मों की उदीरणा यह कहलाती है कि जिसके होने पर जीव किसी विषय से पराङ्मुख[2] रहता है, जैसे ज्ञानावरणीय कर्म की उदीरणा होने पर जीव ज्ञानप्राप्ति के लिये उद्यम ही नहीं करता है अर्थात् उससे पराङ्मुख रहता है।

(प्रश्न)—शब्द आदि विषयों का ग्रहण स्पृष्टों[3] का होता है अथवा अस्पृष्टों[4] का होता है ?

(उत्तर)—शब्द का तो स्पृष्ट का ग्रहण करता है, रूप को अस्पृष्ट को ही देखता है, तथा गन्ध, रस और स्पर्श का बद्धस्पृष्ट का ग्रहण करता है।

(प्रश्न)—बद्धस्पृष्ट किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—जो शरीर को शक्ति देता है तथा भले बुरे रस को देता है उसे बद्धस्पृष्ट कहते हैं।

१—विद्यमान, मौजूद। २—बहिर्मुख। ३—इन्द्रिय से छुए हुओं का। ४—इन्द्रिय से न छुए हुओं का।

(प्रश्न)—भाषा के पुद्गलों का किस प्रकार ग्रहण करता है ?

(उत्तर)—भाषा के स्थिरभूत पुद्गलों का ग्रहण करता है, उनका अनन्त प्रदेशियों का ग्रहण करता है, एवं अनन्त प्रदेशियों का ग्रहण करता है तथा असंख्यात आकाश प्रदेश को अवगाढ करके अनन्त प्रदेशी चतुःस्पर्शी पुद्गलों का ग्रहण करता है।

(प्रश्न)—भाषा में और शब्द में क्या अन्तर है ?

(उत्तर)—जीव जिसको बोलता है उसे भाषा कहते हैं तथा अजीव[1] में से जो ध्वनि[2] निकलती है उसको शब्द कहते हैं।

(प्रश्न)—एक समय में ग्रहण किये पुद्गलों को कितने समयों में निकालता है ?

(उत्तर)—एक समय में ग्रहण किये हुए पुद्गलों को एक ही समय में निकालता है, अनेक समयों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है, इसलिये अनेक समयों में ग्रहण किये हुए पुद्गलों को अन्तर्मुहूर्त्त में निकालता है, देखो ! आचाराङ्गसूत्र में कहा है कि—"जाणंती नो जाणंती" इसका आशय यही है जो ऊपर कहा गया है।

(प्रश्न)—आयुः कर्मबन्धन कहाँ तक होता है ?

(उत्तर)—आयुः कर्म को जीव पहिले गुणस्थान से लेकर सातवें गुणस्थान तक बाँधता है, इससे आगे नहीं बाँधता है।

(प्रश्न)—मोहनीय कर्म को कहाँ तक बाँधता है ?

(उत्तर)—मोहनीय कर्म को पाप कर्म कहा गया है, उसका बन्ध पहिले गुणस्थान से लेकर नवें गुणस्थान तक होता है, इससे आगे नहीं होता है।

(प्रश्न)—क्षयोपशम किस को कहते हैं ?

१—जड़, अचेतन। २—आवाज़।

(प्रश्न)—आठ कर्मों का बाँधना किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—देखो ! ज्ञानावरणीय छः प्रकार का है, उसका जो बँधन है उसे ज्ञानावरणीय कहते हैं, इसी प्रकार से शेष कर्मों के विषय में भी जान लेना चाहिये ।

(प्रश्न)—उदय किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—जिसके उपस्थित[1] होने पर फल की प्राप्ति होती है अथवा नहीं होती है उसको उदय कहते हैं, जैसे ज्ञानावरणीय का उदय होने पर अज्ञान रूप फल की प्राप्ति होती है तथा ज्ञानरूप फल की प्राप्ति नहीं होती है, अर्थात् उद्यम करने पर भी ज्ञान नहीं मिलता है, इसी प्रकार से सब कर्मों के विषय में जान लेना चाहिये ।

(प्रश्न)—उदीरणा किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—कर्मों की उदीरणा वह कहलाती है कि जिसके होने पर जीव किसी विषय से पराङ्मुख[2] रहता है, जैसे ज्ञानावरणीय कर्म की उदीरणा होने पर जीव ज्ञानप्राप्ति के लिये उद्यम ही नहीं करता है अर्थात् उससे पराङ्मुख रहता है ।

(प्रश्न)—शब्द आदि विषयों का ग्रहण स्पृष्टों[3] का होता है अथवा अस्पृष्टों[4] का होता है ?

(उत्तर)—शब्द का तो स्पृष्ट का ग्रहण करता है, रूप को अस्पृष्ट को ही देखता है, तथा गन्ध, रस और स्पर्श का बद्धस्पृष्ट का ग्रहण करता है ।

(प्रश्न)—बद्धस्पृष्ट किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—जो शरीर को शक्ति देता है तथा भले बुरे रस को देता है उसे बद्धस्पृष्ट कहते हैं ।

१—विद्यमान, मौजूद । २—बहिर्मुख । ३—इन्द्रिय से छुए हुओं का । ४—इन्द्रिय से न छुए हुओं का ।

(उत्तर)—संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त प्रत्येक छः कायों का आरम्भ करता है, एक समय में एक काय का आरम्भ करता है, परन्तु एक काय का आरम्भ करने वाले को ऐसा तो प्रत्याख्यान नहीं होता है कि मैं एक का तो आरम्भ करूँगा, अर्थात् पृथिवी काय का तो आरम्भ करूँगा किन्तु औरों का नहीं करूँगा तात्पर्य[1] यह है कि उसको ऐसा त्याग नहीं होता है, इस रीति से उसे अठारह पापों का सेवन करने वाला कहना चाहिये, अर्थात् उसे असयती और अविरती कहना चाहिये।

(प्रश्न)—असंज्ञी[2] के विषय में कथन कीजिये।

(उत्तर)—पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य तथा असंज्ञी तिर्यग्, इन सब में मन नहीं है, मन के न होने के कारण इनमें तर्क और वितर्क भी नहीं हैं, परन्तु अठारह पापों से इनकी निवृत्ति नहीं है, इसलिये सब जीवों से वैर होने के कारण ये अप्रतिघाती होते हैं।

(प्रश्न)—युगगड आदि भूमियों का वर्णन कीजिये।

(उत्तर)—युगगड भूमि के जीव तीर्थङ्करों के पट्ट पर बैठ २ कर मुक्ति को जाते हैं, पर्याय अन्तगड भूमि के जीव अन्तर्मुहूर्त का पर्याय पालकर भाव से मुक्ति को प्राप्त होते हैं, जैसे मोरा देवी माता अन्तर्मुहूर्त का पर्याय पालकर भाव से मुक्ति को प्राप्त हुई।

(प्रश्न)—प्रत्येक शरीर इकट्ठे पिण्डरूप में कैसे रहते हैं ?

(उत्तर)—इस विषय को दृष्टान्त[3] देकर समझाया जाता है देखो! किसी मनुष्य ने गुड़ की चासनी में सरसों को मिलाकर लड्डू बना लिये, इस दशा में पिण्ड के एक होने पर भी सरसों जुदी २ रहती है, इसी प्रकार से असंख्यात[4] शरीरों का पिण्ड[5] एक होने पर भी प्रत्येक जीव का शरीर जुदा २ होता है।

१—मतलब। २—संज्ञा से रहित। ३—मिसाल। ४—गणना रहित। ५—[illegible]।

(उत्तर)—एक भाग का जो क्षय होना है तथा एक भाग जो उपशम (शान्तावस्था) है उसको क्षयोपशम कहते हैं, जैसे देखो। अग्नि का पुंज है, उस पुञ्ज में से कुछ भाग का जो बुझ जाना है शेष भाग का जो राख के अन्दर ढक जाना है, यही क्षयोपशम का स्वरूप[1] है, ग्रन्थों में इसका नाम संयोजना भी कहा गया है, दूसरी रीति से इसका स्वरूप यों भी जानना चाहिये कि जो आयु कर्म मिथ्यात्व के सामने आता है, उसका जो उपशमन[2] करना है इसको क्षयोपशम कहते हैं।

(प्रश्न)—स्त्री को आहारक लब्धि नहीं मिलती है, किन्तु केवली की लब्धि मिल जाती है, यह बात क्यों मानी जाती है ?

(उत्तर)—देखो ! वासुदेव की आगति ३२ की है, भवनपति तथा व्यन्तर की आगति नहीं होती है, चक्रवर्ती की आगति ८२ की है, क्योंकि वह भवनपति से आया हुआ होता है, इस प्रकार से स्त्री को मोक्ष भी होता है।

(प्रश्न)—त्रसकाय आदि की उत्पत्ति कहाँ २ होती है ?

(उत्तर)—पृथिवी काय में त्रसकाय उत्पन्न होता है, अप्काय में भी त्रसकाय उत्पन्न होता है, क्योंकि पानी में जीव पड़ जाते हैं, तेजस्काय में भी कुंथुआ आदि उत्पन्न होते हैं, वनस्पति में भी त्रसकाय की उत्पत्ति होती है तथा त्रसकाय जीव के शरीर में पानी के जीव भी उत्पन्न होते हैं, मोनीमरा आदि को लेकर तेजस्काय के भी जीव उत्पन्न होते हैं तथा वायु काय के भी जीव उत्पन्न होते हैं।

(प्रश्न)—सञ्ज्ञी[3] पञ्चेन्द्रिय[4] पर्याप्त[5] प्रत्येक कितने कार्यों का आरम्भ करता है ?

१—इसी प्रकार से कर्म के विषय में जान लेना चाहिये। २—शान्तावस्था ३—संज्ञा वाला। ४—पाँच इन्द्रियों वाला। ५—पर्याप्तियों से युक्त।

(उत्तर)—संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त प्रत्येक छः कायोंका आरम्भ करता है, एक समय में एक काय का आरम्भ करता है, परन्तु एक काय का आरम्भ करने वाले को ऐसा तो प्रत्याख्यान नहीं होता है कि मैं एक का तो आरम्भ करूँगा, अर्थात् पृथिवी काय का तो आरम्भ करूँगा किन्तु औरों का नहीं करूँगा तात्पर्य[1] यह है कि उसको ऐसा त्याग नहीं होता है, इस रीति से उसे अठारह पापों का सेवन करने वाला कहना चाहिये, अर्थात् उसे असंयती और अविरती कहना चाहिये।

(प्रश्न)—असंज्ञी[2] के विषय में कथन कीजिये।

(उत्तर)—पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य तथा असंज्ञी तिर्यग्, इन सब में मन नहीं है, मन के न होने के कारण इनमें तर्क और वितर्क भी नहीं हैं, परन्तु अठारह पापों से इनकी निवृत्ति नहीं है, इसलिये सब जीवों से वैर होने के कारण ये अप्रतिघीर्य होते हैं।

(प्रश्न)—युगगड आदि भूमियों का वर्णन कीजिये।

(उत्तर)—युगगड भूमि के जीव तीर्थङ्करों के पट्ट पर बैठ २ कर मुक्ति को जाते हैं, पर्याय अन्तगड भूमि के जीव अन्तर्मुहूर्त का पर्याय पानकर भाव से मुक्ति को प्राप्त होते हैं, जैसे मोरा देवी माता अन्तर्मुहूर्त का पर्याय पानकर भाव से मुक्ति को प्राप्त हुई।

(प्रश्न)—प्रत्येक शरीर इकट्ठे पिण्डरूप में कैसे रहते हैं?

(उत्तर)—इस विषय को दृष्टान्त[3] देकर समझाया जाता है देखो! किसी मनुष्य ने गुड की चासनी में सरसों को मिलाकर लड्डू बना लिये, इस दशा में पिण्ड के एक होने पर भी सरसों जुदी २ रहती है, इसी प्रकार [illegible] असंख्यात[4] शरीरों का पिण्ड[5] एक होने पर भी प्रत्येक जीव [illegible] शरीर जुदा २ होता है।

१—मतलब। २—मन से रहित। ३—मिसाल। ४—संख्या रहित। ५—गोला।

(प्रश्न)—चक्रवर्ती के रहने पर तमस गुफा का द्वार क्या खुला रहता है ?

(उत्तर)—जब तक चक्रवर्ती रहता है तब तक तमस गुफा का द्वार खुला रहता है, उसके काल करने के बाद भी छः मास तक खुला रहता है।

(प्रश्न)—व्यावहारिक[1] परमाणु किस को कहते हैं तथा वह कैसे बनता है ?

(उत्तर)—जो सूक्ष्म अनन्त प्रदेशी स्कन्ध एक आकाश पर बैठता है उसे व्यावहारिक परमाणु कहते हैं तथा यह (व्यावहारिक परमाणु) अनन्त सूक्ष्म परमाणु पुद्गलों के मिलने से बनता है, इसे क्षेत्र की आदि का परमाणु जानना चाहिये, जो एक परमाणु एक आकाश पर बैठता है उसे भी व्यावहारिक परमाणु कहते हैं तथा जो संख्यात प्रदेशों पर बैठता है उसको चतुस्पर्शी (चौफरसी) कहते हैं तथा जो असंख्यात प्रदेशों का अवगाहन करता है उसे अष्टस्पर्शी (अठफरसी) जानना चाहिये।

(प्रश्न)—भरत महाराज के कितने पाट किस भवन में केवल ज्ञान को प्राप्त होकर मुक्ति को पधारे तथा भरत नाम किस का होता है ?

(उत्तर)—भरत महाराज के राज के आठ पाट आराता (आदर्श) भवन में केवल ज्ञान को प्राप्त होकर मुक्ति को पधारे, भरत खण्ड में पहिले चक्रवर्ती का नाम भरत होता है तथा यह नाम बदलता नहीं है।

(प्रश्न)—नारकी देवता यदि उत्तर वैक्रिय को करता है तो वह अंगुल के किस भाग में करता है तथा किस भाग में नहीं कर सकता है ?

१—व्यवहार सम्बन्धी।

(उत्तर)—भारकी देवता जब उत्तर वैक्रिय को करता है तो वह अंगुल के संख्यातवें भाग में करता है परन्तु असंख्यातवें भाग में नहीं कर सक्ता है।

(प्रश्न)—अधोलोक की दिशा कुमारियाँ कहाँ रहती हैं तथा नन्दन वन की रहने वाली दिशा कुमारियाँ कहाँ रहती हैं ?

(उत्तर)—अधोलोक[1] की दिशा कुमारियाँ गजदन्त के ऊपर रहती हैं तथा नन्दनवन की रहने वाली दिशा कुमारियाँ ऊर्ध्व में रहती हैं[2]।

(प्रश्न)—तीन विकलेन्द्रियों का उत्कृष्ट अवगाहना में ज्ञान होता है या नहीं होता है ?

(उत्तर)—तीन विकलेन्द्रियों का उत्कृष्ट अवगाहना में ज्ञान नहीं होता है।

(प्रश्न)—क्यों नहीं होता है ?

(उत्तर)—देखो ! विकलेन्द्रियों में अपर्याप्तवस्था[3] में ज्ञान होता है किन्तु पर्याप्तावस्था में ज्ञान नहीं होता है, तथा उत्कृष्ट अवगाहना पर्याप्तावस्था[4] में होती है, इसलिये उनका उत्कृष्ट अवगाहना में ज्ञान नहीं होता है।

(प्रश्न)—द्विप्रदेशी से लेकर सूक्ष्म अनन्त प्रदेशी तक ऊपरले कितने स्पर्शों को पाता है।

(उत्तर)—द्विप्रदेशी से लेकर सूक्ष्म अनन्तप्रदेशी तक ऊपरले चार प्रदेशों को पाता है।

(प्रश्न)—जघन्यस्कन्ध और उत्कृष्ट स्कन्ध तथा मध्यम स्कन्ध किसको कहते हैं ?

1—नीचे का लोक। 2—पाँच सौ योजन का ऊँचा वन है तथा पाँच सौ योजन की कूट है, इस प्रकार से एक हजार योजन का ऊर्ध्व लोक है, तिर्यग् लोक नौ सौ योजन में है, उसका शेष भाग (सौ योजन) ऊर्ध्व लोक में रहता है। 3—पर्याप्तियों से रहित दशा। 4—पर्याप्तियों के सहित दशा।

(प्रश्न)—चक्रवर्ती के रहने पर तमस गुफा का द्वार खुला रहता है ?

(उत्तर)—जब तक चक्रवर्ती रहता है तब तक तमस गुफा का द्वार खुला रहता है, उसके काल करने के बाद भी छ मास तक खुला रहता है।

(प्रश्न)—व्यावहारिक[1] परमाणु किस को कहते हैं तथा वह कैसे बनता है ?

(उत्तर)—जो सूक्ष्म अनन्त प्रदेशी स्कन्ध एक आकाश पर बैठता है उसे व्यावहारिक परमाणु कहते हैं तथा यह (व्यावहारिक परमाणु) अनन्त सूक्ष्म परमाणु पुद्गलों के मिलने से बनता है, इसे क्षेत्र की आदि का परमाणु जानना चाहिये, जो एक परमाणु एक आकाश पर बैठता है उसे भी व्यावहारिक परमाणु कहते हैं तथा जो संख्यात प्रदेशों पर बैठता है उसको चतु स्पर्शी (चौफरसी) कहते हैं तथा जो असंख्यात प्रदेशों का अवगाहन करता है उसे अष्टस्पर्शी (अठफरसी) जानना चाहिये।

(प्रश्न)—भरत महाराज के कितने पाट किस भवन में केवल ज्ञान को प्राप्त होकर मुक्ति को पधारे तथा भरत नाम किस का होता है?

(उत्तर)—भरत महाराज के राज के आठ पाट आरीसा (आदर्श) भवन में केवल ज्ञान को प्राप्त होकर मुक्ति को पधारे, भरत खण्ड में पहिले चक्रवर्ती का नाम भरत होता है तथा यह नाम बदलता नहीं है।

(प्रश्न)—नारकी देवता यदि उत्तर वैक्रिय को करता है तो वह अंगुल के किस भाग में करता है तथा किस भाग में नहीं कर सकता है ?

१—व्यवहार सम्बन्धी।

संयत कहते[1] हैं, गृह का त्याग करने से उसे अनगार कहते[2] हैं, अच्छे प्रकार से व्रतों का पालन करने से उसे सुव्रत कहते[3] हैं, सद्गुणों के कारण प्रतिष्ठित, पूजनीय और माननीय होने के कारण उसको अर्हन् कहते[4] हैं, शरीर और इन्द्रियों को साध कर (वश में कर) जो संयम का निर्वाह करता है उसे साधु कहते[5] हैं अथवा अपने सुख और दुःख की कुछ भी परवा न कर जो पर कार्यों को सिद्ध करता है और दूसरों के कल्याण का साधन करता है उसको साधु कहते[6] हैं, सत्य, हित और मित का भाषण करने के कारण उसे वाचंयम कहते[7] हैं—सच्छास्त्रों का स्वाध्याय और उनका मनन करने के हेतु उसे मुनि कहते[8] हैं, सर्व सांसारिक पदार्थों से विरक्त होकर उनसे निवृत्त हो जाने के कारण उसको सर्वविरति कहते[9] हैं तथा तीनों योगों का यमन (निग्रह) करने से उसे यति कहते[10] हैं।

(प्रश्न)—साधु किस प्रतिमा में पाप को छोड़ देता है ?

(उत्तर)—वह नवीं और दशवीं प्रतिमा में पाप को छोड़ देता है।

(प्रश्न)—मुख्यतया साधु में कौन से दूषण नहीं रहते हैं ?

(उत्तर)—मुख्यतया साधु में मिथ्या भाषण, चोरी, आरम्भ और परिग्रह, ये चार दूषण नहीं रहने चाहियें।

(प्रश्न)—निर्ग्रन्थ नाम का और भी कुछ विवरण कीजिये।

(उत्तर)—ऊपर कहा गया है कि जो बाहरी और भीतरी ग्रन्थि (परिग्रह) का त्याग करता है उसको निर्ग्रन्थ कहते हैं, इसका

१—संयच्छति मन इन्द्रियाणि चात्मानं चेति संयत । २—नास्त्यगारं गृहं यस्य स । ३—सुष्ठुव्रतानि यस्य स सुव्रत । ४—अर्ह पूजायाम्, इस धातु से अर्हन् शब्द बनता है। ५—त्रियोगेण संयमं साध्नोतीति साधु । ६—परकार्याणि परकल्याणं वा साध्नोतीति साधु । ७—वाचंयच्छतीति वाचंयम । ८—मननशीलत्वान्मुनि । ९—दोषेभ्यो विरतिर्यस्य स, यद्वा सर्वेभ्यो विरत इति सर्वविरत इति विग्रहम् । १०—त्रियोगं यच्छति इति यतिः ।

(उत्तर)—द्विप्रदेशी को जघन्य स्कन्ध कहते हैं, जिससे अधिक कोई भी प्रदेशों को नहीं बाँधता है, उसको उत्कृष्ट स्कन्ध कहते हैं तथा जो तीन से लेकर उत्कृष्ट में एक कम रहता है उसको मध्यम स्कन्ध कहते हैं।

(प्रश्न)—सम्मूर्छिम का स्थान क्या है ?

(उत्तर)—सम्मूर्छिम का स्थान (ठिकाना) मनुष्य का विच्छेद[1] है[2]।

(प्रश्न)—ऐसा क्यों माना जाता है ?

(उत्तर)—देखो ! उनकी स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा विरह चौबीस मुहूर्त्त[3] का है।

(प्रश्न)—लोक संज्ञा तथा ओघ संज्ञा किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—जो ज्ञान के उपयोग में वर्त्तता है उसकी लोक संज्ञा है तथा जो दर्शन के उपयोग में वर्त्तता है उसकी ओघ संज्ञा है।

(प्रश्न)—सुना है कि साधु के १२ नाम हैं वे कौन से हैं ?

(उत्तर)—साधु के १२ नाम ये हैं,—श्रमण, निर्ग्रन्थ, भिक्षु, संयत, अनगार, संव्रत, माहन, साधु, वाचंयम, मुनि, सर्वविरति और यति।

(प्रश्न)—साधु के ये नाम अन्वर्थ[4] रक्खे गये हैं अथवा यों ही रक्खे गये हैं ?

(उत्तर)—साधु के ये जो नाम हैं वे सब सार्थक[5] हैं-देखो ! तपस्या में श्रम करने से उसको श्रमण[6] कहते हैं—बाहरी और भीतरी ग्रन्थि (परिग्रह) से रहित होने के कारण उसको निर्ग्रन्थ कहते[7] हैं, भिक्षावृत्ति के द्वारा निर्वाह करने के कारण उसको भिक्षु कहते[8] हैं, मन, इन्द्रिय और आत्मा का संयम (नियमन) करने के कारण उसको

१—नाश। २—तात्पर्य यह है कि मनुष्यों का विच्छेद होने पर संमूर्छिम नहीं होते हैं। ३—यह विषय प्रज्ञापना सूत्र में छठे पद के कहा गया है। ४—यथार्थ। ५—अर्थ सहित। ६—श्राम्यति आत्मानं इति श्रमणः। ७—ग्रन्थेभ्यो निष्क्रान्त इति निर्ग्रन्थः। ८—भिक्षाशीलो भिक्षुः।

संयत कहते[1] हैं, गृह का त्याग करने से उसे अनगार कहते[2] हैं, अच्छे प्रकार से व्रतों का पालन करने से उसे संव्रत कहते[3] हैं, सद्गुणों के कारण प्रतिष्ठित, पूजनीय और माननीय होने के कारण उसको माहन कहते[4] हैं, शरीर और इन्द्रियों को साध कर (वश में कर) जो संयम का निर्वाह करता है उसे साधु कहते[5] हैं अथवा अपने सुख और दुःख की कुछ भी परवा न कर जो पर कार्यों को सिद्ध करता है और दूसरों के कल्याण का साधन करता है उसको साधु कहते[6] हैं, सत्य, हित और मित का भाषण करने के कारण उसे वाचंयम कहते[7] हैं—सच्छास्त्रों का स्वाध्याय और उनका मनन करने के हेतु उसे मुनि कहते[8] हैं, सर्व सांसारिक पदार्थों से विरक्त होकर उनसे निवृत्त हो जाने के कारण उसको सर्वविरति कहते[9] हैं तथा तीनों योगों का यमन (निग्रह) करने से उसे यति कहते[10] हैं।

(प्रश्न)—साधु किस प्रतिमा में पाप को छोड़ देता है ?

(उत्तर)—वह नवीं और दशवीं प्रतिमा में पाप को छोड़ देता है।

(प्रश्न)—मुख्यतया साधु में कौन से दूषण नहीं रहते हैं ?

(उत्तर)—मुख्यतया साधु में मिथ्या भाषण, चोरी, आरम्भ और परिग्रह, ये चार दूषण नहीं रहने चाहियें।

(प्रश्न)—निर्ग्रन्थ नाम का और भी कुछ विवरण कीजिये।

(उत्तर)—ऊपर कहा गया है कि जो बाहरी और भीतरी ग्रन्थि (परिग्रह) का त्याग करता है उसको निर्ग्रन्थ कहते हैं, इसका

१—संयच्छति मन इन्द्रियाणि आत्मानं चेति संयतः। २—नास्त्यगारं गृहं यस्य सः। ३—सुष्ठुव्रतानि यस्य स संव्रतः। ४—मह पूजायाम्, इस धातु से माहन शब्द बनता है। ५—त्रियोगेण संयमं साध्नोतीति साधुः। ६—परकार्याणि परकार्यार्थं वा साध्नोतीति साधुः। ७—वाचं यच्छतीति वाचंयमः। ८—मननशीलत्वान्मुनिः। ९—सर्वेभ्यो विरतिर्यस्य सः, यद्वा सर्वेभ्यो विरत इति सर्वं विरत इति विरतम्। १०—त्रियोग यच्छति इति यतिः।

(उत्तर)—द्विप्रदेशी को जघन्य स्कन्ध कहते हैं, जिससे अधिक कोई भी प्रदेशों को नहीं बाँधता है उसको उत्कृष्ट स्कन्ध कहते हैं तथा जो तीन से लेकर उत्कृष्ट में एक कम रहता है उसको मध्यम स्कन्ध कहते हैं।

(प्रश्न)—सम्मूर्छिम का स्थान क्या है ?

(उत्तर)—सम्मूर्छिम का स्थान (ठिकाना) मनुष्य का विच्छेद[1] है[2]।

(प्रश्न)—ऐसा क्यों माना जाता है ?

(उत्तर)—देखो ! उनकी स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा विरह चौबीस मुहूर्त[3] का है।

(प्रश्न)—लोक संज्ञा तथा ओघ संज्ञा किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—जो ज्ञान के उपयोग में वर्त्तता है उसकी लोक संज्ञा है तथा जो दर्शन के उपयोग में वर्त्तता है उसकी ओघ संज्ञा है।

(प्रश्न)—सुना है कि साधु के १२ नाम हैं वे कौन से हैं ?

(उत्तर)—साधु के १२ नाम ये हैं,—श्रमण, निर्ग्रन्थ, भिक्षु, संयत, अनगार, संयत, माहन, साधु, वाचंयम, मुनि, सर्वविरति और यति।

(प्रश्न)—साधु के ये नाम अन्वर्थ[4] रक्खे गये हैं अथवा यों ही रक्खे गये हैं ?

(उत्तर)—साधु के ये जो नाम हैं वे सब सार्थक[5] हैं—देखो ! तपस्या में श्रम करने से उसको श्रमण[6] कहते हैं—बाहरी और भीतरी ग्रन्थि (परिग्रह) से रहित होने के कारण उसको निर्ग्रन्थ कहते[7] हैं, भिक्षावृत्ति के द्वारा निर्वाह करने के कारण उसको भिक्षु कहते[8] हैं, मन, इन्द्रिय और आत्मा का सयम (नियमन) करने के कारण उसको

१—नाश। २—तात्पर्य यह है कि मनुष्यों का विच्छेद होने पर सम्मूर्छिम नहीं होते हैं। ३—यह विषय प्रज्ञापना सूत्र में छठे पद के कहा गया है। ४—सार्थक। ५—अर्थ सहित। ६—तपसि श्राम्यति इति श्रमण। ७—ग्रन्थेर्निष्क्रान्त इति निर्ग्रन्थ। ८—भिक्षाशीलो भिक्षु।

संयत कहते[1] हैं, गृह का त्याग करने से उसे अनगार कहते[2] हैं, अच्छे प्रकार से व्रतों का पालन करने से उसे संव्रत कहते[3] हैं, सद्गुणों के कारण प्रतिष्ठित, पूजनीय और माननीय होने के कारण उसको माहन कहते[4] हैं, शरीर और इन्द्रियों को साध कर (वश में कर) जो संयम का निर्वाह करता है उसे साधु कहते[5] हैं अथवा अपने सुख और दुःख की कुछ भी परवा न कर जो पर कार्यों को सिद्ध करता है और दूसरों के कल्याण का साधन करता है उसको साधु कहते[6] हैं, सत्य, हित और मित का भाषण करने के कारण उसे वाचंयम कहते[7] हैं—सच्छास्त्रों का स्वाध्याय और उनका मनन करने के हेतु उसे मुनि कहते[8] हैं, सर्व सांसारिक पदार्थों से विरक्त होकर उनसे निवृत्त हो जाने के कारण उसको सर्वविरति कहते[9] हैं तथा तीनों योगों का यमन (निग्रह) करने से उसे यति कहते[10] हैं।

(प्रश्न)—साधु किस प्रतिमा में पाप को छोड़ देता है ?

(उत्तर)—यह नवीं और दशवीं प्रतिमा में पाप को छोड़ देता है।

(प्रश्न)—मुख्यतया साधु में कौन से दूषण नहीं रहने हैं ?

(उत्तर)—मुख्यतया साधु में मिथ्या भाषण, चोरी, आरम्भ और परिग्रह, ये चार दूषण नहीं रहने चाहियें।

(प्रश्न)—निर्ग्रन्थ नाम का और भी कुछ विवरण दीजिये।

(उत्तर)—ऊपर कहा गया है कि जो बाहरी और भीतरी ग्रन्थि (परिग्रह) का त्याग करता है उसको निर्ग्रन्थ कहते हैं, इसका

१—संयच्छति मन इन्द्रियाणि आत्मानं चेति संयतः। २—नास्त्यागारं गृहं यस्य सः। ३—सुष्ठु व्रतानि यस्य स संव्रतः। ४—यह पूजार्थक, मह धातु से बना हुआ शब्द है। ५—[illegible] साध्नोतीति साधुः। ६—[illegible] साधयतीति साधुः। ७—वाचं [illegible] वाचंयमः। ८—[illegible] मुनिः। ९—[illegible] विरत इति [illegible] विरत इति [illegible]। १०—[illegible] इति यतिः।

तात्पर्य यह है कि—जो द्रव्यादि परिग्रह रूप बाहरी ग्रन्थि का त्याग करता है तथा चौदह प्रकार के मिथ्यात्त्व, तीन प्रकार के वेद, चार प्रकार के कषाय तथा हिंसा आदि छः प्रकार के आरम्भ रूप भीतरी ग्रन्थि का त्याग करता है उसको निर्ग्रन्थ कहते हैं, बाहरी परिग्रह त्याग तो देखने मात्र का है अर्थात् एक साधारण[1] बात है, इसलिये ९ प्रकार के परिग्रह का त्याग करने से साधु द्रव्य लिंगी[2] होता है तथा १४ प्रकार के परिग्रह का त्याग करने से वह भाव निर्ग्रन्थ[3] होता है।

(प्रश्न)—सामायिक कितने प्रकार का कहा गया है ?

(उत्तर)—श्री अनुयोग द्वार में सामायिक तीन प्रकार का कहा गया है—सम्यक्त्व सामायिक, सूत्र सामायिक तथा चारित्र सामायिक।

(प्रश्न)—कृपा करके इनके स्वरूप को समझाइये।

(उत्तर)—शुद्ध श्रद्धा को सम्यक्त्व सामायिक कहते हैं, ज्ञान संयुक्त सामायिक को सूत्र सामायिक कहते हैं तथा चारित्र शुद्धि और आचार शुद्धि के सहित सामायिक को चारित्र सामायिक कहते हैं।

(प्रश्न)—ये सामायिक किन २ गतियों में पाये जाते हैं ?

(उत्तर)—सम्यक्त्व सामायिक और सूत्र सामायिक चार गतियों में पाया जाता है तथा चारित्र सामायिक तिर्यग् गति में पाया जाता है।

(प्रश्न)—उक्त[4] सामायिकों की स्थिति कितने समय की है ?

(उत्तर)—प्रथम के दो सामायिकों की स्थिति जघन्यतया[5] अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्टतया[6] यावज्जीव[7] की होती है तथा चारित्र सामायिक की स्थिति जघन्यतया एक समय की तथा उत्कृष्टतया यावज्जीव की होती है।

१—मामूली। २—द्रव्य के द्वारा लिंगी (चिह्नी) वाला। ३—भाव के द्वारा साधु। ४—कहे हुए। ५—अल्प रीति से। ६—उत्कृष्ट रीति से। ७—जीवन पर्यन्त।

(प्रश्न)—प्रत्याख्यान किस प्रकार का है तथा वह किस का किस प्रकार का होता है ?

(उत्तर)—श्री भगवती सूत्र के सातवें शतक के दूसरे उद्देशक में कहा है कि सुप्रत्याख्यान, और दुःप्रत्याख्यान रूप से प्रत्याख्यान दो प्रकार का है, इनमें से नवतत्वों[1] के जानने वाले का वैराग्य भावपूर्वक[2] सुप्रत्याख्यान होता है, इसकी प्राप्ति पाँचवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक दश गुण स्थानों में होती है तथा दुःप्रत्याख्यान अज्ञानी[3] का होता है।

४—उपदेशप्रद कुण्डलियाँ।

चौबीसहु जिनवर नमूं, गणधर लागूं पाय।
भगवद् वाणी सरसुतिहिं, निस दिन सुमिरूं माय॥
निस दिन सुमिरूं माय, गुरु चरणन कहँ ध्याऊँ।
चम्पाजी गुरुवर्य[4], सदा मैं शीस नमाऊँ॥
तासु चरन रज दासि भूरीसुन्दरि सर्व हित।
करत कछुक उपदेश, सज्जन गहहु[5] विवेक हित[6] ॥१॥
प्राणघात कीजै नहीं, काहू जीव को जान।
धारि दया मन माँहि सब, भूत आत्म समान॥
भूत आत्म समान, दूर हिंसा कहँ टालहु।
है जिन वचन प्रमान, दया सब निश दिन पालहु॥
भूरीसुन्दरि वचन, सदा सबकहँ हितकारी।
है है खेवा पार, मान जन कही हमारी॥२॥

१—को। २—भाव के साथ। ३—ज्ञान से रहित। ४—श्रेष्ठ गुरु। ५—लो। ६—ज्ञान के लिये।

झूठ कबहु नहिं बोलिये, यह अपयश को धाम[१]।
यातें नसत प्रतीति[२] है, होत मनुज - बेकाम ॥
होत मनुज बेकाम, नरक जावत है प्राणी।
गयो सातवें नरक, वसु राजा कह ज्ञानी ॥
भूरीसुन्दरि कथन, सदा चित माहिं विचारो।
झूठ त्यागि के सदा, करहु आतम - उद्धारो ॥३॥

चोरी कबहुँ न कीजिये, सुनहुँ सुजन चितलाय।
यामें मन उपजत विथा[३], जग में होत हँसाय ॥
जग में होत हँसाय, अशुभ कर्म बन्धन हुवै।
अपयश नर को होत, मिटत नाहिं नर के मुवै ॥
भूरीसुन्दरि वचन, सदा मन धारहु सज्जन।
तजहु अदत्तादान, हुवै नहिं नर कहिं तज्जन[४] ॥४॥

मैथुन दोष महान है, सहे बहुत अपमान।
याके वश है देवहू, सहे बहुत अपमान ॥
सहे बहुत अपमान, मान सब ही विनसायो।
भये दुखन के पार, जिन्हन यह दोष नसायो ॥
भूरीसुन्दरि कहत, होन चाहत भव पारा।
तजहु दोष यह तुरित[५], अवशि ह्वैहै निसतारा[६] ॥५॥

पञ्चम पाप परिग्रहा, सब अनरथ को मूल।
जो यामें रत होत हैं, तिनके शिर पर धूल ॥

१—स्थान। २—विश्वास। ३—कष्ट। ४—भर्त्सना। ५—शीघ्र ही। ६—छुटकारा।

तिनके सिर पर धूल, साधु को ꠰
वेष साधु को धारि, तनिक लज्जा ꠰
भूरीसुन्दरि सीख, सुनहु सब सा
तजहु परिग्रह नेह, इसी में सकल

क्रोध अगनि की ज्वाल जो, सो दुर्गति को मूल ।
कोटि बरस को तपहु तो, यातें होत विमूल ॥
यातें होत विमूल, प्रीति सब नसत सुजाना ।
अवधि नरकमहँ जाय, क्रोध करि मरे निदाना ॥
भूरीसुन्दरि कहत, क्रोध को दूर निवारो ।
पावहु सुन्दर सुखहिं, सकल समता चित धारो ॥७॥

मान दोष सब में बड़ो, मान नरक की खान ।
यातें रावन मरन भो, कियो राम अपमान ॥
कियो राम अपमान, स्वर्ण की लंका खोई ।
ह्वैके विधवा नारि, मन्दोदरि कुल में रोई ॥
भूरीसुन्दरि वचन सुजन, मन दे तुम सिच्छा ।
मानहु सब विधि भला, नहीं तो तुम्हरी इच्छा ॥८॥

मान दुर्योधन नाश भो, मान दुःख को मूल ।
ज्ञानी जन यातें इसे, करत न कबहूँ भूल ॥
करत न कबहूँ भूल, जानि दुख खानी याको ।
होय न कोउ सहाय, मानि है जो नर ताको ॥
भूरीसुन्दरि वचन, जानि हितकर हिय धारो ।
शम्भु प्रसाद कथा, हृदय में सदा विचारो ॥९॥

झूठ जग में अति बुरी, होत मित्रता हान।
यहिं ते नर नारी हुवै, नारि नपुंसक जान॥
नारि नपुंसक जान, सहत बहु वेदन[1] यातें।
श्रीजिन वचन प्रमान, मानि हो दूरहिं यातें॥
भूरीसुन्दरि सीख, सदा हितकारी जानौ।
सब पापन को मूल, अधम माया पहचानौ॥१०॥

लोभ जगत में प्रबल है, याकी मोटी दौर।
दशवें गुनथानक तकहुँ, याकी जग में ठौर[2]॥
याकी जग में ठौर, देत चौरासी धामा।
तातें याको त्यागि, सिद्ध सब होत निकामा[3]॥
भूरीसुन्दरि सीख, मानि लैहै जो प्रानी।
शिवपुर को वह जाय, सदा लहि[4] है सुखखानी॥११॥

राग पाप दशमो कह्यो, यह मोटो जंजाल।
यहि के वश जो होत है, वह नर सदा बेहाल॥
वह नर सदा बेहाल, सुध बुध सब भागै।
चतुराई सब जाय, कर्म बन्धन तब जागै॥
भूरीसुन्दरि वचन, कहत जिनराज विनय करि।
होंहि सकल सुखि मानि, राग अवगुन को परिहरि[5]॥१२॥

द्वेष पाप सब में बड़ो, यातें होत अकाज।
होत कलह घर [illegible] सदा, जब हो याको राज॥
जब हो याको राज, सुनो तुम प्यारे भविका।
फिरै चतुर्गति माहिं, पार होवै नहिं नविका[6]॥

१—कष्ट। २—स्थान। ३—कर्मरहित। ४—पावेगा। ५—छोड़ कर।
६—नाव।

भूरीसुन्दरि वचन, सुनहु चित दै सब भैया।
त्यागि द्वेष यह देहु, बनोगे मुक्ति लहैया[1] ॥१३॥

क्लेश कबहुँ नहिं कीजिये, यातें सम्पति हान।
कोपाग्नी[2] यातें प्रबल, ह्वै जारत सुख मान॥
ह्वै जारत सुख मान, समाधी सबै भगावै।
बुरी वासना जाग, सदा बहु पाप कमावै॥
भूरीसुन्दरि कहत, सुनहु नर त्यागहु याको।
ह्वैहै ईश सहाय, त्यागि जो दैहै[3] ताको ॥१४॥

निज मुख अभ्याख्यान[4] जो, वदत साधु अज्ञान।
कर्म बन्धन ताको हुवै, जानि लेहु मतिमान॥
जानि लेहु मतिमान, याहि तुम तजहु सुजाना।
ह्वैहै कर्म संयोग, नहीं तो सब विधि नाना॥
भूरीसुन्दरि सीख, नित्त ही चितमहँ धारो।
अभ्याख्यान सदोष, सदा याको विनिवारो ॥१५॥

पहिना चुगली मत करो, हमरी तुम्हरी हानि।
यातें कर्म बंधात है, मिलत दुःख की खानि॥
मिलत दुःख की खानि, नाम को बट्टा लागै।
चुगली सुनि हरषाय, वहू[5] पुनि नरक को जावै॥
भूरीसुन्दरि कहत, सुनो तुम मेरा कहना।
चुगली मोटो पाप, तजहु तुम तुरितहिं[6] बहना ॥१६॥

मुख से पर औगुन नहीं, भाषहु धीर सुजान।
कर्म बन्ध यहिं चीकना, तातें सुख की हान॥

१—पाने वाले। २—क्रोध रूपी अग्नि। ३—देगा। ४—प्रशंसा।
५—वह भी। ६—शीघ्र ही।

भेद जग में अति बुरी, होत मित्रता हान।
यहि ते नर नारी हुवै, नारि नपुंसक जान॥
नारि नपुंसक जान, सहत बहु वेदन[1] यातें।
श्रीजिन वचन प्रमान, मानि हो दूरहिं यातें॥
भूरीसुन्दरि सीख, सदा हितकारी जानौ।
सब पापन को मूल, अधम माया पहचानौ॥१०॥

लोभ जगत में प्रबल है, याकी मोटी दौर।
दशवें गुनथानक तकहुँ, याकी जग में ठौर[2]॥
याकी जग में ठौर, देत चौरासी धामा।
तातें याको त्यागि, सिद्ध सब होत निकामा[3]॥
भूरीसुन्दरि सीख, मानि लैहै जो प्रानी।
शिवपुर को वह जाय, सदा लहि[4] है सुखखानी॥११॥

राग पाप दशमो कह्यो, यह मोटो जंजाल।
यहि के वश जो होत है, वह नर सदा बेहाल॥
वह नर सदा बेहाल, सुध बुध सब भागै।
चतुराई सब जाय, कर्म बन्धन तब जागै॥
भूरीसुन्दरि वचन, कहत जिनराज विनय करि।
होंहि सकल सुखि प्रानि, राग अवगुन को परिहरि[5]॥१२॥

द्वेष पाप सब में बड़ो, यातें होत अकाज॥
होत कलह घर में सदा, जब हो याको राज॥
जब हो याको राज, सुनो तुम प्यारे भविका।
फिरै चतुर्गति माहिं, पार होवै नहिं नविका[6]॥

१—दुःख। २—स्थान। ३—कर्मरहित। ४—पावेगा। ५—छोड़ कर।
६—नाव।

भूरीसुन्दरि वचन, सुनहु चित दै सब भैया।
त्यागि द्वेष यह देहु, बनोगे मुक्ति लहैया[1] ॥१३॥

क्लेश कबहुँ नहिं कीजिये, यातें सम्पति हान।
कोपाग्नी[2] यातें प्रबल, है जारत सुख मान॥
है जारत सुख मान, समाधी सबै भगावै।
बुरी वासना जाग, सदा बहु पाप कमावै॥
भूरीसुन्दरि कहत, सुनहु नर त्यागहु याको।
ह्वै है ईश सहाय, त्यागि जो दैहै[3] ताको ॥१४॥

निज मुख अभ्याख्यान[4] जो, वदत साधु अज्ञान।
कर्म बन्धन ताको हुवै, जानि लेहु मतिमान॥
जानि लेहु मतिमान, याहि तुम तजहु सुजाना।
ह्वै है कर्म संयोग, नहीं तो सब विधि नाना॥
भूरीसुन्दरि सीख, नित्त ही चितमहँ धारो।
अभ्याख्यान सदोष, सदा याको विनिवारो ॥१५॥

बहिना चुगली मत करो, हमरी तुम्हरी हानि।
यातें कर्म बंधात है, मिलत दुःख की खानि॥
मिलत दुःख की खानि, नाम को बट्टा लागै।
चुगली सुनि हरपाय, वहू[5] पुनि नरक को जावै॥
भूरीसुन्दरि कहत, सुनो तुम मेरा कहना।
चुगली मोटो पाप, तजहु तुम तुरतहिं[6] बहना ॥१६॥

मुख से पर औगुन नहीं, भाषहु धीर सुजान।
कर्म बन्ध यहिं चीकना, तातें सुख की हान॥

१—पाने वाले। २—क्रोध रूपी अग्नि। ३—देगा। ४—प्रशंसा।
५—वह भी। ६—शीघ्र ही।

तातें सुख की हान, सदा पर अवगुन ढाको।
पावहु सदा सुमान, छोड़ि के सब विधि थाको॥
भूरीसुन्दरि कहत, नहीं पर अवगुन भाखो।
ताते हो सम्मान, अन्त मुक्ती रस चाखो॥१७॥

थिरता मन राखहु सदा, रति अरती बिलगाय[१]।
मन समता को ठाम[२] है, पावहु सौख्य सुभाय॥
पावहु सौख्य सुभाय, सदा धीरज गुण धारो।
करो आत्म कल्यान, शोक हरिपहिं विनिवारो[३]॥
भूरी सुन्दरि कहत, सुनहु प्रभु सब सुखकन्दा।
ध्याऊँ तुव[४] पद कञ्ज[५], कटै सब मेरो फन्दा॥१८॥

पर धन कबहुँ न राखिये, यह है मोटी घात।
अल्प जिवन के हेतु रे, मती बिगाड़े बात॥
मती बिगाड़े बात, सीख सद्गुरु जो माने।
जग में होय सुखारि, पहुँचे स्वर्ग विमाने॥
भूरीसुन्दरि वचन, सदा हितकारी जानो।
परधन त्यागो सदा, अवशि[६] है जगतें जानो॥१९॥

मिथ्यादर्शन शल्य है, सब शल्यन सिरमौर।
इसका आदि न अन्त है, कहा कहूँ मैं और॥
कहा कहूँ मैं और, याहि गहि[७] बहुँ गति भटकै।
चाहें साधू होय, सोऊ पुनि दुर्गति लटकै॥
भूरीसुन्दरि वचन, सुनहु मन दै सब प्रानी।
जो नर यहि को त्याग, वही पूरा है ज्ञानी॥२०॥

१—दूर करके। २—स्थान। ३—दूर कर दो। ४—तुम्हारे ५—चरण कमल। ६—अवश्य। ७—पकड़ कर।

साधू भैया भिक्षुणी[1], बहना सुनो पुकार।
पाप अठारह छोड़ दो, होवै तुव निसतार[2]॥
होवै तुव निसतार, गहो जिन मारग सुन्दर।
नवहूँ पदारथ ज्ञान, गहो नितही जो सुन्दर॥
भूरीसुन्दरि कहत, गुरु चम्पा जी चेली।
मनमहँ हरप अपार, शरण जय गुरु की लेली॥२१॥

विनय सदा गुरु को करो, गुरुजन विनय अनूप[3]।
यातें आत्म उधार है, परत नहीं भव कूप[4]॥
परत नहीं भव कूप, ज्ञान उपजत है नीका।
जागत सौम्य[5] विवेक, मिटत संशय सब जीका॥
भूरीसुन्दरि कहत, गुरुनति पकड़हु भाई।
दुरहिं[6] सबै तुव[7] पाप, अन्तमहँ होइ भलाई॥२२॥

मूरख नर फूलो फिरत, देखि विभूती आप।
मद तें होत जो दोष है, नहिं समुझत तिहिं ताप॥
नहिं समुझत तिहिं ताप, सदा झूमै जिमि रम्भा।
नहिं सोचत परिनाम, सदा मन राखत दम्भा॥
भूरीसुन्दरि कहत, जगत को सहत उलम्भा।
जगत मूढ़ कह ताहिं, हमै लखि[8] होत अचम्भा॥२३॥

प्यारे सज्जन मीत तुम, गहौ अतिथी सत्कार[9]।
गृह आपे कहँ करहु तुम, जथा जोग[10] उपकार॥

१—साध्वी। २—छुटकारा। ३—अनोखा। ४—संसार रूपी कुए में।
५—सुन्दर। ६—दूर हों। ७—तुम्हारे। ८—देखकर। ९—अतिथि सत्कार।
१०—यथा योग्य।

जथा जोग उपकार, भवन आगत को कीजै।
यथाशक्ति सम्मान, अवशि ताही को कीजै॥
भूरीसुन्दरि कहत, सुखद है अतिथी सेवा।
करहु सदा हिय धार, पार हो तुम्हरो खेवा॥२४॥

माला मन से फेरहू, मन माला सुखकार।
मन माला फेरत सदा, ताकहँ स्वर्ग दुआर॥
ताकहँ स्वर्ग दुआर, मिलत कछु संशय नाहीं।
ज्योती[1] को शुभ भास[2], होत ता नर मन माहीं॥
भूरीसुन्दरि कहत, विना मन फेरे माला।
हँसि है सकल जहान, जानि है तव हिय काला॥२५॥

पर धन पर तिय तें सदा, दूर रहो मतिमान।
करत नेह तातें मनुज[3], परत अवशि दुख खान॥
परति अवशि दुख खान, जगत हो निन्दा भारी।
होत बुरो परिनाम, सकल नर देवहिं गारी॥
भूरीसुन्दरि कहत, तजहु इन दोनहुँ[4] भैया।
अवशि होयगी पार, भवोदधि[5] तुम्हरी नैया[6]॥२६॥

पाय जवानी मूढ़ नर, करत बहुत उत्पात।
धर्म मर्म जानत नहीं, करत अनेकन घात॥
करत अनेकन घात, सयँ कुछ जानत धामा[7]।
करत ताहिं तें प्रेम, अहै जो नरक को धामा[8]॥

१—प्रकाश। २—चमक। ३—मनुष्य। ४—दोनों को। ५—संसार
[illegible]

भूरीसुन्दरि कहत, सुनहु मूरख जन बात[1]।
तजें जु सकल कुचाल, अन्त महँ सुगती[1] जात[2] ॥२७॥

कर्म[1] करें तें बावरे, काटैं ते ही शूर।
कर्म बीज संसार का, कर्म बिगारे नूर॥
कर्म बिगारे नूर, नरक नर को लै जावे।
चहुँगति कर्महिं होत, नीच यातें कहलावे॥
भूरीसुन्दरि कहत, नाच यह सकल नचावे।
देव दनुज[4] सब लोक, सबहिं कहँ खेल खिलावे॥२८॥

खमा[5] सौम्य गुण जगत में, याहि गहौ सब कोय।
खमाधारि सब सुख लहैं[6], याहीं तें जस होय॥
याहीं तें जस होय, सुनो तुम उत्तम प्रानी।
खन्दकादि मुनिराज, खमाधारी सद्‌ ज्ञानी॥
भूरीसुन्दरि कहत, सदा यहि गुण कहँ धारो।
हैहै खेवा पार, भये[7] आतम[8] उद्धारो॥२९॥

गरब करे मत जीवड़ा, गरब करे दुख होय।
गरब करे रावन पर्यो, पङ्क ममा महँ जोय[9]॥
पङ्क ममा महँ जोय, राम ने गर्व नसायो।
भयो लंक को नाश, सुतादिक मरण जु पायो॥
भूरीसुन्दरि सीख, मानि तज दो गरबारी[10]।
हैहै सकल समाधि, आतमा सदा सुखारी॥३०॥

१—अच्छी गति में। २—जाता है। ३—सब यहां से क का खतोनी लिखी जाती है। ४—दानव। ५—क्षमा। ६—पाते हैं। ७—होने पर। ८—अपना का। ९—देखो। १०—गर्व करी वस्तु।

१० मू०

घट अपने करु चांदना, करु दूरहिं अँधकार।
ज्ञान हृदय में धार कर, पावो मुक्ती द्वार॥
पावो मुक्ती द्वार, भजो अरिहन्तहिं भाई।
सब सुख भजन प्रताप, मुनीजन मुक्तिहुँ पाई॥
भूरीसुन्दरि कहत, ज्ञान दीपक उर कीजै।
शुद्ध समगतो[१] धारि, आत्महित आपहिं कीजै॥११॥

नरक निगोदे जीवड़ा, घूम्यो काल अनन्त।
लखचौरासी योनि में, अब तारो भगवन्त॥
अब तारो भगवन्त, शरण तुम्हरी मैं आई।
करो भवोदधि[२] पार, दासि तुम्हरी कहलाई॥
भूरीसुन्दरि करत, अरज यह निशदिन स्वामी।
अब किमि करत विलम्ब, दयानिधि अन्तर्यामी॥१२॥

चरम शरीरी होय तूं, यह अवसर नहिं फेर।
अधिक काल पीछे मिला, मनुज जनम[३] नहिं फेर॥
मनुज जनम नहिं फेर, सुनोरे उत्तम मानी।
क्रोध मान को छोड़ि, करहु माया की हानी॥
भूरीसुन्दरि कहत, करो नर उत्तम काजा।
जासें हो भवपार, अन्त होवहि नहिं लाजा॥१३॥

छन छन पल पल में सदा, आयू छीजत जात[४]।
मूरख नर समझत नहीं, अन्त समय पछतात॥
अन्त समय पछतात, होत तब कहा सुधारा।
जो है तेरो काम, तुरित[५] करु तसु[६] उपचारा[७]॥

१—सम्यक्त्व। २—संसार रूपी समुद्र। ३—मनुष्य का जन्म।
४—नष्ट होती जाती है। ५—शीघ्र। ६—उसका। ७—उपाय।

भूरीसुन्दरि कहत, कपट छल छोड़ि विचारो।
जातें हो भवपार, होय तव सकल सुधारो ॥३४॥

जतना जीवन की करहु, जतना होत सुधर्म।
जतना तें निर्वानपद[1], चूर होत सब कर्म॥
चूर होत सब कर्म, मिटहि भव को सब बन्धन।
दया धरम परधान[2], अहै[3] सब दुःख निकन्दन[4]॥
भूरीसुन्दरि कहत, सुनो भूषण शुभ दाया।
याही तें मुनिराज, जतन महँ राखत काया ॥३५॥

झगड़ा कबहुँ न कीजिये, यातें दुःख अपार।
कौरव पाँडव वंश को, भयो याहितें छार[5]॥
भयो याहितें छार, जगत में भई हँसाई।
कोऊ नाहिं सहाय, होत झगड़ा में जाई॥
भूरीसुन्दरि कहत, सदा समता उर धरिये।
भूलेहुँ चतुर सुजान, कबहुँ झगड़ा नहिं परिये ॥३६॥

नरक निगोद महँ जाय कर, पर्यो जीव बहुबार।
महा कठिनता नर भयो, अब तो करे सुधार॥
अब तो करे सुधार, भूल मत भाई मेरे।
कर्म शत्रु हैं फिरत, सदा सब पीछे तेरे॥
भूरीसुन्दरि कहत, गई जनि[6] सोचहु भाई।
आगे की सुधि लेहु, होय जो सफल कमाई ॥३७॥

१—मोक्षपद। २—प्रधान। ३—है। ४—नाश करने वाला।
५—राख। ६—जन्म।

टेक न छोड़हु आपनी, धर्म गहे की आन।
टेक राखि हरिचन्द ने, कियो आतम अवदात[1] ॥
कियो आतम अवदात, नीच घर पानी भरियो।
सीताजी निज टेक, सतीपन उरमहँ धरियो ॥
भूरीसुन्दरि कहत, अन्त भो[2] तसु कल्याना।
याही तें निज टेक, तजत नहिं कबहु सुजाना ॥३८॥

ठगई चोरी तें अधिक, नर पावत दुख भूर[3]।
यातें ठगई त्याग दो, होय सौख्य[4] भरपूर ॥
होय सौख्य भरपूर, हुवै आतम निसतारो[5]।
अन्तकाल नहिं खेद, ज्ञानि जन याहि विचारो ॥
भूरीसुन्दरि कहत, सकल नर ठगई त्यागो।
होहु शान्ति रसलीन, सुधारस महँ तुम पागो ॥३९॥

डगमग डगमग मत करहु, दृढ़ राखो परिणाम।
डँवाडोल को त्याग कर, करो आतमा काम ॥
करो आतमा काम, शुद्ध श्रद्धा आराधो।
करो मिथ्यात्वहिं दूर, तरहु संसार अगाधो ॥
भूरीसुन्दरि कहत, ऐसा[6] फिर अवसर नाहीं।
मन चंचलता त्याग, धरहु समता तिहि माँहीं ॥४०॥

ढीठा ढीठा मत बनो, ढीठाई से हानि।
ढीठाई संसार महँ, खोवत है सब मान ॥

१—शुद्ध। २—हुआ। ३—बहुत। ४—सुख। ५—छुटकारा।
६—ऐसा।

खोवत है सब मान, सुनहु तुम चतुर सुजाना।
ढीठाई घट[1] ज्ञान, मान आदर सम्माना॥
भूरीसुन्दरि कहत, ढीठ जनि[2] बनहु सुजाना।
तौ ह्वैहै[3] कल्यान, तनिक संशय जनि लाना॥४१॥

नाना विधि का भेष धरि, नाना कर्म कराय॥
नाना गति से भोगतौं, नाना गति में जाय।
नाना गति में जाय, कर्म पुनि करहि अनेका॥
मूरख तूं अब चेत, तनिक मन धार विवेका।
भूरीसुन्दरि सीख, सुनहु सज्जन दै कानां॥
ह्वैहै तुव[4] निसतार[5], नहीं तो बहु दुख पाना॥४२॥

तपसा करहु सुचित्त से, तो होवे कल्यान।
तप कीन्हो ढंढन ऋषी, पायो केवल ज्ञान॥
पायो केवल ज्ञान, कर्म निज सबहि खपाये।
तप महिमा है भूरि[6], तपोगुण शास्त्रन गाये॥
भूरीसुन्दरि कहत, सीख गुरु की मन धारो।
करहु तपस्या खूब, तुरित[7] निज आत्महिं तारो॥४३॥

थिर[8] धीरज कर राखिये, तन मन बहु संकोच।
जो जन मन वश करत है, परभव होय न सोच॥
परभव होय न सोच, सदा थिरता चित धारो।
वशकरि इन्द्रियगणहु, अपुन आत्मा कहँ तारो॥
भूरीसुन्दरि कहत, धारि थिरता[9] मन माहीं।
राखु धर्म की टेक, होय दुख परभव[10] नाहीं॥४४॥

१—घटता। २—मत। ३—होगा। ४—तुम्हारा। ५—छुटकारा
६—अधिक। ७—शीघ्र। ८—स्थिर। ९—स्थिरता। १०—परलोक में।

टेक न छोड़हु आपनी, धर्म गहे की आन।
टेक राखि हरिचन्द ने, कियो आत्म अवदात[1] ॥
कियो आत्म अवदात, नीच घर पानी भरियो।
सीताजी निज टेक, सतीपन उरमहँ धरियो ॥
भूरीसुन्दरि कहत, अन्त ओर[2] तसु कल्याना।
याही तें निज टेक, तजत नहिं कबहु सुजाना ॥३८॥

ठगई चोरी तें अधिक, नर पावत दुख भूर[3]।
याते ठगई त्याग दो, होय सौख्य[4] भरपूर ॥
होय सौख्य भरपूर, हुवै आतम निस्तारो[5]।
अन्तकाल नहिं खेद, ज्ञानि जन याहि विचारो ॥
भूरीसुन्दरि कहत, सकल नर ठगई त्यागो।
होहु शान्ति रसलीन, सुधारस महँ तुम पागो ॥३९॥

डगमग डगमग मत करहु, दृढ़ राखो परिणाम।
डँवाडोल को त्याग कर, करो आतमा काम ॥
करो आतमा काम, शुद्ध श्रद्धा आराधो।
करो मिथ्यात्वहिं दूर, तरहु संसार अगाधो ॥
भूरीसुन्दरि कहत, ऐसा[6] फिर अवसर नाहीं।
मन चंचलता त्याग, धरहु समता तिहि माँहीं ॥४०॥

ढीठा ढीठा मत बनो, ढीठाई से हानि।
ढीठाई संसार महँ, खोवत है सब मान ॥

१—शुद्ध। २—हुआ। ३—बहुत। ४—सुख। ५—छुटकारा।
६—ऐसा।

रहैं सदा प्रतिकूल, धर्म सेवन वे करहीं ।
मेटहिं दुख को मूल, अशुभ कर्महिं परिहरहीं[1] ॥
भूरीसुन्दरि कहत, धर्म हित सदगुरु सेवहु[2] ।
सदगुरु चरण सहाय, पार ह्वैहै[3] सब खेवहु[4] ॥४८॥

फूल न बन्दा बहुत तू, बहु फूले बहु हानि ।
बहुत फूलि अनरथ करत, परत सदा दुख खानि ॥
परत सदा दुख खानि, मनुज भव अपुन[5] नसावें ।
करैं जितो अभिमान, अशुभ फल तेतोहि पावें ॥
भूरीसुन्दरि कहत, हृदय तुव दया विचारी ।
बन्दा बहुत न फूल, नहीं तो ह्वैहै ख्वारी ॥४९॥

बालकपन तूं छोड़दे, सद विवेक[6] हियधार ।
सद विवेक सब कथत हैं, काम यही निरधार[7] ॥
काम यही निरधार, मूढ़ता[8] दूर हटावो ।
बालकपन को त्यागि, पञ्च परमेष्ठी ध्यावो ॥
भूरीसुन्दरि कहत, सदा सब आश्रव त्यागो ।
गुनहु सदा नवकार, करम को टूटहि धागो ॥५०॥

भजन करो भगवान का, भजन किये भवहानि ।
भक्त न आवत जगत में, लहत[9] सदा सुख खानि ॥
लहत सदा सुख खानि, सुनहु तुम उत्तम प्रानी ।
सातों भय हों दूर, भगत जो है जग प्रानी ॥
भूरीसुन्दरि कहत, सुनहु भविका सब मेरे ।
भक्तीरस महँ पागि, भये जन सुखी घनेरे[10] ॥५१॥

१—छोड़ते हैं । २—सेवा करो । ३—होगा । ४—खेना । ५—अपना । ६—श्रेष्ठ ज्ञान । ७—निश्चय । ८—मूर्खता । ९—पाते हैं । १०—बहुत से ।

दान दीन कहँ दीजिये, काम होंय सब सिद्ध।
खीर दान दै ग्वालने, शालिभद्र सुखलीन ॥
शालिभद्र सुख लीन, श्रेणि कहु दरशन आया।
महिमा दान अमित्त, विमल यश को जो पाया ॥
भूरीसुन्दरि कहत, दान मत भूलहु भाई।
अभयदान परधान[१], याहिं में सुख अधिकाई ॥४५॥

धर्म सदा मङ्गल महा, धर्म होत सुखकार।
धर्ममूल सन्तोप पुनि, शील छमा[२] उपकार ॥
शील छमा उपकार, सदा इनसे सुख पावे।
धर्म प्रभाव विचारि, सदा देवहु[३] सिर नावै[४] ॥
भूरीसुन्दरि कहत, धर्म जनि[५] भूलहु भ्राता।
दोनहु लोक सहाय, यही है सबको त्राता[६] ॥४६॥

नमन सुजन निशदिन करहु, करहु ढिठाई दूर।
विनय मूल है धर्म को, हरहु सुभाव करूर[७] ॥
हरहु सुभाव करूर, दुःख दुर्भग दलि जावे।
सम्पति सौम्य[८] विलास, सदा घर में अधिकावे ॥
भूरीसुन्दरि कहत, सदा अविनय को त्यागो।
यातें करि भय दूर, शान्ति सुख महँ तुम पागो ॥४७॥

पापी जन नरकहिं परत, पाप दुःख को मूल।
यातें उत्तम पुरुष सब, रहें सदा प्रतिकूल ॥

१—प्रधान। २—क्षमा। ३—देवता भी। ४—नमाते हैं। ५—मत। ६—बचाने वाला। ७—क्रूर। ८—सुन्दर।

भव भव गोता खाय, मनुज सर्वस्व[१] गमावे।
लालच वश जो होय, अन्त वह नरकहिं जावे॥
भूरीसुन्दरि कहत, लोभ सीता को कीने।
भयो दशानन[२] नाश, दैत कुल[३] सबही छीने[४] ॥५५॥

वे दिन याद अहैं[५] तुम्हें, जिहि निगोद अवतार[६]।
मातु गरभ में वास किय, तल शिर ऊपर चार[७]॥
तलशिर ऊपर चार, कबहु सुरि कुक्षी[८] जाये[९]।
कबहुँ तो विष्ठामाँहि, जनम लै बहु दुख पाये॥
भूरीसुन्दरि कहत, मनुज भव मुश्किल पायो।
अब तो चेतहु भ्रात, चहत यदि सुख तुम पायो॥५६॥

संगति कीजै साधु की, हरै कोटि[१०] अपराध।
मन मुद मंगल होत है, होवहि सौख्य[११] अगाध।
होवहि सौख्य अगाध, ज्ञान उपजै मन माहीं॥
जातें हो भव पार, कुगतिमहँ जावे नाहीं।
भूरीसुन्दरि कहत, याहि[१२] लहि[१३] तरहि सुजाना॥
सद्गुरु को उपदेश, मन चित से धरु काना॥५७॥

हरजा किसका मत करो, हरजा हरजा होय।
जो हरजा को तजत[१४] है, तासु[१५] हरजा नहिं होय॥
तासु हरज नहिं होय, सदा मन हरषित[१६] रहही।
दयाधारि उपकार, करहु नित मङ्गल रहही॥

१—सब कुछ। २—रावण का। ३—राक्षस कुल। ४—नष्ट हुए। ५—हैं। ६—जन्म। ७—चरण, पैर। ८—देवी की कोख में। ९—पैदा हुए। १०—करोड़। ११—सुख। १२—इसको। १३—पाकर। १४—दौड़ता है। १५—उसका। १६—हर्षित, प्रसन्न।

मरना जग में अवशि[1] है, यातें बचे न कोय।
तनक जिवन[2] के हेतु नर, वृथा जन्म मत खोय॥
वृथा जन्म मत खोय, फेरि पीछे पछितै है।
फिरि तब पश्चाताप[3], तनिकहू[4] काम न ऐहै॥
भूरीसुन्दरि कहत, भवोदधि[5] कैसे तरि है।
अरे मूर्ख अज्ञान, सकल निज काम बिगरि[6] है॥५२॥

यही मनुज कर्त्तव्य है, परभव सुखिया[7] होय।
यातें नरभव पाइके, शुकल ध्यानरत[8] होय॥
शुकल ध्यानरत होय, सदा जिनराजहिं ध्यावे।
शील भावना दान, तपस्या चित्त लगावे॥
भूरीसुन्दरि कहत, महाव्रत सबहिं जो पालहु।
कछू बिगरि है नाहिं, रुष्ट यदि तुम पर कालहु॥५३॥

रामनाम परभाव[9] से, पाप पलायन[10] होत।
राम नाम जपि भव तरे, तामें लह्यो[11] न गोत॥
तामें लह्यो न गोत, राम उर अन्तर राजै।
ताके नाम उचार, करत सब पातक[12] भाजै॥
भूरीसुन्दरि कहत, राम अरिहँत हैं भाई।
जपहु निरन्तर नाम, लहो मुक्ती पद भाई॥५४॥

लालच करना है बुरा, लालच मोटी लाय[13]।
लालच के वश जीवड़ा, भव भव गोता खाय॥

१—अवश्य। २—जीवन। ३—पश्चाताप। ४—ज़रा भी। ५—संसार रूपी समुद्र। ६—बिगाड़ेगा। ७—सुखी। ८—शुक्ल ध्यान में तत्पर। ९—प्रभाव। १०—भाग जाता है। ११—पाया। १२—पाप। १३—अग्नि।

शुद्ध सामायिक आदरो रे, दोष बतीसे टाल।
भविक जन समकित[1] शुद्ध अराधो ॥१॥
बारह व्रत जो आदरोजी, पडिकमना[2] दो वार।
चौदह नेम चितारजोजी, विकथा दूर निवार ॥भ०॥२॥
सामायिक समता कही जी, शास्तर[3] में अधिकार।
नाम सामायिक आदरोजी, नहिं होवे भवपार ॥भ०३॥
दोष करन तीन जोग से जी, द्रव्य खेत्र कालभाव॥
इनका अर्थ विचारनेजी, ग्यारह प्रकृति समाव ॥भ०४॥
तेरी मेरी मत करोजी, चाड़ी चुगुली वार।
पर दूषन काढ़ो मतीजी, अपनो आप विचार ॥भ०॥५॥
अछता[4] औगुन मत कहोजी, छता[5] देवो विनिवार।
रहस बात भाखो नहींजी, यह श्रावक आचार[6] ॥भ०६॥
अमापितृ सारखा[7] जी, श्रावक कह्या जिनराज।
शत्रु सम तुम मत बनोजी, अल्प जिवन के काज॥भ०७॥
पासत्थादिक[8] देखनेजी, समुझाओ एकन्त[9]।
श्रेनिक रायनी ओपमाजी[10], क्यों न धारो मतिवन्त[11]॥भ०॥
पञ्चम काले ऊपना[12] जी, श्रावक नाम धराय।
जोख सरीखा[13] जानजोजी, चालनि उपमा लाय ॥भ०८॥
धर्मधर्म मुखसे कहेजी, मरम न जान लिगार[14]।
भेंडी सम में में करेजी, किम होवे भवपार ॥भ० १०॥

१—सम्यक्त्व। २—प्रतिक्रमण। ३—शास्त्र। ४—अविद्यमान। ५—विद्यमान। ६—व्यवहार। ७—समान। ८—पार्श्वस्थादि। ९—एकान्त में। १०—उपमा। ११—बुद्धिमान। १२—उत्पन्न हुए। १३—जोंक के समान। १४—अल्प भी।

भूरीसुन्दरि कहत, सीख जनि[१] भ्राता भूलो।
निशदिन परउपकार, करत निज मनमहँ फूलो॥५८॥

ज्ञानी ध्यानी बहु गुणी, मम गुरुणी विख्यात[२]।
सर्व सतिन में मोदकी[३], चम्पाजी सुख्यात[४]॥
चम्पाजी सुख्यात, तासु[५] चरणन शिर नाई[६]।
कका बत्तीसी आज, रची सब हित मन लाई[७]॥
भूरीसुन्दरि कहत, पढ़हु चित दै सब भ्राता।
जातें हों अति दूर, मनुज के दूषण जाता[८]॥५९॥

सब जीवन उपकार लखि[९], आतम हित के काज।
यहि की रचना मैं करी, याहि पढ़त दुखभाज[१०]॥
याहि पढ़त दुख भाज, सुनहु पण्डित जन बचना।
नहिं है पिङ्गल बोध, यही तें अटपट रचना॥
भूरीसुन्दरि कहत, विनय मम सुनहु सजना[११]।
सारभाग को लेह, सकल दूषण[१२] तुम तजना[१३]॥६०॥

५—उपदेश पद्य-भाषा[१४]।

कपूर हुवै अति उजलोजी (यह देशी)
सुनलो श्रावक श्राविकाजी रे जिन वाणी मनधार,

१—मत। २—प्रसिद्ध। ३—बड़ी। ४—अच्छे प्रकार से प्रसिद्ध। ५—उनके। ६—नमस्कार। ७—लगाकर। ८—सब दोष, दोष समुदाय। ९—देखकर। १०—भागता है। ११—सज्जन। १२—दोष। १३—छोड़ देना। १४—ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहां पर थोड़े से ही विविध भाषा पद्यों का उल्लेख किया जाता है, इनमें उपदेश के अतिरिक्त भक्ति भाव का भी समावेश किया गया है, आशा है कि ये पाठकजनों को लाभप्रद होंगे।

शुद्ध सामायिक आदरो रे, दोष बतीसे टाल।
भविक जन समकित[1] शुद्ध अराधो ॥१॥
बारह व्रत जो आदरोजी, पडिकमना[2] दो वार।
चौदह नेम चितारजोजी, विकथा दूर निवार ॥भ०॥२॥
सामायिक समता कही जी, शास्तर[3] में अधिकार।
नाम सामायिक आदरोजी, नहिं होवे भवपार ॥भ०३॥
दोय करन तीन जोग से जी, द्रव्य क्षेत्र कालभाव॥
इनका अर्थ विचारनेजी, ग्यारह प्रकृति समाव ॥भ०४॥
तेरी मेरी मत करोजी, चाड़ी चुगली धार।
पर दूषन काढ़ो मतीजी, अपनो आप विचार ॥भ०॥५॥
अछता[4] औगुन मत कहोजी, छता[5] देवो विनिवार।
रहस बात भाखो नहींजी, यह श्रावक आचार[6] ॥भ०६॥
क्षमापितू सारखा[7] जी, श्रावक केहा जिनराज।
शत्रु सम तुम मत बनोजी, अल्प जियन के काज॥भ०७॥
पासत्थादिक[8] देखनेजी, समुझाओ एकन्त[9]।
श्रेनिक रायनी ओपमाजी[10], क्यों न धारो मतिवन्त[11]॥भ०॥
पञ्चम काले ऊपना[12] जी, श्रावक नाम धराय।
जोख सरीला[13] जानजोजी, चाखनि उपमा लाय॥भ०६८
धर्मधर्म मुखसे कहेजी, मरम न जान लिग्यार[14]।
भेंडी सम में में करेजी, किम होवे भवपार ॥भ० १०॥

१—सम्यक्त्व। २—प्रतिक्रमण। ३—शास्त्र। ४—अविद्यमान। ५—विद्यमान। ६—व्यवहार। ७—समान। ८—पार्श्वस्थादि। ९—एकान्त में। १०—उपमा। ११—बुद्धिमान। १२—उत्पन्न हुए। १३—जोंक के समान। १४—ज़रा भी।

भूरीसुन्दरि कहत, सीख जनि[१] भ्राता भूलो।
निशदिन परउपकार, करत निज मनमहँ फूलो॥५८॥

ज्ञानी ध्यानी बहु गुणी, मम गुरुणी विख्यात[२]।
सर्व सतिन में मोदकी[३], चम्पाजी सुख्यात[४]॥
चम्पाजी सुख्यात, तासु[५] चरणन शिर नाई[६]।
कका बत्तीसी आज, रची सब हित मन लाई[७]॥
भूरीसुन्दरि कहत, पढ़हु चित दै सब भ्राता।
जातें हों अति दूर, मनुज के दूषण जाता[८]॥५९॥

सब जीवन उपकार लखि[९], आतम हित के काज।
यहि की रचना मैं करी, याहि पढ़त दुखभाज[१०]॥
याहि पढ़त दुख भाज, सुनहु पण्डित जन बचना।
नहिं है पिङ्गल बोध, यही तें अटपट रचना॥
भूरीसुन्दरि कहत, विनय मम सुनहू सजना[११]।
सारभाग को लेह, सकल दूषण[१२] तुम तजना[१३]॥६०॥

५—उपदेश पद्य-भाषा[१४]।

कपूर हुवै अति उजलोजी (यह देशी)
सुनलो श्रावक श्राविकाजी रे जिन वाणी मनधार,

१—मत। २—प्रसिद्ध। ३—बड़ी। ४—अच्छे प्रकार से प्रसिद्ध। ५—उनके। ६—नमस्कार। ७—लगाकर। ८—सब दोष, दोष समुदाय। ९—देखकर। १०—भागता है। ११—सज्जन। १२—दोष। १३—छोड़ देना। १४—ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहां पर थोड़े से ही विविध भाषा पद्यों का उल्लेख किया जाता है, इनमें उपदेश के अतिरिक्त भक्ति भाव का भी समावेश किया गया है, आशा है कि ये पाठकजनों को लाभप्रद होंगे।

अछता[1] मिरखा[2] मर्म जु भाषै तेतो काग समान।
कषायके वश होकर सतियां पहुँचै नरक री खान ॥तुम३॥
सतियाँ नाम धरायने स कछु सतीपना नहिं होय।
समिती शुद्ध हृदय महँ नाहीं पापी श्रमण ले जोय[3]॥तुम४॥
जिसमें अवगुण छता ज[4] होवे, तोभी मर्म न भाखै।
एकान्त में समझायने स कोई मातु पिता जिमि[5] दाखै॥५
उत्तम मुनिवर करें प्रशंसा नीच जले मनमाय[6]।
और उपाय तो कछु न लागे, तबअछता[7]आलन्लगाय॥तुम०॥६
अल्प जियन के कारने स कोई तजो पराई घात।
निश्चय करी जो बोलता स कोई भवभव में रुलजात[9]॥तुम०७
श्रावकरायां[10] को शिक्षा देवे, तीन टोले को मानो।
चौथे बिन नहिं कारज सरसी[11], यह निश्चय करिजानो॥तुम०॥८
भूरसुन्दरी कहे सुनजो बेना[12] जरा नहीं मुझ द्वेषो[13]।
तुम पर मुझको दया जु आवे अपना कर्मज देखो॥तुम०९॥

तरज कव्वाली।

चतुर तिरथ सुनो प्यारे, भूल पर बात मत करजो॥ श्रांकड़ी॥
करे परनिन्दा पाखंडी। मिले दुरगति[14] की कुंडी।
होयगी जगत में भंडी[15]। सिकरे कभी नहीं हुंडी॥
चतुर० ॥१॥

---

१ अविद्यमान। २—मृषा, असत्य। ३—देखो। ४—विद्यमान। ५—समान। ६—मन में। ७—अविद्यमान। ८—दोष। ९—भटकता फिरता है। १०—श्राविकायें। ११—पूरा होगा। १२—हे बहिनो। १३—द्वेष। १४—दुर्गति। १५—बुराई।

स्याद्वाद मत समझनेजी, परभव खटका लाय।
भूरसुन्दरी इम[1] उचारेजी, जद सुधरेली[2] काय ॥भ०११॥

हरहर नाम सुमिर सुखधाम, जीवन दो दिन का ॥
(यह चाल)

चेतन प्रभुका नाम सुमिरिले, साहय जीवन दोदिनका।
झूठ कपट करि कौड़ी जोड़ी, मेरुवत ढिगला।
अन्त समय सब छोड़ चलेगा, संग नहीं कंगला ॥चे०१॥
तन धन जोवन बादल छाया, विनस जाय छन में।
इनका गरव[3] करे सो मूरख, आयू पलपल में ॥चे०२॥
बाँकी टेढ़ी पगड़ी बांधे, ऊपर लगावे छोगा।
अरिहन्त भजन किया नहिं भोला, क्यों हंसावे लोगा ॥चे३॥
यह सम्पति सपने की माया, इसपर तू लोभाना[4]।
भूरसुन्दरी ध्यान कर बन्दे गर्व दूर करना ॥चे०॥४॥
प्रभुका नाम सुमिरिले जिवड़ा, जीवन दो दिनका ॥चे५॥

कीर्त्तिध्वज राजा हुआ मुनी (यह चाल)

सतियों नाम धराय ने[5] सरे भाषा विचारीने बोले।
मोटा मोटा आल[6] जु देवे ते पापी नर तोले ॥
तुम सुनो महासतियां भाषा विचारी ने बोलजो ॥१॥
भाषा समिती नहीं पिछानी[7] संजम का नहिं लेखा।
कर सकारी कठोरकारी छेदनकारी देखा॥तुम सुनो॥२॥

१—इस प्रकार। २—सुधरेगी। ३—गर्व, अभिमान। ४—लुभाया, लोभी बना। ५—रखकर। ६—दोष। ७—पहिचानी।

जाग मुसाफ़िर क्या सुख सोवे आखिर तुझको जाना है
(यह चाल)

चेत मूर्ख तू क्यों भव भटके, समझ समझ तू प्रानीरे॥टेक
संसार सागर में तू सुख सोवे होश नहीं दीवाना रे।
कहँ से आया कहँ फिर जायगा काल करत है खाना॥
चेत० ॥१॥

मादर[1] पिदर[2] तेरा कोइ न साथी, जन परजन[3] नइ[4] हमसीरा[5] रे
किस पर राचि रह्यो[6] तू भोला, अन्त कौन है तेरा रे॥
चेत० ॥२॥

इक आवत इक जात सयाने, कायम नहीं ठिकाना रे।
चेत चेत रे जल्द मुसाफिर, अन्त खाक में मिलना रे॥
चेत० ॥३॥

चार गती में फिरना तुझको खरची ले तुझ संगरे।
भूरसुन्दरी प्रभु भज प्रानी पाप की पोट[7] तू छंडेरे[8]॥
चेत० ॥४॥

गजल ताल।

सौतिन की सीख सुनिके मत मेरा जी सताओ (यह चाल)

आये नादान सोच मन में प्रभू नाम क्यों विसारा।
फ़िकर नहीं है दिल में, बजे काल का नकारा॥टेक॥
दिन चार का तमाशा। आखिर लगे प्यारा॥
अंजली का नीर[9] जावे पानी जिम[10] फुँवारा॥१॥

१—माता। २—पिता। ३—परिजन, कुटुम्बी। ४—नहीं। ५—पड़ोस। ६—मग्न हो रहा है। ७—गठरी। ८—छोड़ दे। ९—पानी। १०—समान।

साधु का नाम धरवाते । चुगली पराई घे खाते ॥
अछता[1] आल[2] लगवाते । मनमहँ खूब हरखाते ॥
चतुर० ॥२॥
आपको मानत हैं ऊँचे । उत्कृष्ट[3] पद में हू[4] पहुँचे ॥
बतावें औरन को नीचे । मोछपद[5] कहँ तें पहुँचे ॥
चतुर० ॥३॥
आप जब होवैं गुनवन्ता । पाप की पोट[6] छोड़ंता ॥
एक गुण होय शोभन्ता । किसनवत जस गावंता ॥
चतुर० ॥४॥
जो होवे महाव्रत धारी । पराई बात दे टारी ॥
भूरिसुन्दरी एम[7] बतलाई । सावद्द[8] की पोट हटवाई ॥
चतुर० ॥५॥

पिया मिलन के काज आज जोगन बन जाऊंगी॥(यह चाल)
नेम दरश के काज आज मैं संजम[9] धारूँगी ।
मणि मोतियन को हार तोड़ बेसर को छोडूँगी ॥
कर कंगन मरोड़ बाल सब लोचूंगी ॥नेम मिलन०॥१॥
मात पिता को छोड़ि नेम के संग जाऊँगी ।
सजि[10] सखियनको साथ जोग दिल धारूँगी ॥नेम०॥२॥
भवभव की मेरी प्रीती हेत की ओड़ निभाऊंगी ।
जाऊं गढ़ गिरनार संग सब दूर हटाऊंगी ॥नेम०॥३॥
सौ सखियन को साथ संजम[11] चित्त चाहूंगी ॥
भूरसुन्दरी मन चाह कर्मी में दर्शन पाऊंगी ॥नेम०॥४॥

१—अविद्यमान । २—दोष । ३—ऊँचे । ४—भी । ५—मोक्षपद । ६—गठरी । ७—इस प्रकार । ८—सावद्य, सदोष । ९—संयम । १०—छोड़ कर । ११—संयम ।

श्री पञ्चपरमेष्ठिने नमः ।

अथ द्वितीयस्तरङ्गः

मंगलाचरणम्

महावीरं वन्दे भव भयहरं विश्वशरणम् ।
दयालुं सर्वज्ञं विजितसमकामादि रिपुकम् ॥
परेशं विश्वेशं चतुरतिशयोपेतमनिशम् ।
समूयाद्भव्यानां सुशिव गतिदायी स सुमताम् ॥ १ ॥

अर्थ—संसार के भय को दूर करने वाले, सब को शरण देने वाले, दयालु, सर्वज्ञ, समस्त काम आदि शत्रुओं का विजय करने वाले, उत्तम ईश, विश्व के स्वामी तथा चार अतिशयों से युक्त श्री महावीर स्वामी को मैं निरन्तर नमस्कार करती हूँ, वे भव्य प्राणियों को सुन्दर शिवगति के देने वाले हों ॥१॥

श्रीमद्धन्नाभिधाया महित निजगुरोः स्वर्गलोकस्थितायाः
नत्वा चार्वङ्घ्रिपद्मेऽनुनतशिरसा भूरसुन्दर्यहं वै ॥
भव्यानामात्मबोधे ह्यतितर सुगमैः पद्यकैरात्मबोधम्
कुर्वेदोषं व्यपास्यानिशमिह सुहृदोऽधीयतां सारभाजः ।२॥

अर्थ—स्वर्गलोक में विराजमान श्री धन्ना जी नामक अपनी पूजनीया गुरुनी जी के दोनों सुन्दर चरण कमलों को विनत[1] शिर से वन्दन कर मैं भूरसुन्दरी भव्य जीवों के आत्मबोध[2] के लिये अत्यन्त सरल[3] पद्यों[4] के द्वारा आत्मबोध (अध्यात्मबोध) ग्रन्थ को बनाती हूँ, तत्त्वग्राही[5] सहृदय[6] पुरुष दोष का त्याग कर इसका निरन्तर अध्ययन करें ॥२॥

१—विनम्र । २—आत्मज्ञान । ३—सुगम । ४—छन्दों । ५—सार का ग्रहण करने वाले । ६—विचारशील ।

मू० १२

जग जाल में फंसा है आतम का सोच करना।
रहना नहीं यहाँ पर आगे ही तुझको जाना ॥२॥
मोह मान ने तुझे घेरा विषयों में रहे लुभाया।
गफलत की नींदमाहिं तुम जागो भोले भाया ॥३॥
यह सन्तरी है सद्गुरु तुमको चिता रहे[1] हैं।
सो मान कहना इनका भवसिन्धु[2] से तिरे[3] हैं ॥४॥
ममगुरुनी जग सितारा सूरसुन्दरि गुण भंडारा।
इन्द्र शिष्या[4] जिन्हों की, उन्हीं चरनोंका आधारा[5]॥५॥

कवित्त।

ज्ञान पढ़े ध्यान पढ़े, पण्डित सद्ज्ञान पढ़े,
ज्ञान को कमाय जानि तत्तसार पाया है।
करणी अपार जाको बरणी न जात कछु,
कीजै जस जाको कभौं अन्त हू न आया है॥
क्रोध तजि मान तजि वित्त परिवार तजि,
साधु मुनिराज सबै याका गुण गाया है।
कहै दास हरलाल साँची जानो ये ही बात,
ढूँढ़ि ढूँढ़ि पाया धर्म ढूँढ़िया[6] कहाया है॥१॥

⊛ इतिप्रथमस्तरङ्गः ⊛

१—होशियार कर रहे हैं। २—संसार रूपी समुद्र। ३—पार हो गये हैं। ४—चेली। ५—सहारा।

६—(प्रश्न)—"ढूंढ़िया" शब्द का अर्थ क्या है, अर्थात् ढूंढ़िया किसको कहते हैं
(उत्तर)—जो ढूंढ़ता है अर्थात् तलाश करता है उसको ढूंढ़िया कहते हैं।
(प्रश्न)—किस बात को तलाश करता है?
(उत्तर)—मैं क्या वस्तु हूं, मेरा क्या स्वरूप है, मेरा [illegible] संसार में क्या कर्त्तव्य है, ईश्वर और जगत् का क्या स्वरूप है, ईश्वर का ध्यान किस प्रकार किया जाता है, धर्म का क्या लक्षण है तथा कौन सा मार्ग कल्याणकारी है, इन सब बातों को जो ढूंढ़ता है उसे ढूंढ़िया कहते हैं।

अथ द्वितीयस्तरङ्गः

मंगलाचरणम्

महावीरं वन्दे भव भयहरं विश्वशरणम् ।
दयालुं सर्वज्ञं विजितसमकामादि रिपुकम् ॥
परेशं विश्वेशं चतुरतिशयोपेतमनिशम् ।
समूयाद्भव्यानां सुशिव गतिदायी स्वस्तुमताम् ॥ १ ॥

अर्थ—संसार के भय को दूर करने वाले, सब को शरण देने वाले, दयालु, सर्वज्ञ, समस्त काम आदि शत्रुओं का विजय करने वाले, उत्तम ईश, विश्व के स्वामी तथा चार अतिशयों से युक्त श्री महावीर स्वामी को मैं निरन्तर नमस्कार करती हूँ, वे भव्य प्राणियों को सुन्दर शिवगति के देने वाले हों ॥१॥

श्रीमच्छम्पाभिधाया महित निजगुरोः स्वर्गलोकस्थितायाः
नत्वा चार्वङ्घ्रिपद्मे ह्यनुनतशिरसा भूरसुन्दर्यहं वै ॥
भव्यानामात्मबोधे ह्यतितर सुगमैः पद्यकैरात्मबोधम्
कुर्वेदोषं व्यपास्यानिशमिह सुहृदोऽधीयतां सारभाजः ॥२॥

अर्थ—स्वर्गलोक में विराजमान श्री छम्पा जी नामक अपनी पूजनीया गुरुनी जी के दोनों सुन्दर चरण कमलों को विनत[1] शिर से वन्दन कर मैं भूरसुन्दरी भव्य जीवों के आत्मबोध[2] के लिये अत्यन्त सरल[3] पद्यों[4] के द्वारा आत्मबोध (अध्यात्मबोध) ग्रन्थ को बनाती हूँ, तत्त्वग्राही[5] सहृदय[6] पुरुष दोष का त्याग कर इसका निरन्तर अध्ययन करें ॥२॥

१—विनम्र । २—आत्मज्ञान । ३—सुगम । ४—छन्दों । ५—तत्त्व का ग्रहण करने वाले । ६—विचारशील ।

जग जाल में फंसा है आत्म का सोच करना।
रहना नहीं यहाँ पर आगे ही तुझको जाना ॥२॥
मोह मान ने तुझे घेरा विषयों में रहे लुभाया।
गफलत की नींदमाहिं तुम जागो भोले भाया ॥३॥
यह सन्तरी है सद्गुरु तुमको चिता रहे[१] हैं।
जो मान कहना इनका भवसिन्धु[२] से तिरे[३] हैं ॥४॥
ममगुरुनी जग सितारा भूरसुन्दरि गुण भंडारा।
इन्दर शिष्या[४] जिन्हों की, उन्हीं चरनोंका आधारा[५]॥५॥

कवित्त।

ज्ञान घड़े ध्यान घड़े, पण्डित सद्ज्ञान घड़े,
ज्ञान को कमाय जानि तत्तसार पाया है।
करणी अपार जाकी वरणी न जात कछु,
कीजै जस जाको कभी अन्त हू न आया है ॥
क्रोध तजि मान तजि वित्त परिवार तजि,
साधु मुनिराज सबै याका गुण गाया है।
कहै दास हरलाल साँची जानो ये ही बात,
ढूँढ़ि ढूँढ़ि पाया धर्म ढूँढ़िया[६] कहाया है ॥१॥

❀ इतिप्रथमस्तरङ्गः ❀

१—होशियार कर रहे हैं। २—संसार रूपी समुद्र। ३—पार हो गये हैं। ४—चेली। ५—सहारा।

६—(प्रश्न)—"ढूंढ़िया" शब्द का अर्थ क्या है, अर्थात् ढूंढ़िया किसको कहते हैं

(उत्तर)—जो ढूंढता है अर्थात् तलाश करता है उसको ढूंढ़िया कहते हैं।

(प्रश्न)—किस बात की तलाश करता है?

(उत्तर)—मैं क्या वस्तु हूँ, मेरा क्या स्वरूप है, मेरा इस संसार में क्या कर्त्तव्य है, ईश्वर और जगत् का क्या स्वरूप है, ईश्वर का ध्यान किस प्रकार किया जाता है, धर्म का क्या लक्षण है तथा कौन सा मार्ग कल्याणकारी है, इन सब बातों को जो ढूंढता है उसे ढूंढ़िया कहते हैं।

हे देव ! बहुत समय तक संसार रूपी वन में घूम कर बड़ी कठिनता से मैंने शान्ति को देने वाली आपकी नयकथा[1] रूपी अमृत की बावड़ी को पाया है। उस बावड़ी के बीच में चन्द्र किरण और हिम समुदाय के समान शीतल जल में निरंतर गोता लगाते हुए भी मुझ को ये तापों[2] के समूह क्यों नहीं छोड़ते हैं ? यह कैसा आश्चर्य का विषय है ॥३॥

विजानासि त्वं मे भवभव गतं दुःख निवहम् ।
विजातो यस्तस्य स्मृति रपि मनो मे व्यथयति ॥
ध्यसित्वं सर्वेशः सकृप इति मत्वाऽभ्युपगतः ।
इदानीं यत्कार्यं प्रमितिरिहदेवः खलु मम ॥ ४ ॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! आप मेरे प्रत्येक भव के दुःख समुदाय को जानते हैं, उन भवों में जो दुःख समुदाय उत्पन्न हुआ है उसका स्मरण भी मेरे मन को व्यथा[3] पहुँचाता है, आप सबके ईश[4] हैं और कृपालु हैं, यह समझ कर मैं आपके पास आया हूँ, अब जो कुछ इस संसार में मुझे करना है उसे आप जानें।

ध्ययं पन्था मुक्तेर्भृशमघमयैर्गाढतिमिरैः ।
समन्तात् सञ्छन्नो दुरधि गम को गर्त्तं विषमैः ॥
ततः शक्तो यातुं क इह ससुखं तेन यदि ते ।
सुवाग्रत्नोद्दीपो भवति खलु नाग्रेद्युतिकरः ॥५॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! यह मुक्ति का मार्ग अत्यन्त पापमय[5] गाढ़[6] अन्धकारों से सब ओर से आच्छादित[7] है तथा विषम गड्ढों से अत्यन्त दुर्गम है, इस दशा में इस संसार में यदि आपकी सुन्दर वाणी रूपी रत्न दीपक आगे प्रकाश न करे तो कौन मनुष्य सुखपूर्वक उस मार्ग से जा सकता है ॥ ५ ॥

१—नयमार्ग । २—दुःखों । ३—पीड़ा । ४—स्वामी । ५—पाप-रूपी । ६—घोर । ७—ढका हुआ ।

१—श्री जैन स्तवनाष्टकम् ।

ज्योतीरूपं तव जिनवर ध्वान्तविध्वंसहेतुः ।
त्वामेवाहुः सुशिवगतिदं तत्त्व वेत्तार एते ॥
चित्तावासे त्वमसि च मम स्फारमुद्भासमानः ।
एवं चां हस्तम इव कथं तव वासं लभेत ॥ १ ॥

अर्थ—हे जिनवर ! आपका ज्योतिःस्वरूप रूप अन्धकार के विनाश का कारण है, ये तत्त्वज्ञानी[1] पुरुष आपको ही सुन्दर शिवगति के दायक[2] बतलाते हैं आप मेरे चित्तरूपी स्थान में भी परम दीप्ति[3] के साथ प्रकाशमान रहते हैं, भला ऐसी दशा में अन्धकार के समान यह यह पाप वहां निवास को कैसे पाता है ॥१॥

लोकस्यास्य त्वमसि भगवन् निर्निमित्तेन बन्धुः ।
त्वय्येवेयं निखिल विषया विद्यते शक्तिरुग्रा ॥
भक्ति स्फीतां चिरमधिवसन् चित्तशय्यां मदीयाम् ।
मय्युद्भूतं कथमिव ततः क्लेशवृन्दं सहेथाः ॥ २ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आप इस संसार के निष्कारण[4] बन्धु हैं, आप ही में यह सर्व विषय की उग्र शक्ति विद्यमान है तथा आप मेरी भक्ति से व्याप्त चित्तरूपी शय्या पर चिरकाल से अधिवास[5] करते हैं तो भला ऐसी दशा में आप मुझ में उत्पन्न हुए क्लेश समुदाय का कैसे सहन करते हैं ॥२॥

अवाप्ता दैवेयं कथमपि सुदीर्घे भववने ।
सुधावापी भ्रान्त्वा तव नयकथा शान्ति जननी ॥
भृशं तस्या मध्ये हिमकर हिम व्यूह सलिले ।
अहो मां निर्मग्नं जहति न कथं तापनिवहाः ॥३॥

१—तत्त्व को जानने वाले । २—देने वाले ३—प्रकाश । ४—बिना कारण ५—निवास, स्थिति ।

हे देव ! बहुत समय तक संसार रूपी वन में घूम कर बड़ी कठिनता से मैंने शान्ति को देने वाली आपकी नयकथा[1] रूपी अमृत की बावड़ी को पाया है। उस बावड़ी के बीच में चन्द्र किरण और हिम समुदाय के समान शीतल जल में निरंतर गोता लगाते हुए भी मुझ को ये तापों[2] के समूह क्यों नहीं छोड़ते हैं ? यह कैसा आश्चर्य का विषय है ॥३॥

विजानासि त्वं मे भवभव गतं दुःख निवहम् ।
विजातो यत्तस्य स्मृति रपि मनो मे व्यथयति ॥
असित्वं सर्वेशः सकृप इति मत्वाऽभ्युपगतः ।
इदानीं यत्कार्यं प्रमितिरिहदेवः खलु मम ॥ ४ ॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! आप मेरे प्रत्येक भव के दुःख समुदाय को जानते हैं, उन भवों में जो दुःख समुदाय उत्पन्न हुआ है उसका स्मरण भी मेरे मन को व्यथा[3] पहुँचाता है, आप सबके ईश[4] हैं और कृपालु हैं, यह समझ कर मैं आपके पास आया हूँ, अब जो कुछ इस संसार में मुझे करना है उसे आप जानें।

अयं पन्था मुक्तेर्भृशमघमयैर्गाढतिमिरैः ।
समन्तात् सञ्छन्नो दुरधि गम को गर्त्तै विषमैः ॥
ततः शक्तो यातुं क इह ससुखं तेन यदि ते ।
सुवाक्प्रलोद्दीपो भवति खलु नाग्रेद्युतिकरः ॥५॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! यह मुक्ति का मार्ग अत्यन्त पापमय[5] गाढ़[6] अन्धकारों से सब ओर से आच्छादित[7] है तथा विषम गड्ढों से अत्यन्त दुर्गम है, इस दशा में इस संसार में यदि आपकी सुन्दर वाणी रूपी रत्न दीपक आगे प्रकाश न करे तो कौन मनुष्य सुखपूर्वक उस मार्ग से जा सकता है ॥ ५ ॥

१—नयमार्ग । २—दुःखों । ३—पीड़ा । ४—स्वामी । ५—पाप-रूपी । ६—घोर । ७—ढका हुआ ।

१—श्री जैन स्तवनाष्टकम् ।

ज्योतीरूपं तव जिनवर ध्वान्तविध्वंसहेतुः ।
त्वामेवाहुः सुशिवगतिदं तत्त्व वेत्तार एते ॥
चित्तावासे त्वमसि च मम स्फारमुद्भासमानः ।
एवं चां हस्तम इव कथं तत्र वासं लभेत ॥ १ ॥

अर्थ—हे जिनवर ! आपका ज्योति स्वरूप रूप अन्धकार के विनाश का कारण है, ये तत्त्वज्ञानी[1] पुरुष आपको ही सुन्दर शिवगति के दायक[2] बतलाते हैं आप मेरे चित्तरूपी स्थान में भी परम दीप्ति[3] के साथ प्रकाशमान रहते हैं, भला ऐसी दशा में अन्धकार के समान यह यह पाप वहां निवास को कैसे पाता है ॥१॥

लोकस्यास्य त्वमसि भगवन् निर्निमित्तेन बन्धुः ।
त्वय्येवेयं निखिल विषया विद्यते शक्तिरुग्रा ॥
भक्ति स्फीतां चिरमधिवसन् चित्तशय्यां मदीयाम् ।
मय्युद्भूतं कथमिव ततः क्लेशवृन्दं सहेथाः ॥ २ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आप इस संसार के निष्कारण[4] बन्धु हैं, आप ही में यह सर्व विषय की उग्र शक्ति विद्यमान है तथा आप मेरी भक्ति से व्याप्त चित्तरूपी शय्या पर चिरकाल से अधिवास[5] करते हैं तो भला ऐसी दशा में आप मुझ में उत्पन्न हुए क्लेश समुदाय का कैसे सहन करते हैं ॥२॥

अवाप्ता दैवेयं कथमपि सुदीर्घे भवघने ।
सुधावापी भ्रान्त्वा तव नयकथा शान्ति जननी ॥
भृशं तस्या मध्ये हिमकर हिम व्यूह सलिले ।
अहो मां निर्मग्नं जहति न कथं तापनिवहाः ॥३॥

१—तत्त्व को जानने वाले। २—देने वाले ३—प्रकाश। ४—बिना कारण ५—निवास, स्थिति।

हे देव ! बहुत समय तक संसार रूपी वन में घूम कर बड़ी कठिनता से मैंने शान्ति को देने वाली आपकी नयकथा[1] रूपी अमृत की बावड़ी को पाया है। उस बावड़ी के बीच में चन्द्र किरण और हिम समुदाय के समान शीतल जल में निरंतर गोता लगाते हुए भी मुझ को ये तापों[2] के समूह क्यों नहीं छोड़ते हैं? यह कैसा आश्चर्य का विषय है ॥३॥

विजानासि त्वं मे भवभव गतं दुःख निवहम् ।
विजातो यत्तस्य स्मृति रपि मनो मे व्यथयति ॥
असित्वं सर्वेशः सकृप इति मत्वाऽभ्युपगतः ।
इदानीं यत्कार्यं प्रमितिरिहदेवः खलु मम ॥ ४ ॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! आप मेरे प्रत्येक भव के दुःख समुदाय को जानते हैं, उन भवों में जो दुःख समुदाय उत्पन्न हुआ है उसका स्मरण भी मेरे मन को व्यथा[3] पहुँचाता है, आप सबके ईश[4] हैं और कृपालु हैं, यह समझ कर मैं आपके पास आया हूँ, अब जो कुछ इस संसार में मुझे करना है उसे आप जानें।

अयं पन्था मुक्तेर्भृशमघमयैर्गाढतिमिरैः ।
समन्तात् सञ्छन्नो दुरधि गम को गर्त्त विषमैः ॥
ततः शक्तो यातुं क इह सुसुखं तेन यदि ते ।
सुवाग्रत्नोद्दीपो भवति खलु नाग्रेद्युतिकरः ॥५॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! यह मुक्ति का मार्ग अत्यन्त पापमय[5] गाढ़[6] अन्धकारों से सब ओर से आच्छादित[7] है तथा विषम गड्ढों से अत्यन्त दुर्गम है, इस दशा में इस संसार में यदि आपकी सुन्दर वाणी रूपी रत्न दीपक आगे प्रकाश न करे तो कौन मनुष्य सुखपूर्वक उस मार्ग से जा सकता है ॥ ५ ॥

१—नयमार्ग । २—दुःखों । ३—पीड़ा । ४—स्वामी । ५—पापरूपी । ६—घेर । ७—ढका हुआ ।

सेवां ते विदधातु शक्र इति किं श्लाघा तथा ते भवेत्।
श्लाघां तस्य करोति सा भवलयोद्दीपेति मे सम्मतम् ॥
निस्तारी भव सिन्धुतस्त्वमिहवै त्वं सिद्धि कान्तापतिः।
लोकानाम्प्रभुरेव मेव किलते स्तोत्रं बुधैः श्लाघ्यते ॥६॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! यदि इन्द्र आपकी सेवा करे तो उसकी उस सेवा से आपकी क्या प्रशंसा हो सकती है ? . किन्तु मेरी तो यह सम्मति है कि उसकी सेवा उसकी प्रशंसा करती है, क्योंकि वह संसार के लय[1] को प्रकट करती है, देखो ! बुद्धिमान् लोग तो आपके स्तोत्र की इस प्रकार प्रशंसा करते हैं कि—आप संसार समुद्र से पार करने वाले हैं, आप सिद्धि रूपी स्त्री के पति हैं तथा आप ही सब लोकों के प्रभु हैं ॥ ६ ॥

चित्ते ध्यायन् निरुपमसुख ज्ञानदृग्वीर्यरूपम् ।
देव त्वां यः समय नियमादादरेण स्तवीति ॥
श्रेयोमार्गं स किलसुकृती तावता पूरयित्वा ।
श्रेयोऽमत्रं भवति नियतं पञ्चधा वञ्चितानाम् ॥७॥

अर्थ—हे देव ! निरुपम[2] सुख, ज्ञान और दर्शन में पराक्रम करने वाले आपका चित्त में ध्यान करके जो पुरुष आदरपूर्वक समय[3] के नियम से आपकी स्तुति करता है वह पुण्यात्मा पुरुष कल्याण मार्ग को शीघ्र ही प्राप्त कर पाँच प्रकार से प्रवञ्चित[4] विषयों के कल्याण का पात्र[5] अवश्यमेव हो जाता है ॥ ७ ॥

सकल लोक विभासक हे प्रभो ।
विजित राग जिनेश दयानिधे ॥
प्रहर मोह तमो मम मानसात् ।
वितर शान्ति सुखं कृपयाशु नः ॥८॥

१—नाश । २—मनोज्ञा, सर्वोत्तम । ३—पक्ष, या सिद्धान्त । ४—विरहित । ५—योग्य ।

अर्थ—हे सकल[1] लोक के प्रकाशक[2] ! हे प्रभो ! हे राग का विजय करने वाले ! हे जिनेश ! हे दयानिधे ! मेरे मन से मोह रूप अन्धकार को दूर कीजिये तथा कृपा करके हम सब को शीघ्र ही शान्ति-सुख दीजिये ॥ ८ ॥

२—नव तत्त्व निरूपणम् ।

यः कर्त्ता सर्व कार्याणां, भोक्ता कर्मफलस्य च ।
व्यवहारनयेनासौ, जीवः प्रोक्तो जिनागमे ॥१॥

अर्थ—जो सब कार्यों का करने वाला है तथा कर्म फल का भोगने वाला है; उसको व्यवहार नय के द्वारा जैन आगम[3] में जीव कहा है ॥ १ ॥

निश्चयं नय माश्रित्य, जीव लक्षण मुच्यते ।
ज्ञान दर्शन चारित्र निजगुण विधायकः ॥२॥
भोक्ता चाभिमतोजीवः, यद्वा तल्लक्षणं त्विदम् ।
सुख दुःख परिज्ञानोपयोगेनावृतस्तु यः ॥३॥
चेतनः प्राणधर्त्ताच, जीवोऽसौ प्रकीर्तितः ॥
आद्यतत्त्वस्य जीवस्य, लक्षणं सम्प्रकीर्तितम् ॥४॥
(त्रिभिर्विशेषकम्)

अर्थ—अब निश्चय नय के अनुसार जीव का लक्षण कहा जाता है—जो ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप अपने गुणों का कर्त्ता[4] है और उनका भोक्ता[5] है वह जीव माना गया है, अथवा जीव का यह लक्षण है कि—जो सुख, दुःख, ज्ञान और उपयोग से युक्त है, चेतन तथा प्राणधारक[6] है उसे जीव कहते हैं, यह पहिले तत्त्व जीव का लक्षण कह दिया गया ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

१—समस्त । २—प्रकाश करने वाला । ३—शास्त्र । ४—करने वाला । ५—भोगने वाला । ६—प्राणों को धारण करने वाला ।

सेवां ते विदधातु शक्र इति किं श्लाघा तथा ते भवेत्।
श्लाघां तस्य करोति सा भवलयोद्दीपेति मे सम्मतम्॥
निस्तारी भव सिन्धुतस्त्वमिहवै त्व सिद्धि कान्तापति।
लोकानाम्प्रभुरेव मेव किलते स्तोत्रं बुधैः श्लाघ्यते॥६॥

अर्थ—हे स्वामिन्! यदि इन्द्र आपकी सेवा करे तो उसकी उस सेवा से आपकी क्या प्रशसा हो सकती है? किन्तु मेरी तो यह सम्मति है कि उसकी सेवा उसकी प्रशसा करती है, क्योंकि वह ससार के लय[1] को प्रकट करती है, देखो! बुद्धिमान् लोग तो आपके स्तोत्र की इस प्रकार प्रशसा करते हैं कि—आप ससार समुद्र से पार करने वाले हैं, आप सिद्धि रूपी स्त्री के पति हैं तथा आप ही सब लोकों के प्रभु हैं॥ ६॥

चित्ते ध्यायन् निरुपमसुख ज्ञानदृग्वीर्यरूपम्।
देव त्वां यः समय नियमादादरेण स्तवीति॥
श्रेयोमार्गं स किलसुकृती तावता पूरयित्वा।
श्रेयोऽमत्र भवति नियत पञ्चधा पञ्चितानाम्॥७॥

अर्थ—हे देव! निरुपम[2] सुख, ज्ञान और दर्शन में पराक्रम करने वाले आपका चित्त में ध्यान करके जो पुरुष आदरपूर्वक समय[3] के नियम से आपकी स्तुति करता है वह पुण्यात्मा पुरुष कल्याण मार्ग को शीघ्र ही प्राप्त कर पाँच प्रकार से प्रपञ्चित[4] विषयों के कल्याण का पात्र[5] अवश्यमेव हो जाता है॥ ७॥

सकल लोक विभासक हे प्रभो।
विजित राग जिनेश दयानिधे॥
प्रहर मोह तमो मम मानसात्।
वितर शान्ति सुख कृपयाशु नः॥८॥

१—नाश। २—मनोज्ञ, सर्वोत्तम। ३—वक्त, या सिद्धान्त। ४—विस्तृत। ५—योग्य।

ज्ञानं पंच विधं प्रोक्तं, दर्शनन्तु चतुर्विधम् ।
चारित्रं सप्तधा ज्ञेयं, द्विविधं तप उच्यते ॥ १० ॥
द्विविधं चैव भवेद्वीर्यं, ह्युपयोगस्तु कीर्त्तितः ।
द्वादशधा समासेन, कीर्त्तितं जीव लक्षणम् ॥ ११ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—ज्ञान पाँच प्रकार का कहा गया है, दर्शन चार प्रकार का कहा गया है, चारित्र सात प्रकार का जानना चाहिये, तप दो प्रकार का कहा गया है, वीर्य भी दो ही प्रकार का कहा गया है तथा उपयोग बारह प्रकार का कहा गया है, यह संक्षेप से जीव का लक्षण कह दिया गया ॥१०॥११॥

जीव लक्षणहीनो यः, अजीवः स प्रकीर्त्तितः ।
जडोऽपं चेतनाशून्यः, तस्य भेदाश्चतुर्दश ॥ १२ ॥

अर्थ—जो जीव के लक्षणों से रहित[1] है, वह अजीव कहा गया है, यह (अजीव) जड़ और चेतना शून्य[2] है, इसके चौदह भेद हैं ॥१२॥

शुभस्य कर्मणो येन, पुद्गलानान्तु संचयात् ।
जायते हि सुखावाप्तिः पुण्यं तत्प्रकीर्त्तितम् ॥ १३ ॥

अर्थ—जिसके द्वारा शुभ कर्म के पुद्गलों का सञ्चय[3] होने से सुख की प्राप्ति होती है उसे पुण्य कहते हैं ॥१३॥

द्विचत्वारिंशता भोगः, प्रकारैस्तस्य जायते ।
प्रकारास्ते तु विज्ञेया, ग्रन्थेष्वन्येषु विस्तरात् ॥ १४ ॥

अर्थ—इस पुण्य का भोग बयालीस प्रकारों से होता है, उन प्रकारों को दूसरे ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक जान लेना चाहिये ॥१४॥

१—जिसमें जीव का लक्षण नहीं घटता है। २—चेतना से रहित। ३—संग्रह।

सर्वेषामपि जीवाना मंशोऽनन्ततमः सदा ।
अतस्योद् घटितस्तेन, जीव एक विधः स्मृतः ॥५॥
चेतनालक्षणेनेह, त्रसस्थावर भेदतः ॥
द्विविधस्तु समाख्यातः, इतिवेद्यंमनीषिभिः ॥६॥
(युग्मम्)

अर्थ—सब जीवों के शुद्ध ज्ञान का अनन्त तम भाग सदा उघड़ा रहता है इसलिये चेतनारूप लक्षण के द्वारा जीव एक प्रकार का माना गया है तथा त्रस[1] और स्थावर[2] के भेद से वह दो प्रकार का कहा गया है, यह विचारशील जनों को जान लेना चाहिये ॥५॥६॥

वेदस्यापेक्षयोक्तः स त्रिविधो जैन आगमे ।
गतेरपेक्षया चापि चतुर्धा सम्प्रकीर्तितः॥७॥
इन्द्रियापेक्षया पञ्चविधः कायव्यपेक्षया ।
षड् विधस्तुसमाख्यात, जीवभेदा इमे मताः ॥८॥
(युग्मम्)

अर्थ—वह जीव जैन आगम में वेद की अपेक्षा से तीन प्रकार का कहा गया है, गति की अपेक्षा से चार प्रकार का कहा गया है, इन्द्रियों की अपेक्षा से पाँच प्रकार का तथा शरीर की अपेक्षा से छः प्रकार का कहा गया, इस प्रकार ये जीव के भेद माने गये हैं ॥७॥८॥

ज्ञानदर्शन चारित्रं, तपो वीर्यं तथैव च ।
उपयोगश्चापि विज्ञेयं षड्विधं जीव लक्षणम् ॥ ९ ॥

अर्थ—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग यह छः प्रकार का जीव-लक्षण जानना चाहिये ॥९॥

१—चलजीव । २—स्थितिजीव ।

ज्ञानं पंच विधं प्रोक्तं, दर्शनन्तु चतुर्विधम् ।
चारित्रं सप्तधा ज्ञेयं, द्विविधं तप उच्यते ॥ १० ॥
द्विविधं चैव भवेद्वीर्यं, ह्युपयोगस्तु कीर्त्तितः ।
द्वादशधा समासेन, कीर्त्तितं जीव लक्षणम् ॥ ११ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—ज्ञान पाँच प्रकार का कहा गया है, दर्शन चार प्रकार का कहा गया है, चारित्र सात प्रकार का जानना चाहिये, तप दो प्रकार का कहा गया है, वीर्य भी दो ही प्रकार का कहा गया है तथा उपयोग बारह प्रकार का कहा गया है, यह संक्षेप से जीव का लक्षण कह दिया गया ॥१०॥११॥

जीव लक्षणहीनो यः, अजीवः स प्रकीर्त्तितः ।
जड़ोऽयं चेतनाशून्यः, तस्य भेदाश्चतुर्दश ॥ १२ ॥

अर्थ—जो जीव के लक्षणों से रहित[1] है, वह अजीव कहा गया है, यह (अजीव) जड़ और चेतना शून्य[2] है, इसके चौदह भेद हैं ॥१२॥

शुभस्य कर्मणो येन, पुद्गलानान्तु संचयात् ।
जायते हि सुखावाप्तिः पुण्यं तत्प्रकीर्त्तितम् ॥ १३ ॥

अर्थ—जिसके द्वारा शुभ कर्म के पुद्गलों का सञ्चय[3] होने से सुख की प्राप्ति होती है उसे पुण्य कहते हैं ॥१३॥

द्विचत्वारिंशता भोगः, प्रकारैस्तस्य जायते ।
प्रकारास्ते तु विज्ञेया, ग्रन्थेष्वन्येषु विस्तरात् ॥ १४ ॥

अर्थ—इस पुण्य का भोग बयालीस प्रकारों से होता है, उन प्रकारों को दूसरे ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक जान लेना चाहिये ॥१४॥

१—जिसमें जीव का लक्षण नहीं घटता है। २—चेतना से रहित। ३—सञ्चय।

पुण्य लक्षण हीनं यत्, बुधैः पापं तदुच्यते ।
तेना शुभस्य कार्यस्य, पुद्गलानान्तु संचयः ॥ १५ ॥
दुःखावाप्तिस्ततश्चैव, जीवस्य जायते ध्रुवम् ।
ह्यशीति साधने नेह, भोगस्तस्य प्रजायते ॥ १६ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—जो पुण्य के लक्षण से रहित[1] है, उसको बुद्धिमान लोग पाप कहते हैं, उस (पाप) के द्वारा अशुभ कर्म के पुद्गलों का सञ्चय[2] होता है और उससे जीव को अवश्यमेव दुःख की प्राप्ति होती है तथा उस (पाप) का भोग बयासी (८२) साधनों के द्वारा होता है ॥१५॥१६॥

नवानां कर्मणां बन्धो, जायते येन निस्पशः ।
आश्रवोऽसौ द्विचत्वारिंशद्भेदश्च प्रकीर्त्तितः ॥१७॥
शरीर वाङ् मनोयोगैरशुभस्यशुभस्य च ।
एतेन कर्मणः प्राप्तिर्जीवस्य भवति ध्रुवम् ॥ १८ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—जिसके द्वारा सर्वदा नवीन[3] कर्मों का आगमन होता है उसे आश्रव कहते हैं। इसके बयालीस (४२) भेद हैं तथा इसके द्वारा शरीर, वाणी और मन के योग से अशुभ तथा शुभ कर्म की प्राप्ति जीव को अवश्य होती है ॥१७॥१८॥

आगच्छत्कर्मणांयेन, ह्यवरोधः प्रजायते ।
संवरः स समाख्यातो, ह्याश्रवारोध कारणम् ॥१९॥
भेदाः सप्ताधिकास्तस्य, पंचाशच्च प्रकीर्त्तिताः ।
द्रव्यभावविभेदेन, द्विधैवासौप्रकीर्त्तिताः ॥ २० ॥
(युग्मम्)

१—जिसमें पुण्य का लक्षण नहीं है । २—ढेर । ३—नये ।

अर्थ—जिसके द्वारा आते हुये कर्मों का अवरोध[1] होता है उसको संवर कहते हैं, यही आश्रव के अवरोध का कारण है, इसके सत्तावन (५७) भेद कहे गये हैं—परन्तु द्रव्य और भाव के द्वारा यह दो ही प्रकार का कहा गया है ॥१९॥२०॥

कर्मणामेक देशेन, क्षयः सञ्जायते यथा ।
निर्जराऽसौ समाख्याता, कर्मांश परिशाटिका ॥ २१ ॥
द्रव्यभाव विभेदेन, द्विधा प्रोक्ता जिनागमे ।
कामाकाम समायुक्ता, द्विधैवान्या प्रकीर्त्तिता ॥ २२ ॥
द्वादशभेद युक्तेन, तपसा सापि जायते ।
ते भेदास्तपसश्चैव, प्रथिता जैन आगमे ॥ २३ ॥
(त्रिभिर्विशेषकम्)

अर्थ—जिसके द्वारा कर्मों का एक देश से क्षय होता है उसे निर्जरा कहते हैं, इससे कर्मों के अंश[2] का परिशाटन[3] होता है, द्रव्य और भाव के द्वारा यह (निर्जरा) जैन आगम[4] में दो प्रकार की कही गई है, निर्जरा के दो भेद और भी हैं—सकाम निर्जरा तथा अकाम निर्जरा, बारह प्रकार के तप के द्वारा यह (निर्जरा) उत्पन्न होती है । तप के बारह भेद जैन आगम में प्रसिद्ध हैं ॥२१॥२२॥२३॥

नूतनैः कर्मभिर्योगो, जायते ह्यात्मनस्तु यः ।
प्राचीनानां बुधास्तं वै, बन्धनाम्ना प्रचक्षते ॥ २४ ॥
प्रकृत्यादि समायुक्तो, बन्धः प्रोक्तश्चतुर्विधः ।
तस्यविस्तरतो रूपं ज्ञेयं ग्रंथान्तरैर्बुधै ॥ २५ ॥
(युग्मम्)

१—रुकावट । २—भाग, हिस्सा । ३—झड़ना । ४—शास्त्र ।

पुण्य लक्षण हीनं यत्, बुधैः पापं तदुच्यते।
तेना शुभस्य कार्यस्य, पुद्गलानान्तु संचयः॥ १५॥
दुःखावाप्तिस्ततश्चैव, जीवस्य जायते ध्रुवम्।
द्व्यशीति साधने नेह, भोगस्तस्य प्रजायते॥ १६॥
(युग्मम्)

अर्थ—जो पुण्य के लक्षण से रहित[1] है, उसको बुद्धिमान् लोग पाप कहते हैं, उस (पाप) के द्वारा अशुभ कर्म के पुद्गलों का सञ्चय[2] होता है और उससे जीव को अवश्यमेव दुःख की प्राप्ति होती है तथा उस (पाप) का भोग बयासी (८२) साधनों के द्वारा होता है॥१५॥१६॥

नवानां कर्मणां बन्धो, जायते येन नित्यशः।
आश्रवोऽसौ द्विचत्वारिंशद्भेदश्च प्रकीर्त्तितः॥१७॥
शरीर वाङ् मनोयोगैरशुभस्यशुभस्य च।
एतेन कर्मणः प्राप्तिर्जीवस्य भवति ध्रुवम्॥ १८॥
(युग्मम्)

अर्थ—जिसके द्वारा सर्वदा नवीन[3] कर्मों का आगमन होता है उसे आश्रव कहते हैं। इसके बयालीस (४२) भेद हैं तथा इसके द्वारा शरीर, वाणी और मन के योग से अशुभ तथा शुभ कर्म की प्राप्ति जीव को अवश्य होती है॥१७॥१८॥

आगच्छत्कर्मणांयेन, अवरोधः प्रजायते।
संवरः स समाख्यातो, आश्रवारोध कारणम्॥१९॥
भेदाः सप्ताधिकास्तस्य, पंचाशच्च प्रकीर्त्तिताः।
द्रव्यभावविभेदेन, द्विधैवासौप्रकीर्त्तिताः॥ २०॥
(युग्मम्)

१—जिसमें पुण्य का लक्षण नहीं है। २—संग्रह। ३—नये।

अर्थ—सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र, इन तीनों को जैनशास्त्र में ज्ञानवान् पूर्वाचार्यों ने मोक्ष मार्ग स्वरूप कहा है, आगम के जानने वाले पुरुषों ने इन्हीं तीनों को "तीन रत्न" (रत्नत्रय) नाम से भी कहा है, मोक्ष की अभिलाषा[1] रखने वाले जीवों को प्रयत्न के साथ इनका सम्पादन[2] करना चाहिये, इन्हीं तीनों के द्वारा अविनाशी शाश्वत पद को पाकर जीव परमानन्द में लीन होकर कृतकृत्य[3] हो जाता है ॥२९॥३०॥३१॥

३—प्रश्नोत्तर रत्नमाला[4]।

प्रणिपत्य वर्धमानं, प्रश्नोत्तर मालिकां वक्ष्ये।
नागनरामर वन्द्यं, देवं देवाधिपं वीरम् ॥१॥

अर्थ—नाग, नर और देवों के वन्द्य[5], देवाधिदेव श्री वीर वर्धमान देव को प्रणाम कर मैं प्रश्नोत्तर मालिका का कथन करता हूँ ॥१॥

कः खलु नालङ्क्रियते, दृष्टादृष्टार्थ साधन पटीयान्।
कण्ठस्थितया विमल, प्रश्नोत्तर रत्नमालिकया ॥२॥

अर्थ—कण्ठ में स्थित विमल[6] प्रश्नोत्तर रत्नमालिका[7] से दृष्ट[8] अदृष्ट[9] अर्थ[10] के साधन में चतुर कौन पुरुष अलंकृत[11] नहीं किया जाता है ॥२॥

भगवन् किमुपादेयं, गुरु वचनं हेयमपि च किमकार्यम्॥
को गुरुरधिगत तत्त्वः, सत्त्वहिताभ्युद्यतः सततम् ॥३॥

१—इच्छा। २ प्राप्ति, सिद्धि। ३—कृतार्थ। ४—यह प्रश्नोत्तर रत्नमाला श्री विमलसूरि की बनाई हुई है, पाठकों के लाभ के लिये हमने यहां पर इसे उद्धृत किया है तथा उसकी भाषा टीका भी करदी है। ५—वन्दना करने योग्य। ६—मल रहित, निर्मल। ७—प्रश्न और उत्तर रूप रत्नों की माला से। ८—लौकिक। ९—पारलौकिक। १०—पदार्थ, विषय। ११—शोभित।

अर्थ—आत्मा के प्राचीन[1] कर्मों का जो नवीन[2] कर्मों के साथ योग[3] होता है उसे विद्वान् लोग बन्ध कहते हैं, प्रकृति आदि के साथ में जुड़ कर बन्ध चार प्रकार का है, उसका विस्तारपूर्वक स्वरूप बुद्धिमान् लोगों को दूसरे ग्रन्थों के द्वारा जान लेना चाहिये ॥२४॥२५॥

सर्वथा कर्मणामात्म प्रदेशेभ्यस्तु संक्षयः ।
स वै मोक्ष इति ख्यातः केवलज्ञान सम्भवः ॥२६॥
नव द्वाराणि मोक्षस्य, सत्पदादीनि तानिवै ।
ग्रन्थान्तरेषु तद्रूपं, ज्ञेयं विस्तरतो बुधैः ॥२७॥
मोक्षं गतस्य जीवस्य नैव जन्म मृति स्तथा ।
तत्र स्थितस्तु भुङ्क्ते स, शाश्वतं सुख मव्ययम् ॥२८॥
(त्रिभिर्विशेषकम्)

अर्थ—कर्मों का जो आत्म प्रदेशों से सर्वथा नाश होना है उसको मोक्ष कहते हैं, यह (मोक्ष) केवल ज्ञान से होता है । मोक्ष के सत्पद आदि नौ द्वार हैं, उनका स्वरूप बुद्धिमान जनों को दूसरे ग्रंथों में विस्तारपूर्वक देख लेना चाहिये, मोक्ष को प्राप्त हुए जीव का जन्म और मरण नहीं होता है किन्तु मोक्ष में स्थित जीव अविनाशी[4] शाश्वत[5] सुख का भोग करता है ॥२६॥२७॥२८॥

ज्ञान दर्शनचारित्रं, सम्यङ् मोक्षपथात्मकम् ।
जैनागमे समाख्यातं, पूर्वाचार्यैर्विशारदैः ॥२९॥
रत्नत्रयं समाख्यातं, तदेवागमवेदिभिः ।
मोक्षाभिलाषिभिर्जीवैः, सुसम्पाद्यं प्रयत्नतः ॥३०॥
एतेनैव समासाद्य, शाश्वतं पद मव्ययम् ।
कृतकृत्यो भवेज्जीवः, परमानन्द संरतः ॥३१॥
(त्रिभिर्विशेषकम्)

१—पुराने । २—नये । ३—सम्बन्ध । ४—जिसका नाश नहीं होता है । ५—निरन्तर होने वाला ।

अर्थ—सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र, इन तीनों को जैनशास्त्र में ज्ञानवान् पूर्वाचार्यों ने मोक्ष मार्ग स्वरूप कहा है, आगम के जानने वाले पुरुषों ने इन्हीं तीनों को "तीन रत्न" (रत्नत्रय) नाम से भी कहा है, मोक्ष की अभिलाषा[1] रखने वाले जीवों को प्रयत्न के साथ इनका सम्पादन[2] करना चाहिये, इन्हीं तीनों के द्वारा अविनाशी शाश्वत पद को पाकर जीव परमानन्द में लीन होकर कृतकृत्य[3] हो जाता है ॥२९॥३०॥३१॥

३—प्रश्नोत्तर रत्नमाला[4] ।

प्रणिपत्य वर्धमानं, प्रश्नोत्तर मालिकां वक्ष्ये ।
नागनरामर वन्द्यं, देवं देवाधिपं वीरम् ॥१॥

अर्थ—नाग, नर और देवों के वन्द्य[5], देवाधिदेव श्री वीर वर्धमान देव को प्रणाम कर मैं प्रश्नोत्तर मालिका का कथन करता हूँ ॥१॥

कः खलु नालङ्क्रियते, दृष्टादृष्टार्थ साधन पटीयान् ।
कण्ठस्थितया विमल, प्रश्नोत्तर रत्नमालिकया ॥२॥

अर्थ—कण्ठ में स्थित विमल[6] प्रश्नोत्तर रत्नमालिका[7] से दृष्ट[8] अदृष्ट[9] अर्थ[10] के साधन में चतुर कौन पुरुष अलंकृत[11] नहीं किया जाता है ॥२॥

भगवन् किमुपादेयं, गुरु वचनं हेयमपि च किमकार्यम् ॥
को गुरुरधिगत तत्त्वः, सात्त्वहिताभ्युद्यतः सततम् ॥३॥

१—इच्छा । २—प्राप्ति, सिद्धि । ३—कृतार्थ । ४—यह प्रश्नोत्तर रत्नमाला पं० जिनदत्तसूरि की बनाई हुई है, पाठकों के लाभ के लिये हमने यहां पर इसे उद्धृत किया है तथा इसकी भाषा टीका भी करदी है । ५—वन्दना करने योग्य । ६—मल रहित, निर्मल । ७—प्रश्न और उत्तर रूप रत्नों की माला से । ८—दृष्ट । ९—अदृष्ट । १०—पदार्थ, विषय । ११—शोभित ।

अर्थ—आत्मा के प्राचीन[1] कर्मों का जो नवीन[2] कर्मों के साथ योग[3] होता है उसे विद्वान् लोग बन्ध कहते हैं, प्रकृति आदि के साथ में जुड़ कर बन्ध चार प्रकार का है, उसका विस्तारपूर्वक स्वरूप बुद्धिमान् लोगों को दूसरे ग्रन्थों के द्वारा जान लेना चाहिये ॥२४॥२५॥

सर्वथा कर्मणामात्म प्रदेशेभ्यस्तु संक्षयः ।
स वै मोक्ष इति ख्यातः केवलज्ञान सम्भवः ॥२६॥
नव द्वाराणि मोक्षस्य, सत्पदादीनि तानिवै ।
ग्रन्थान्तरेषु तद्रूपं, ज्ञेयं विस्तरतो बुधैः ॥२७॥
मोक्षं गतस्य जीवस्य नैव जन्म मृति स्तथा ।
तत्र स्थितस्तु भुङ्क्ते स, शाश्वतं सुख मव्ययम् ॥२८॥
(त्रिभिर्विशेषकम्)

अर्थ—कर्मों का जो आत्म प्रदेशों से सर्वथा नाश होना है उसको मोक्ष कहते हैं, यह (मोक्ष) केवल ज्ञान से होता है। मोक्ष के सत्पद आदि नौ द्वार हैं, उनका स्वरूप बुद्धिमान जनों को दूसरे ग्रंथों में विस्तारपूर्वक देख लेना चाहिये, मोक्ष को प्राप्त हुए जीव का जन्म और मरण नहीं होता है किन्तु मोक्ष में स्थित जीव अविनाशी[4], शाश्वत[5] सुख का भोग करता है ॥२६॥२७॥२८॥

ज्ञान दर्शनचारित्रं, सम्यङ् मोक्षपथात्मकम् ।
जैनागमे समाख्यातं, पूर्वाचार्यैर्विशारदैः ॥२९॥
रत्नत्रयं समाख्यातं, तदेवागमवेदिभिः ।
मोक्षाभिलाषिभिर्जीवैः, सुसम्पाद्यं प्रयत्नतः ॥३०॥
एतेनैव समासाद्य, शाश्वतं पद मव्ययम् ।
कृतकृत्यो भवेज्जीवः, परमानन्द संरतः ॥३१॥
(त्रिभिर्विशेषकम्)

१—पुराने । २—नये । ३—सम्बन्ध । ४—जिसका नाश नहीं होता है । ५—निरन्तर होने वाला ।

(प्रश्न)—विष क्या है ?

(उत्तर)—गुरुजनों का जो अनादर करना है वही विष है ॥५॥

किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव ।
मनुजेषु दृष्टतत्त्वं स्वपरहितायोद्यतं जन्म ॥६॥

(प्रश्न)—हमने अनेक बार केवल इसी बात का विचार किया है कि संसार में सार क्या है ?

(उत्तर)—मनुष्यों के अन्दर वही जन्म इस संसार में सार रूप है कि जिस (जन्म) में तत्त्व का ज्ञान होता है तथा अपने और दूसरों के हित के लिये उद्यम किया जाता है।

मदिरेव हि मोहजनकः, कः स्नेहः के च दस्यवो विषयाः।
का भववल्ली तृष्णा, को वैरी नन्वनुद्योगः ॥७॥

(प्रश्न)—मदिरा के समान मोह[1] को पैदा करने वाला कौन है ?

(उत्तर)—मदिरा के समान मोह को पैदा करने वाला स्नेह है।

(प्रश्न)—दस्यु[2] कौन है ?

(उत्तर)—विषय जो हैं वे ही दस्यु हैं।

(प्रश्न)—संसार की बेल क्या है ?

(उत्तर)—संसार की बेल तृष्णा है।

(प्रश्न)—वैरी कौन है ?

(उत्तर)—उद्योग का न करना ही वैरी है।

कस्माद् भयमिह मरणादन्धादपि को विशिष्यते रागी।
कः शूरो यो ललना लोचन बाणैर्न च व्यथितः ॥८॥

(प्रश्न)—इस संसार में भय किससे होता है ?

(उत्तर)—इस संसार में भय मरण[3] से होता है !

(प्रश्न)—इस संसार में अन्धे से भी बढ़कर कौन है ?

१—अज्ञानता। २—चोर, डाकू। ३—मृत्यु।

(प्रश्न)—हे भगवन् ! ग्रहण करने के योग्य क्या वस्तु है ?

(उत्तर)—गुरु का वचन ग्रहण करने योग्य है ।

(प्रश्न)—त्याग करने के योग्य क्या है ?

(उत्तर)—अकार्य (न करने के योग्य काम) त्याग करने के योग्य है ।

(प्रश्न)—गुरु कौन है ?

(उत्तर)—जो तत्त्व को जानता है तथा प्राणियों के हित के लिये निरन्तर[1] उद्यत[2] रहता है वही गुरु है ॥३॥

त्वरित किं कर्त्तव्यं, विदुषा संसार सन्ततिच्छेदः ।
किं मोक्ष तरोर्बीजं, सम्यग् ज्ञानं क्रिया सहितम् ॥४॥

(प्रश्न)—विद्वान् पुरुष को शीघ्र ही क्या करना चाहिये ?

(उत्तर)—विद्वान् पुरुष को संसार की सन्तति[3] का छेदन[4] शीघ्र ही करना चाहिये ।

(प्रश्न)—मोक्ष रूपी वृक्ष का बीज क्या है ?

(उत्तर)—क्रिया के सहित सम्यग् ज्ञान मोक्ष रूपी वृक्ष का बीज है ॥४॥

किं पथ्यदनं धर्मः, कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम् ।
कः पण्डितो विवेकी, किं विषमवधीरिता गुरवः ॥५॥

(प्रश्न)—मार्ग में खाने के लिये कौनसी वस्तु है ?

(उत्तर)—मार्ग में खाने की वस्तु धर्म[5] है ।

(प्रश्न)—इस संसार में पवित्र कौन है ?

(उत्तर)—जिसका मन शुद्ध है वही इस संसार में पवित्र है ।

(प्रश्न)—पण्डित कौन है ?

(उत्तर)—जो पुरुष विवेकी[6] है वही पण्डित है ।

१—लगातार, सर्वदा । २—तैयार । ३—सम्बन्ध, विस्तार । ४—काटना ।
५—परलोक यात्रा के समय मनुष्य को धर्म का ही सहारा होता है । ६-ज्ञानवान ।

(प्रश्न)—विष क्या है ?

(उत्तर)—गुरुजनों का जो अनादर करना है वही विष है ॥५॥

किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव ।
मनुजेषु दृष्टतत्त्वं स्वपरहितायोद्यत जन्म ॥६॥

(प्रश्न)—हमने अनेक बार केवल इसी बात का विचार किया है कि संसार में सार क्या है ?

(उत्तर)—मनुष्यों के अन्दर वही जन्म इस संसार में सार रूप है कि जिस (जन्म) में तत्त्व का ज्ञान होता है तथा अपने और दूसरों के हित के लिये उद्यम किया जाता है।

मदिरेव हि मोहजनकः, कः स्नेहः के च दस्यवो विषयाः।
का भववल्ली तृष्णा, को वैरी नन्वनुद्योगः ॥७॥

(प्रश्न)—मदिरा के समान मोह[1] को पैदा करने वाला कौन है ?

(उत्तर)—मदिरा के समान मोह को पैदा करने वाला स्नेह है।

(प्रश्न)—दस्यु[2] कौन है ?

(उत्तर)—विषय जो हैं वे ही दस्यु हैं।

(प्रश्न)—संसार की बेल क्या है ?

(उत्तर)—संसार की बेल तृष्णा है।

(प्रश्न)—वैरी कौन है ?

(उत्तर)—उद्योग का न करना ही वैरी है।

कस्माद् भयमिह मरणादन्धादपि को विशिष्यते रागी।
कः शूरो यो ललना लोचन बाणैर्न च व्यथितः ॥८॥

(प्रश्न)—इस संसार में भय किससे होता है ?

(उत्तर)—इस संसार में भय मरण[3] से होता है !

(प्रश्न)—इस संसार में अन्धे से भी बढ़कर कौन है ?

१—अज्ञान। २—चोर, डाकू। ३—मृत्यु।

(प्रश्न)—हे भगवन् ! ग्रहण करने के योग्य क्या वस्तु है ?

(उत्तर)—गुरु का वचन ग्रहण करने योग्य है ।

(प्रश्न)—त्याग करने के योग्य क्या है ?

(उत्तर)—अकार्य (न करने के योग्य काम) त्याग करने के योग्य है ।

(प्रश्न)—गुरु कौन है ?

(उत्तर)—जो तत्त्व को जानता है तथा प्राणियों के हित के लिये निरन्तर[1] उद्यत[2] रहता है वही गुरु है ॥३॥

त्वरितं किं कर्त्तव्य, विदुषा संसार सन्ततिच्छेदः ।
किं मोक्ष तरोर्बीजं, सम्यग् ज्ञानं क्रिया सहितम् ॥४॥

(प्रश्न)—विद्वान् पुरुष को शीघ्र ही क्या करना चाहिये ?

(उत्तर)—विद्वान् पुरुष को संसार की सन्तति[3] का छेदन[4] शीघ्र ही करना चाहिये ।

(प्रश्न)—मोक्ष रूपी वृक्ष का बीज क्या है ?

(उत्तर)—क्रिया के सहित सम्यग् ज्ञान मोक्ष रूपी वृक्ष का बीज है ॥४॥

किं पथ्यदनं धर्मः, कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम् ।
कः पण्डितो विवेकी, किं विषमवधीरिता गुरवः ॥५॥

(प्रश्न)—मार्ग में खाने के लिये कौनसी वस्तु है ?

(उत्तर)—मार्ग में खाने की वस्तु धर्म[5] है ।

(प्रश्न)—इस संसार में पवित्र कौन है ?

(उत्तर)—जिसका मन शुद्ध है वही इस संसार में पवित्र है ।

(प्रश्न)—पण्डित कौन है ?

(उत्तर)—जो पुरुष विवेकी[6] है वही पण्डित है ।

१—लगातार, सर्वदा । २—तैयार । ३—सम्बन्ध, विस्तार । ४—काटना ।
५—परलोक यात्रा के समय मनुष्य को धर्म का ही सहारा होता है । ६—ज्ञानवान ।

किं जीवित मनवद्यं, किं जाड्यं पाटवेऽप्यनभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी, का निद्रा मूढता जन्तोः ॥११॥

(प्रश्न)—जीवन कौनसा है ?

(उत्तर)—जो अनिन्दनीय[1] है वही जीवन है ।

(प्रश्न)—जड़ता[2] क्या है

(उत्तर)—पटुता[3] में जो अनभ्यास[4] है वही जड़ता है ।

(प्रश्न)—कौन जागता है ?

(उत्तर)—विवेकी[5] पुरुष जागता है ।

(प्रश्न)—निद्रा क्या है ?

(उत्तर)—प्राणी की जो मूढता[6] है वही निद्रा है ॥ ११ ॥

नलिनी दल गत जल लव तरलं किं यौवनंधनमथायुः ॥
के शशधर करनिकरानुकारिणः सज्जना एव ॥१२॥

(प्रश्न)—कमल के पत्ते पर स्थित जल के बिन्दु के समान चञ्चल क्या है ?

(उत्तर)—कमल के पत्ते पर स्थित जल के बिन्दु के समान चञ्चल जवानी, धन और आयु है ।

(प्रश्न)—चन्द्रमा की किरणों के समुदाय[7] का अनुकरण[8] करने वाले कौन हैं ?

(उत्तर)—चन्द्रमा की किरणों के समुदाय का अनुकरण करने वाले सज्जन ही[9] हैं ॥१२॥

को नरकः परवशता, किं सौख्यं सर्वसंग विरतिर्या ।
किं सत्यं भूतहितं, किम्प्रेयः प्राणिनामसवः ॥१३॥

१—निन्दा न करने योग्य । २—मूर्खता । ३—चतुराई । ४—अभ्यास का न होना । ५—विवेक वाला । ६—मूर्खता । ७—समूह । ८—नकल । ९—तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा की किरणों के समान सज्जन ही शीतल और सुखदायक होते हैं ।

(उत्तर)—इस संसार में अन्धे से भी बढ़कर रागी[1] है।

(प्रश्न)—शूरवीर कौन है ?

(उत्तर)—जो स्त्री के नेत्ररूपी बाणों से व्यथित[2] नहीं होता है वही शूर वीर है ॥८॥

पातुं कर्णाञ्जलिभिः, किममृतमिव बुध्यते सदुपदेशः।
किं गुरुतायाः मूलं, यदेतद् प्रार्थनं नाम ॥९॥

(प्रश्न)—कर्णाञ्जलि[3] से अमृत के समान पान करने के लिये कौन सा पदार्थ माना जाता है ?

(उत्तर)—कर्णाञ्जलि से अमृत के समान पान करने के लिये सदुपदेश है।

(प्रश्न)—गौरव[4] का मूल[5] क्या है ?

(उत्तर)—किसी से जो न मांगना है वही गौरव का मूल है।९।

किं गहनं स्त्री चरित्रं, कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।
किं दारिद्र्यमसन्तोष एव किं लाघवं याञ्चा ॥१०॥

(प्रश्न)—गहन[6] क्या है ?

(उत्तर)—स्त्री का चरित्र[7] गहन है।

(प्रश्न)—चतुर कौन है ?

(उत्तर)—जो उस (स्त्री चरित्र) से खण्डित[8] नहीं हुआ वही चतुर है।

(प्रश्न)—दरिद्रता क्या है ?

(उत्तर)—असन्तोष[9] ही दरिद्रता है।

(प्रश्न)—लघुता[10] क्या है ?

(उत्तर)—माँगना ही लघुता है।

१—रागवाला। २—पीड़ित। ३—कानों के पुट। ४—बड़ाई, बड़प्पन। ५-कारण। ६—कठिन, मुश्किल से जानने योग्य। ७—व्यवहार। ८—विद्ग। ९—सन्तोष का न होना। १०—छोटापन।

किं जीवित मनवद्यं, किं जाड्यं पाटवेऽप्यनभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी, का निद्रा मूढता जन्तोः ॥११॥

(प्रश्न)—जीवन कौनसा है ?
(उत्तर)—जो अनिन्दनीय[1] है वही जीवन है।
(प्रश्न)—जड़ता[2] क्या है
(उत्तर)—पटुता[3] में जो अनभ्यास[4] है वही जड़ता है।
(प्रश्न)—कौन जागता है ?
(उत्तर)—विवेकी[5] पुरुष जागता है।
(प्रश्न)—निद्रा क्या है ?
(उत्तर)—प्राणी की जो मूढता[6] है वही निद्रा है ॥ ११ ॥

नलिनी दल गत जल लव तरलं किं यौवनंधनमथायुः ॥
के शशधर करनिकरानुकारिणः सज्जना एव ॥१२॥

(प्रश्न)—कमल के पत्ते पर स्थित जल के विन्दु के समान चञ्चल क्या है ?

(उत्तर)—कमल के पत्ते पर स्थित जल के विन्दु के समान चञ्चल जवानी, धन और आयु है।

(प्रश्न)—चन्द्रमा की किरणों के समुदाय[7] का अनुकरण[8] करने वाले कौन हैं ?

(उत्तर)—चन्द्रमा की किरणों के समुदाय का अनुकरण करने वाले सज्जन ही[9] हैं ॥१२॥

को नरकः परवशता, किं सौख्यं सर्वसंग विरतिर्या।
किं सत्यं भूतहितं, किम्प्रेयः प्राणिनामसवः ॥१३॥

१—निन्दा के अयोग्य। २—मूर्खता। ३—चतुराई। ४—अभ्यास का न होना। ५—विवेक वाला। ६—मूर्खता। ७—समूह। ८—नकल। ९—भावार्थ यह है कि चन्द्रमा की किरणों के समान सज्जन ही शान्ति और सुखदायक होते हैं।

(प्रश्न)—नरक क्या है ?
(उत्तर)—पराधीन होना ही नरक है।
(प्रश्न)—सुख क्या है ?
(उत्तर)—सब के सङ्ग से जो विरत[1] है वही सुख है।
(प्रश्न)—सत्य क्या है ?
(उत्तर)—जो प्राणियों का हितकारक[2] है वही सत्य है।
(प्रश्न)—प्राणियों को अधिक प्रिय[3] क्या है ?
(उत्तर)—प्राणियों को अधिक प्रिय प्राण हैं ॥१३॥

किं दानं मनाकाङ्क्षं, किं मित्रं यन्निवर्त्तयति पापात्
कोऽलङ्कारः शीलं, किं वाचां मण्डनं सत्यम् ॥१४॥

(प्रश्न)—दान कौनसा है ?
(उत्तर)—जो कांक्षा रहित[4] है वह दान है।
(प्रश्न)—मित्र कौन है ?
(उत्तर)—जो पाप से हटाता है वही मित्र है।
(प्रश्न)—आभूषण[5] क्या है ?
(उत्तर)—शील ही आभूषण है।
(प्रश्न)—वाणी का आभूषण कौनसा है ?
(उत्तर)वाणी का आभूषण सत्य है ॥१४॥

किमनर्थं फलं मानसमसङ्गतं का सुखावहा मैत्री।
सर्वव्यसनविनाशे को दक्षः सर्वथा त्यागः ॥१५॥

(प्रश्न)—अनर्थ रूप फल को देने वाला कौन है ?
(उत्तर)—कुसंगति[6] वाला जो मन है वही अनर्थ रूप फल को देता है।

१—निवृत्ति। २—हित करने वाला। ३—प्यारा। ४—इच्छा से रहित, निष्प्रयोजन। ५—जेवर। ६—प्राप्त संग।

(प्रश्न)—सुख देने वाली कौन है ?

(उत्तर)—मित्रता सुख देने वाली है ।

(प्रश्न)—सब व्यसनों[1] के विनाश में कौन चतुर है।

(उत्तर)—सर्वथा त्याग[2] ही सब व्यसनों के विनाश में चतुर है ॥ १५ ॥

कोऽन्धो योऽकार्यरतः को बधिरो यः शृणोति न हितानि ।
को मूको यः काले, प्रियाणि वक्तुं न जानाति ॥१६॥

(प्रश्न)—अन्धा कौन है ?

(उत्तर)—जो अकर्तव्य[3] में तत्पर है वही अन्धा है ।

(प्रश्न)—बहिरा कौन है ?

(उत्तर)—जो हित के वाक्य को नहीं सुनता है, वही बहिरा है ।

(प्रश्न)—गूँगा कौन है ?

(उत्तर)—जो समय पर प्रिय वचन कहना नहीं जानता है वही गूँगा है ॥१६॥

किं मरणं मूर्खत्वं, किञ्चानर्घं यदवसरे दत्तम् ।
आमरणात् किं शल्यं, प्रच्छन्नं यत्कृतमकार्यम् ॥१७॥

(प्रश्न)—मरण क्या है ।

(उत्तर)—मूर्खता ही मरण है ।।

(प्रश्न)—अमूल्य क्या है ?

(उत्तर)—अवसर[4] पर जो देना है वही अमूल्य है ।

(प्रश्न)—मरण पर्यन्त[5] काँटे के समान क्या चुभता रहता है ।

(उत्तर)—छिपकर जो बुरा कार्य किया है वही मरणपर्यन्त काँटे के समान चुभता रहता है ॥१७॥

१—दुःखों। २—वैराग्य, निवृत्ति। ३—न करने योग्य काम। ४—देने। ५—मृत्यु होने तक।

कुत्र विधेयो यत्नो, विद्याभ्यासे सदौषधे दाने ।
अवधीरणा क्व कार्या, खलपरयोषित् परधनेषु ॥१८॥

(प्रश्न)—किस विषय मे यत्न करना चाहिये ?

(उत्तर)—विद्याभ्यास, श्रेष्ठ औषध और दान में यत्न करना चाहिये ।

(प्रश्न)—किस विषय में अनादर[1] करना चाहिये ?

(उत्तर)—दुष्ट, पर-स्त्री तथा पर-धन मे अनादर करना चाहिये ॥१८॥

काऽहर्निशमनुचिन्त्या, संसारासारता न च प्रमदा ।
का प्रेयसी विधेया, करुणा दाक्षिण्यमपि मैत्री ॥१९॥

(प्रश्न)—रात दिन किसका विचार करना चाहिये ?

(उत्तर)—रात दिन संसार की असारता[2] का विचार करना चाहिये किन्तु स्त्री का नहीं ।

(प्रश्न)—किस पर प्रेम करना चाहिये ?

(उत्तर)—करुणा[3], दाक्षिण्य[4] और मैत्री[5] पर प्रेम करना चाहिये।

कण्ठगतैरप्यसुभिः, कस्यात्मानो समर्प्यते जातु ।
मूर्खस्य विषादस्य च, गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य ॥ २० ॥

(प्रश्न)—प्राणों के कण्ठ में आजाने पर भी किसे आत्मा को कभी नहीं सौंपना चाहिये ?

(उत्तर)—प्राणों के कण्ठ मे आजाने पर भी मूर्ख, दु:ख, गर्व[6] तथा कृतघ्न[7] को आत्मा को कभी नही सौंपना चाहिये ॥ २० ॥

कः पूज्यः सद्वृत्तः, कमधम माचक्षते चलित वृत्तम् ।
केन जितं जगदेतत्, सत्यतितिक्षा वता पुंसा ॥ २१ ॥

१—अपमान, उपेक्षा । २—नि:सारता निष्फलता । ३—दया । ४—चतुराई । ५—मित्रता । ६—अभिमान, घमण्ड । ७—उपकार को न मानने वाला ।

(प्रश्न)—पूजने के योग्य कौन है ?

(उत्तर)—सदाचारी[1] पुरुष पूजने के योग्य है।

(प्रश्न)—निर्धन किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—जो सदाचार से हिन गया है उसी को निर्धन कहते हैं[2]।

(प्रश्न)—इस संसार को किसने जीता है ?

(उत्तर)—सत्य तथा तितिक्षा[3] से युक्त पुरुष ने इस संसार को जीता है ॥ २१ ॥

कस्मै नमः सुरैरपि सुतरां क्रियते दयाप्रधानाय।
कस्मादुद्विजितव्यं संसारारण्यतः सुधिया ॥२२॥

(प्रश्न)—देव लोग भी निरन्तर किसको नमस्कार करते हैं ?

(उत्तर)—जिस पुरुष में प्रधानतया[4] दया होती है उस पुरुष को देव लोग भी निरन्तर नमस्कार करते हैं।

(प्रश्न)—बुद्धिमान पुरुष को किससे उद्वेग[5] करना चाहिये ?

(उत्तर)—बुद्धिमान् पुरुष को संसार रूपी वन से उद्वेग करना चाहिये ॥२२॥

कस्य वशे प्राणिगणः, सत्य प्रियभाषिणो विनीतस्य।
क स्थातव्यं न्याय्ये, पथि दृष्टादृष्ट लाभाय ॥ २३॥

(प्रश्न)—यह प्राणि समुदाय किसके वश मे है ?

(उत्तर)—जो पुरुष सत्य तथा प्रिय भाषण करता है और विनीत[6] है उसके वश में यह प्राणि समुदाय रहता है।

(प्रश्न)—कहाँ ठहरना चाहिये ?

(उत्तर)—दृष्ट[7] और अदृष्ट[8] के लाभ के लिये न्याय से युक्त मार्ग में ठहरना चाहिये ॥२३॥

१—श्रेष्ठ व्यवहार वाला। २—तात्पर्य यह है कि मनुष्य का धन सदाचार ही है इसलिये जो सदाचार रहित है वही निर्धन है। ३—सहनशीलता। ४—मुख्यतया। ५—खेद। ६—नम्रता (नम्री) से युक्त। ७—लौकिक फल। ८—पारलौकिक फल।

कुत्र विधेयो यत्नो, विद्याभ्यासे सदौषधे दाने ।
अवधीरणा क्व कार्या, खलपरयोषित् परधनेषु ॥१८॥

(प्रश्न)—किस विषय में यत्न करना चाहिये ?

(उत्तर)—विद्याभ्यास, श्रेष्ठ औषध और दान में यत्न करना चाहिये ।

(प्रश्न)—किस विषय में अनादर[1] करना चाहिये ?

(उत्तर)—दुष्ट, पर-स्त्री तथा पर-धन में अनादर करना चाहिये ॥१८॥

काऽहर्निशमनुचिन्त्या, संसारासारता न च प्रमदा ।
का प्रेयसी विधेया, करुणा दाक्षिण्यमपि मैत्री ॥१९॥

(प्रश्न)—रात दिन किसका विचार करना चाहिये ?

(उत्तर)—रात दिन संसार की असारता[2] का विचार करना चाहिये किन्तु स्त्री का नहीं।

(प्रश्न)—किस पर प्रेम करना चाहिये ?

(उत्तर)—करुणा[3], दाक्षिण्य[4] और मैत्री[5] पर प्रेम करना चाहिये।

कण्ठगतैरप्यसुभिः, कस्यात्मानो समर्प्यते जातु ।
मूर्खस्य विषादस्य च, गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य ॥ २० ॥

(प्रश्न)—प्राणों के कण्ठ में आजाने पर भी किसे आत्मा को कभी नहीं सौंपना चाहिये ?

(उत्तर)—प्राणों के कण्ठ में आजाने पर भी मूर्ख, दुःख, गर्व[6] तथा कृतघ्न[7] को आत्मा को कभी नहीं सौंपना चाहिये ॥ २० ॥

कः पूज्यः सद्वृत्तः, कमधन माचक्षते चलित वृत्तम् ।
केन जितं जगदेतत्, सत्यतितिक्षा वता पुंसा ॥ २१ ॥

१—अपमान, उपेक्षा । २—निःसारता निष्फलता । ३—दया । ४—चतुराई । ५—मित्रता । ६—अभिमान, घमण्ड । ७—उपकार को न

(प्रश्न)—पूजने के योग्य कौन है ?

(उत्तर)—सदाचारी[1] पुरुष पूजने के योग्य है ।

(प्रश्न)—निर्धन किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—जो सदाचार से डिग गया है उसी को निर्धन कहते हैं[2] ।

(प्रश्न)—इस संसार को किसने जीता है ?

(उत्तर)—सत्य तथा तितिक्षा[3] से युक्त पुरुष ने इस संसार को जीता है ॥ २१ ॥

कस्मै नमः सुरैरपि सुतरां क्रियते दयाप्रधानाय ।
कस्मादुद् विजितव्यं संसारारण्यतः सुधिया ॥२२।

(प्रश्न)—देव लोग भी निरन्तर किसको नमस्कार करते हैं ?

(उत्तर)—जिस पुरुष में प्रधानतया[4] दया होती है उस पुरुष को देव लोग भी निरन्तर नमस्कार करते हैं ।

(प्रश्न)—बुद्धिमान पुरुष को किससे उद्वेग[5] करना चाहिये ?

(उत्तर)—बुद्धिमान् पुरुष को संसार रूपी वन से उद्वेग करना चाहिये ॥२२॥

कस्य वशे प्राणिगणः, सत्य प्रियभाषिणो विनीतस्य ।
क स्थातव्यं न्याय्ये, पथि दृष्टादृष्ट लाभाय ॥ २३॥

(प्रश्न)—यह प्राणि समुदाय किसके वश मे है ?

(उत्तर)—जो पुरुष सत्य तथा प्रिय भाषण करता है और विनीत[6] है उसके वश में यह प्राणि समुदाय रहता है ।

(प्रश्न)—कहाँ ठहरना चाहिये ?

(उत्तर)—दृष्ट[7] और अदृष्ट[8] के लाभ के लिये न्याय से युक्त मार्ग में ठहरना चाहिये ॥२३॥

१—श्रेष्ठ व्यवहार वाला । २—तात्पर्य यह है कि मनुष्य का धन सदाचार ही है इसलिये जो सदाचार रहित है वही निर्धन है । ३—सहनशीलता ४—मुख्यतया । ५—भय । ६—नम्रता (नर्मी) से युक्त । ७—लौकिक फल ८—पारलौकिक सम्बन्धी फल ।

कुत्र विधेयो यत्नो, विद्याभ्यासे सदौषधे दाने ।
अवधीरणा क्व कार्या, खलपरयोषित् परधनेषु ॥१८॥

(प्रश्न)—किस विषय में यत्न करना चाहिये ?

(उत्तर)—विद्याभ्यास, श्रेष्ठ औषध और दान में यत्न करना चाहिये ।

(प्रश्न)—किस विषय में अनादर[1] करना चाहिये ?

(उत्तर)—दुष्ट, पर-स्त्री तथा पर-धन में अनादर करना चाहिये ॥१८॥

काऽहर्निशमनुचिन्त्या, संसारासारता न च प्रमदा ।
का प्रेयसी विधेया, करुणा दाक्षिण्यमपि मैत्री ॥१९॥

(प्रश्न)—रात दिन किसका विचार करना चाहिये ?

(उत्तर)—रात दिन संसार की असारता[2] का विचार करना चाहिये किन्तु स्त्री का नहीं ।

(प्रश्न)—किस पर प्रेम करना चाहिये ?

(उत्तर)—करुणा[3], दाक्षिण्य[4] और मैत्री[5] पर प्रेम करना चाहिये।

कण्ठगतैरप्यसुभिः, कस्यात्मानो समर्प्यते जातु ।
मूर्खस्य विषादस्य च, गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य ॥ २० ॥

(प्रश्न)—प्राणों के कण्ठ में आजाने पर भी किसे आत्मा को कभी नहीं सौंपना चाहिये ?

(उत्तर)—प्राणों के कण्ठ में आजाने पर भी मूर्ख, दु:ख, गर्व[6] तथा कृतघ्न[7] को आत्मा को कभी नहीं सौंपना चाहिये ॥ २० ॥

कः पूज्यः सद्वृत्तः, कमधन माचक्षते चलित वृत्तम् ।
केन जितं जगदेतत्, सत्यतितिक्षा वता पुंसा ॥ २१ ॥

१—अपमान, उपेक्षा । २—निःसारता निष्फलता । ३—दया । ४—चतुराई । ५—मित्रता । ६—अभिमान, घमण्ड । ७—उपकार को न मानने वाला ।

(प्रश्न)—पूजने के योग्य कौन है ?

(उत्तर)—सदाचारी[1] पुरुष पूजने के योग्य है।

(प्रश्न)—निर्धन किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—जो सदाचार से डिग गया है उसी को निर्धन कहते हैं[2]।

(प्रश्न)—इस संसार को किसने जीता है ?

(उत्तर)—सत्य तथा तितिक्षा[3] से युक्त पुरुष ने इस संसार को जीता है ॥ २१ ॥

कस्मै नमः सुरैरपि सुतरां क्रियते दयाप्रधानाय।
कस्माद्उद्विजितव्यं संसारारण्यतः सुधिया ॥२२॥

(प्रश्न)—देव लोग भी निरन्तर किसको नमस्कार करते हैं ?

(उत्तर)—जिस पुरुष में प्रधानतया[4] दया होती है उस पुरुष को देव लोग भी निरन्तर नमस्कार करते हैं।

(प्रश्न)—बुद्धिमान पुरुष को किससे उद्वेग[5] करना चाहिये ?

(उत्तर)—बुद्धिमान् पुरुष को संसार रूपी वन से उद्वेग करना चाहिये ॥२२॥

कस्य वशे प्राणिगणः, सत्य प्रियभाषिणो विनीतस्य।
क स्थातव्यं न्याय्ये, पथि दृष्टादृष्ट लाभाय ॥ २३॥

(प्रश्न)—यह प्राणि समुदाय किसके वश मे है ?

(उत्तर)—जो पुरुष सत्य तथा प्रिय भाषण करता है और विनीत[6] है उसके वश में यह प्राणि समुदाय रहता है।

(प्रश्न)—कहाँ ठहरना चाहिये ?

(उत्तर)—दृष्ट[7] और अदृष्ट[8] के लाभ के लिये न्याय से युक्त मार्ग में ठहरना चाहिये ॥२३॥

१—श्रेष्ठ व्यवहार वाला। २—तात्पर्य यह है कि मनुष्य का धन सदाचार ही है इसलिये जो सदाचार रहित है वही निर्धन है। ३—सहनशीलता। ४—मुख्यतया। ५—भय। ६—नम्रता (नर्मी) से युक्त। ७—लौकिक फल। ८—परलोक सम्बन्धी फल।

विद्युद्विलसित चपलं, किं दुर्जन सङ्गतं युवतयश्च।
कुलशैल निष्प्रकम्पाः के कलिकालेऽपि सत्पुरुषाः ॥२४

(प्रश्न)—बिजुली के विलास[1] के समान चञ्चल क्या है ?

(उत्तर)—दुर्जनों की सङ्गति तथा युवतियां[2] बिजुली के विलास के समान चञ्चल हैं।

(प्रश्न)—कलिकाल में भी कुलाचल[3] के समान निष्प्रकम्प[4] कौन हैं ?

(उत्तर)—कलिकाल में भी कुलाचल के समान निष्प्रकम्प सत्पुरुष हैं ॥ २४ ॥

किं शोच्यं कार्पण्यं, सतिविभवे किम्प्रशस्य मौदार्यम्
ननु तरवित्तस्य तथा, प्रभविष्णोर्यत्सहिष्णुत्वम् ॥२५॥

(प्रश्न)—शोचनीय[5] क्या है ?

(उत्तर)—धन होने पर जो कृपणता[6] है वह शोचनीय है।

(प्रश्न)—प्रशंसनीय[7] क्या है ?

(उत्तर)—अति थोड़े धन वाले मनुष्य की जो उदारता[8] है वह प्रशंसनीय है तथा प्रभुता वाले मनुष्य की जो सहनशीलता[9] है वह भी प्रशंसनीय है ॥ २५ ॥

चिन्तामणिरिव दुर्लभमिह किं कथयामि ननु चतुर्भद्रम्।
किं तद्वदन्ति भूयो विधूततमसो विशेषेण ॥२६॥
दानं प्रिय वाक् सहितं, ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
त्याग सहितञ्च वित्तं, दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् ॥२७॥

१—क्रीड़ा, चमक। २—जवान स्त्रियां। ३—कुलपर्वत। ४—प्रकम्प (हिलने) से रहित। ५—शोच करने योग्य। ६—कंजूसी। ७—प्रशंसा के योग्य। ८—दानशीलता। ९—सहन करने का स्वभाव।

(प्रश्न)—इस संसार में चिन्तामणि के समान दुर्लभ[1] क्या है?

(उत्तर)—अजी! कहता हूँ सुनो, इस संसार में चिन्तामणि के समान दुर्लभ चतुर्भद्र है।

(प्रश्न)—ज्ञानी पुरुष चतुर्भद्र किसको कहते हैं?

(उत्तर)—प्रियवाणी के साथ में दान, गर्व[2] से रहित ज्ञान, क्षमा के सहित वीरता तथा दान के सहित धन, यही चतुर्भद्र दुर्लभ है ॥२६॥२७॥

इति कण्ठ गता विमला, प्रश्नोत्तर रत्नमालिका येषाम्।
ते मुक्ताभरणाअपि, विभान्ति विद्वत्समाजेषु ॥२८॥

अर्थ—यह निर्मल प्रश्नोत्तर रत्नमालिका जिन लोगों के कण्ठ में स्थित है वे लोग विद्वानों के समाजों में आभूषणों से रहित होने पर भी शोभा देते हैं ॥२८॥

रचिता सितपट गुरुणा, विमला विमलेन रत्नमालेव।
प्रश्नोत्तर मालेयं, कण्ठगता कं न भूषयति ॥२९॥

अर्थ—इस प्रश्नोत्तर माला को निर्मल रत्नमाला के समान श्वेताम्बर गुरु विमल[3] ने बनाया है, यह प्रश्नोत्तर रत्नमाला कण्ठ में स्थित होकर किसको भूषित[4] नहीं करती है ॥२९॥

४—प्रश्नोत्तर मणि रत्नमाला[5]।

अपार संसार समुद्र मध्ये, समज्जतो मे शरणं किमस्ति।
गुरो कृपालो कृपया वदैतद्, विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका॥१

१—मुश्किल से मिलने योग्य। २—घमण्ड। ३—विमल सूरि नामक आचार्य। ४—शोभित। ५—यह प्रश्नोत्तर मणि रत्नमाला श्रीमान् शङ्कराचार्य जी (वैष्णवधर्मानुयायी) की बनाई हुई है, विस्तार के भय से हमने यहाँ पर उसको अविकल उद्धृत न कर उसमें से उपयोगी कतिपय पद्यों को ही उद्धृत किया है तथा उनकी भाषा टीका भी करदी है।

विद्युद्विलसित चपलं, किं दुर्जन सङ्गतं युवतयश्च।
कुलशैल निष्प्रकम्पाः के कलिकालेऽपि सत्पुरुषाः ॥२४

(प्रश्न)—बिजुली के विलास[1] के समान चञ्चल क्या है ?

(उत्तर)—दुर्जनों की सङ्गति तथा युवतियां[2] बिजुली के विलास के समान चञ्चल हैं।

(प्रश्न)—कलिकाल में भी कुलाचल[3] के समान निष्प्रकम्प[4] कौन हैं ?

(उत्तर)—कलिकाल में भी कुलाचल के समान निष्प्रकम्प सत्पुरुष हैं ॥ २४ ॥

किं शोच्यं कार्पण्यं, सति विभवे किम्प्रशस्य मौदार्यम्
तनु तरवित्तस्य तथा, प्रभविष्णोर्यत्सहिष्णुत्वम् ॥२५॥

(प्रश्न)—शोचनीय[5] क्या है ?

(उत्तर)—धन होने पर जो कृपणता[6] है वह शोचनीय है।

(प्रश्न)—प्रशंसनीय[7] क्या है ?

(उत्तर)—अति थोड़े धन वाले मनुष्य की जो उदारता[8] है वह प्रशंसनीय है तथा प्रभुता वाले मनुष्य की जो सहनशीलता[9] है वह भी प्रशंसनीय है ॥ २५ ॥

चिन्तामणिरिव दुर्लभमिह किं कथयामि ननु चतुर्भद्रम्।
किं तद्वदन्ति भूयो विधूततमसो विशेषेण ॥२६॥
दानं प्रिय वाक् सहितं, ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
त्याग सहितञ्च वित्तं, दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् ॥२७॥

१—क्रीड़ा, चमक। २—जवान स्त्रियां। ३—कुलपर्वत। ४—प्रकम्प (हिलने) से रहित। ५—सोच करने योग्य। ६—कंजूसी। ७—प्रशंसा के योग्य। ८—दानशीलता। ९—सहन करने का स्वभाव।

(प्रश्न)—इस संसार में चिन्तामणि के समान दुर्लभ[1] क्या है ?

(उत्तर)—अजी ! कहता हूँ सुनो, इस संसार में चिन्तामणि के समान दुर्लभ चतुर्भद्र है ।

(प्रश्न)—ज्ञानी पुरुष चतुर्भद्र किसको कहते हैं ?

(उत्तर)—प्रियवाणी के साथ में दान, गर्व[2] से रहित ज्ञान, क्षमा के सहित वीरता तथा दान के सहित धन, यही चतुर्भद्र दुर्लभ है ॥२६॥२७॥

इति कण्ठगता विमला, प्रश्नोत्तर रत्नमालिका येषाम् ।
ते मुक्ताभरणाअपि, विभान्ति विद्वत्समाजेषु ॥२८॥

अर्थ—यह निर्मल प्रश्नोत्तर रत्नमालिका जिन लोगों के कण्ठ में स्थित है वे लोग विद्वानों के समाजों में आभूषणों से रहित होने पर भी शोभा देते हैं ॥२८॥

रचिता सितपट गुरुणा, विमला विमलेन रत्नमालेव ।
प्रश्नोत्तर मालेय, कण्ठगता कं न भूषयति ॥२६॥

अर्थ—इस प्रश्नोत्तर माला को निर्मल रत्नमाला के समान श्वेताम्बर गुरु विमल[3] ने बनाया है, यह प्रश्नोत्तर रत्नमाला कण्ठ में स्थित होकर किसको भूषित[4] नहीं करती है ॥२९॥

४—प्रश्नोत्तर मणि रत्नमाला[5] ।

अपार संसार समुद्र मध्ये, सम्मज्जनो मे शरणं किमस्ति ।
गुरो कृपालो कृपया वदैतद्, विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका॥१

१—मुश्किल से मिलने योग्य । २—घमण्ड । ३—विमल सूरि नामक आचार्य । ४—शोभित । ५—यह प्रश्नोत्तर मणि रत्नमाला श्रीमान् शंकराचार्य जी (वैष्णवधर्मानुयायी) की बनाई हुई है, विस्तार के भय से हमने यहाँ पर उसको अविकल उद्धृत न कर उसमें से उपयोगी कतिपय पद्यों को ही उद्धृत किया है तथा उनकी भाषा टीका भी करदी है ।

(प्रश्न)—हे कृपालो ! गुरो ! कृपा करके यह बतलाइये कि अपार संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए मेरे लिये शरण[1] क्या है ?

(उत्तर)—हे शिष्य ! इस अपार संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए तेरे लिये विश्वेश[2] के चरण कमल रूपी बड़ी नौका ही शरण है ॥१॥

बद्धो हि को यो विषयानुरागी,
का वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः ।
को वाऽस्ति घोरो नरकः स्वदेहः,
तृष्णाक्षयः स्वर्गपदंकिमस्ति ॥२॥

(प्रश्न)—बन्धन को प्राप्त हुआ कौन है ?

(उत्तर)—जो विषयों में अनुराग[3] रखता है वही बन्धन को प्राप्त हुआ है ।

(प्रश्न)—विमुक्ति[4] क्या है ?

(उत्तर)—विषयों में जो विरक्ति[5] है वही विमुक्ति है ।

(प्रश्न)— घोर नरक कौन सा है ?

(उत्तर)—अपना शरीर ही घोर नरक है ।

(प्रश्न)—स्वर्ग का पद[6] कौनसा है ?

(उत्तर)—तृष्णा का जो नाश है वही स्वर्ग का पद है ॥२॥

संसार हृत्कः श्रुति जात्मबोधः,
को मोक्ष हेतुः कथितः स एव ।
द्वारं कि मेकं नरकस्य नारी,
का स्वर्गदा प्राणभृतामहिंसा ॥३॥

(प्रश्न)—संसार को दूर करने वाला कौन है ?

१—सहारा देने वाला । २—जगत् का स्वामी, भगवान् । ३—प्रेम । ४—मुक्ति, छुटकारा । ५—वैराग्य, निवृत्ति । ६—स्थान ।

(उत्तर)—संसार को दूर करने वाला शास्त्र के द्वारा आत्म-ज्ञान[1] ही है।

(प्रश्न)—मोक्ष का क्या कारण है?

(उत्तर)—वही[2] मोक्ष का कारण कहा गया है।

(प्रश्न)—नरक का एकमात्र द्वार क्या है?

(उत्तर)—नरक का एकमात्र द्वार नारी[3] है।

(प्रश्न)—स्वर्ग को देने वाली कौन है?

(उत्तर)—प्राणियों की अहिंसा ही स्वर्ग को देने वाली है ॥३॥

शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठो,
जागर्त्ति को वा सदसद्विवेकी।
के शत्रवः सन्ति निजेन्द्रियाणि,
तान्येव मित्राणि जितानियानि ॥४॥

(प्रश्न)—सुखपूर्वक कौन सोता है?

(उत्तर)—जो समाधि में निष्ठ[4] है वही सुखपूर्वक सोता है।

(प्रश्न)—जागता कौन है?

(उत्तर)—जिसको सत्[5] और असत्[6] का विवेक[7] है वही जागता है।

(प्रश्न)—शत्रु कौन है?

(उत्तर)—अपनी इन्द्रियाँ ही शत्रु हैं—तथा जीती हुई इन्द्रियां ही मित्र हैं ॥४॥

कोवा दरिद्रो हि विशाल तृष्णः,
श्रीमांश्च को यस्य समस्त तोषः।
जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो य.,
कोवाऽमृतः स्यात् सुखदानिराशा ॥५॥

१—आत्मा का ज्ञान। २—आत्मा का ज्ञान ही। ३—स्त्री। ४—तत्पर। ५—यथार्थ, सत्य। ६—अयथार्थ, असत्य। ७—ज्ञान।

(प्रश्न)—हे कृपालो ! गुरो ! कृपा करके यह बतलाइये कि अपार संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए मेरे लिये शरण[1] क्या है ?

(उत्तर)—हे शिष्य ! इस अपार संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए तेरे लिये विश्वेश[2] के चरण कमल रूपी बड़ी नौका ही शरण है ॥१॥

बद्धो हि को यो विषयानुरागी,
का वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः ।
को वाऽस्ति घोरो नरकः स्वदेहः,
तृष्णाक्षयः स्वर्गपदंकिमस्ति ॥२॥

(प्रश्न)—बन्धन को प्राप्त हुआ कौन है ?

(उत्तर)—जो विषयों में अनुराग[3] रखता है वही बन्धन को प्राप्त हुआ है ।

(प्रश्न)—विमुक्ति[4] क्या है ?

(उत्तर)—विषयों में जो विरक्ति[5] है वही विमुक्ति है ।

(प्रश्न)—घोर नरक कौन सा है ?

(उत्तर)—अपना शरीर ही घोर नरक है ।

(प्रश्न)—स्वर्ग का पद[6] कौनसा है ?

(उत्तर)—तृष्णा का जो नाश है वही स्वर्ग का पद है ॥२॥

संसार हृत्कः श्रुति आत्मबोधः,
को मोक्ष हेतुः कथितः स एव ।
द्वारं कि मेकं नरकस्य नारी,
का स्वर्गदा प्राणभृतामहिंसा ॥३॥

(प्रश्न)—संसार को दूर करने वाला कौन है ?

१—सहारा देने वाला । २—जगत का स्वामी, भगवान् । ३—प्रेम । ४—मुक्ति, छुटकारा । ५—वैराग्य, निवृत्ति । ६—स्थान ।

कोवा गुरुर्योहि हितोपदेष्टा,
शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव।
को दीर्घ रोगो भव एव साधो,
किमौषधं तस्य विचार एव ॥७॥

(प्रश्न)—गुरु कौन है ?

(उत्तर)—जो हित का उपदेश करता है वही गुरु है।

(प्रश्न)—शिष्य कौन है ?

(उत्तर)—जो गुरु का भक्त[1] है वही शिष्य है।

(प्रश्न)—बड़ा रोग कौनसा है ?

(उत्तर)—हे साधो ! संसार ही बड़ा रोग है।

(प्रश्न)—इस बड़े रोग की ओषधि क्या है ?

(उत्तर)—इस बड़े रोग की ओषधि विचार[2] ही है ॥७॥

किं भूषणाद् भूषणमस्ति शील,
तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्।
किमत्र हेयं कनकञ्च कान्ता,
श्राव्यं सदा किं गुरुदेदवाक्यम् ॥

(प्रश्न)—सब भूषणों में बड़ा भूषण कौन है ?

(उत्तर)—सब भूषणों में बड़ा भूषण शील है।

(प्रश्न)—बड़ा तीर्थ कौन है ?

(उत्तर)—अपना जो विशुद्ध[3] मन है वही बड़ा तीर्थ है।

(प्रश्न)—इस संसार में छोड़ने योग्य क्या है ?

(उत्तर)—इस संसार में छोड़ने योग्य कनक[4] और कान्ता[5] है।

(प्रश्न)—सर्वदा क्या सुनना चाहिये ?

(उत्तर)—सर्वदा जो ज्ञानप्रद[6] वाक्य है उसी को सुनना चाहिये ॥८॥

१—भक्ति करने वाला। २—संसार की असारता का विचार। ३—निर्मल। ४—सुवर्ण, सोना। ५—स्त्री। ६—ज्ञान का देने वाला।

(प्रश्न) दरिद्र कौन है ?
(उत्तर)—जिसकी तृष्णा विशाल[1] है वही दरिद्र है।
(प्रश्न)—श्रीमान्[2] कौन है ?
(उत्तर)—जिसको सब प्रकार से सन्तोष है वही श्रीमान् है।
(प्रश्न)—जीता हुआ ही मरा कौन ?
(उत्तर)—जो उद्यम रहित[3] है वह जीता हुआ ही मरा है।
(प्रश्न)—अमर कौन है ?
(उत्तर)—जिसको सुख देने वाली निराशा[4] है वही अमर है॥ ५ ॥

पाशो हि को यो ममताभिमानः,
सम्मोहयत्येव सुरेव का स्त्री।
कोवा महान्धो मदना तुरोयो,
मृत्युश्च को वाऽपयशः स्वकीयम्॥

(प्रश्न) पाश (फन्दा) कौनसा है ?
(उत्तर)—ममता का जो अभिमान[5] है वही पाश है।
(प्रश्न)—मदिरा के समान कौन सम्मोह[6] करती है ?
(उत्तर)—मदिरा के समान स्त्री सम्मोह करती है।
(प्रश्न)—महा अन्धा कौन है ?
(उत्तर)—जो कामदेव से आतुर[7] है वही महा अन्धा है।
(प्रश्न)—मृत्यु कौन है ?
(उत्तर)—अपना जो अपयश[8] है वही मृत्यु है॥६॥

१—बड़ी। २—ऐश्वर्य वाला। ३—निरुद्यमी, उद्यम न करने वाला। ४—आशा का त्याग। ५—गर्व। ६—अज्ञान, असावधानी। ७—पीड़ित, व्याकुल। ८—अपकीर्ति, बदनामी।

(प्रश्न)—जीवन कौनसा है ?

(उत्तर)—जो निर्दोष[1] है वही जीवन है ॥१०॥

[illegible]ग्याहि का ब्रह्मगतिप्रदाया, बोधोहिकोयस्तुविमुक्तिहेतुः।
[illegible]लाभ आत्मावगमोहियोवै,जितं जगत् केनमनोहियेन।११

(प्रश्न)—विद्या कौनसी है ?

(उत्तर)—जो ब्रह्मगति[2] को देने वाली है वही विद्या है।

(प्रश्न)—ज्ञान कौनसा है ?

(उत्तर)—जो मुक्ति का कारण है वही ज्ञान है।

(प्रश्न)—लाभ क्या है ?

(उत्तर)—आत्मा का जो ज्ञान है वही लाभ है।

(प्रश्न)—ससार को किसने जीता है ?

(उत्तर)—जिसने मन को जीत लिया है उसी ने संसार को जीता है ॥११॥

शूरान्महाशूरतमोऽस्ति कोवा, मनोजबाणैर्व्यथितोनयस्तु
प्राज्ञोऽथ धीरश्च समस्ति कोवा,प्राप्तो न मोहललना कटाक्षैः१२

(प्रश्न)—सब वीरों में बड़ा वीर कौन है ?

(उत्तर)—जो कामदेव के बाणों से पीड़ित नहीं हुआ है वही बड़ा वीर है।

(प्रश्न)—बुद्धिमान् तथा धीर पुरुष कौन है ?

(उत्तर)—जो स्त्री के कटाक्षों से मोह को नहीं प्राप्त हुआ है वही बुद्धिमान् तथा धीर पुरुष है ॥१२॥

विषाद्विष किं विषयाः समस्ता
दुःखी सदा को विषयानुरागी।
धन्योऽस्ति को यस्तु परोपकारी,
कः पूजनीयः शिवतात्वनिष्ठः॥

1—दोष रहित। 2—उत्तम गति।

के हेतवो ब्रह्मगतेस्तु सन्ति,
सत्सङ्गतिर्दान विचार तोषाः।
के सन्ति सन्तोऽखिलवीतरागा,
अपास्त मोहाः शिवतत्त्वनिष्ठा ॥ ६ ॥

(प्रश्न)—ब्रह्मगति[1] के कौन से कारण हैं ?

(उत्तर)—सत्सङ्गति, दान, विचार और सन्तोष, ये ही ब्रह्मगति के कारण हैं।

(प्रश्न)—सन्त (साधु पुरुष) कौन हैं ?

(उत्तर)—जिन्होंने सम्पूर्ण राग का त्याग कर दिया है, जो मोह रहित हैं तथा जो शिवसुख[2] रूपी तत्त्व में निष्ठ[3] हैं वे ही साधु पुरुष हैं ॥९॥

को वा ज्वरः प्राणभृतां हि चिन्ता,
मूर्खोऽस्ति को यस्तु विवेकहीनः।
कार्या प्रिया का शिव विष्णु भक्ति,
किं जीवनं दोष विवर्जितं यत् ॥१०॥

(प्रश्न)—प्राणधारियों के लिये ज्वर क्या है ?

(उत्तर)—चिन्ता प्राणधारियों के लिये ज्वर है।

(प्रश्न)—मूर्ख कौन है ?

(उत्तर)—जो विवेक[4] से हीन[5] है वही मूर्ख है।

(प्रश्न)—किससे प्रेम करना चाहिये।

(उत्तर)—शिव और विष्णु की भक्ति से प्रेम करना चाहिये[6]।

१—उत्तम गति। २—मोक्षसुख। ३—तत्पर। ४—ज्ञान। ५—रहित। ६—शिव और विष्णु नाम तीर्थंकर भगवान् के ही हैं, देखिये—श्रीभक्तामर काव्य के निर्माता श्रीमान् तुङ्गाचार्य ने उक्त काव्य के १५वें पद्य में कहा है कि "बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात्, त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात्। धाताऽसि धीरशिव मार्ग विधेर्विधानात्। व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥१॥

(प्रश्न)— सब विज्ञों[1] में बडा विज्ञ कौन है ?

(उत्तर) जो स्त्री रूपिणी पिशाचो से नहीं ठगा गया है वही बडा विज्ञ है ।

(प्रश्न)—प्राणियों के बन्धन के लिये शृङ्खला[2] क्या है ?

(उत्तर)—प्राणियों के बन्धन के लिये शृङ्खला[3] नारी है ।

(प्रश्न)—दिव्य[4] व्रत कौनसा है ?

(उत्तर)—दीनता का त्याग ही दिव्य व्रत है ॥१५॥

ज्ञातु न शक्यञ्च किमस्ति सर्वैः
योषिन्मनोयच्चरितं तदीयम् ।
का दुस्त्यजा सर्वजनैर्दुराशा,
विद्याविहीनः पशुरस्ति कोवा ॥१६॥

(प्रश्न)—सब लोग किसको नहीं जान सकते हैं ?

(उत्तर)—सब लोग स्त्रियों के मन को तथा उनके चरित्र को नहीं जान सकते हैं ।

(प्रश्न—सब लोगों से कठिनता[5] से छोडने योग्य क्या है ?

(उत्तर —सब लोगों से कठिनता से छोड़ने योग्य दुराशा[6] है ।

(प्रश्न)—पशु कौन है ?

(उत्तर)—जो विद्या से हीन[7] है वही पशु है ॥१७॥

वासो न सङ्गस्सह कैर्विधेयो,
मूर्खैश्च नीचैश्च खलैश्च पापैः ।
मुमुक्षुणा किं त्वरितं विधेयं,
सत्सङ्गतिर्निर्ममतेशभक्तिः ॥१७॥

(प्रश्न)—किनके साथ निवास तथा सङ्ग नहीं करना चाहिये ?

१—ज्ञानवानों । २—सांकल । ३—स्त्री । ४—सुन्दर । ५—दिक्कत, मुश्किल । ६—निकृष्ट आशा । ७—रहित ।

(प्रश्न)—सब विषों मे बड़ा विष कौनसा है ?

(उत्तर)—सम्पूर्ण विष यही[1] बड़े विष हैं।

(प्रश्न)—सदा दुखी कौन रहता है ?

(उत्तर)—जो विषयों में अनुराग[2] रखता है वही सदा दुःखी रहता है।

(प्रश्न)—धन्य कौन है ?

(उत्तर)—जो परोपकारी[3] है वही धन्य है।

(प्रश्न)—पूजनीया[4] कौन है ?

(उत्तर)—जो शिवरूपी तत्त्व[5] में निष्ठा[6] रखता है वही पूजनीय है ॥१३॥

सर्वास्ववस्थास्वपि किम्न कार्यं,
किंवा विधेयं विदुषा प्रयत्नात्।
स्नेहं चपापं पठनं च धर्मं,
संसारमूलं हि किमस्ति चिन्ता ॥ १४ ॥

(प्रश्न)—विद्वान् पुरुष को सब ही अवस्थाओं[7] मे कौनसा काम नहीं करना चाहिये तथा कौनसा काम प्रयत्न से करना चाहिये ?

(उत्तर)—विद्वान् पुरुष को सबही अवस्थाओं मे स्नेह और पाप नहीं करना चाहिये तथा पठन[8] और धर्म प्रयत्न से करना चाहिये।

(प्रश्न)—ससार का मूल क्या है ?

(उत्तर)—ससार का मूल चिन्ता है ॥ १४ ॥

विज्ञान्महाविज्ञतमोऽस्ति कोवा,
नार्या पिशाच्या न च वञ्चितोयः।
का शृङ्खला प्राणभृतां हि नारी,
दिव्यं व्रतं किं च समस्त दैन्यम् ॥ १५ ॥

१—पाचों इन्द्रियों के शब्द आदि विषय। २—प्रेम। ३—दूसरों का उपकार करने वाला। ४—पूजा (सत्कार) करने योग्य। ५—मोक्ष रूपी तत्त्व में ६—प्रेम, लगन, प्रवृत्ति। ७—दशाओं, हालतों। ८—अध्ययन, पढ़ना।

(उत्तर)—जो समय पर उचित बात को नहीं कह सकता है वही गूंगा है तथा जो सच्चे और हितकारी[1] वाक्य को नहीं सुनता है वही बहिरा है।

(प्रश्न)—कौन विश्वास पात्र[2] नहीं है ?

(उत्तर)—स्त्री विश्वास पात्र नहीं है ॥१९॥

तत्त्वं किमेकं शिवमद्वितीयं,
किमुत्तमं सच्चरितम् यदस्ति।
त्याज्यं सुखं किं स्त्रियमेव सम्यक्,
देयं परं किं त्वभयं सदैव ॥२०॥

(प्रश्न)—एकमात्र तत्त्व क्या है ?

(उत्तर)—अद्वितीय[3] जो शिव[4] है वही एकमात्र तत्त्व है।

(प्रश्न)—उत्तम क्या है ?

(उत्तर)—सुन्दर चरित्र ही उत्तम है।

(प्रश्न)—छोड़ने के योग्य सुख कौनसा है ?

(उत्तर)—स्त्री का त्याग ही छोड़ने के योग्य सुख है।

(प्रश्न)—उत्तम दान कौनसा है ?

(उत्तर)—अभयदान ही सर्वदा उत्तम दान है ॥२०॥

शत्रोर्महाशत्रुतमोऽस्ति कोवा,
कामः सकोपानृत लोभतृष्णः।
न पूर्यते को विषयैः स एकः,
किं दुःखमूलं ममताभिधानम् ॥२१॥

(प्रश्न)—सब शत्रुओं बड़ा शत्रु कौन है ?

(उत्तर)—क्रोध, असत्य, लोभ और तृष्णा के साथ जो काम है वही सब शत्रुओं में बड़ा शत्रु है।

१—हित करने वाला। २—विश्वास योग्य। ३—अपूर्व, सर्वोत्तम ४—मोक्षमुख।

(उत्तर)—मूर्ख, नीच, दुष्ट और पापी लोगों के साथ निवास और संग नहीं करना चाहिये।

(प्रश्न)—मोक्ष की इच्छा रखने वाले पुरुष को शीघ्र ही क्या करना चाहिये।

(उत्तर)—मोक्ष की इच्छा रखने वाले पुरुष को सत्सङ्ग, ममता का त्याग और ईश्वर की भक्ति शीघ्र ही करनी चाहिये ॥१७॥

लघुत्व मूलञ्च किमर्थितैव,
गुरुत्व मूलं यद् याचनञ्च।
जातो हि को यस्य पुनर्न जन्म,
को वा मृतो यस्य पुनर्न मृत्युः ॥१८॥

(प्रश्न)—लघुता[1] का कारण क्या है ?
(उत्तर)—माँगना ही लघुता का कारण है।
(प्रश्न)—गौरव[2] का मूल क्या है ?
(उत्तर)—याचना न करना ही गौरव का मूल है।
(प्रश्न)—कौन उत्पन्न हुआ है ?
(उत्तर)—जिसका फिर जन्म न हो वही उत्पन्न हुआ है।
(प्रश्न)—कौन मरा है ?
(उत्तर)—जिसका फिर मरण[4] न हो वही मरा है ॥ १८ ॥

मूकोऽस्ति को वा बधिरश्च को वा,
वक्तुं न युक्तं समये समर्थः।
तथ्यं सुपथ्यं न शृणोति वाक्यं,
विश्वास पात्रं न किमस्त नारी ॥१९॥

(प्रश्न)—गूंगा और बहिरा कौन है ?

१—छोटापन, तुच्छता। २—बड़प्पन, बड़ाई। ३—माँगना।
४—मृत्यु।

(उत्तर)—जो समय पर उचित बात को नहीं कह सकता है वही गूगा है तथा जो सच्चे और हितकारी[1] वाक्य को नहीं सुनता है वही बहिरा है।

(प्रश्न)—कौन विश्वास पात्र[2] नहीं है ?

(उत्तर)—स्त्री विश्वास पात्र नहीं है ॥१९॥

तत्त्वं किमेकं शिवमद्वितीयं,
किमुत्तमं सच्चरितम् यदस्ति।
त्याज्यं सुखं किं स्त्रियमेव सम्यक्,
देयं परं किं त्वभयं सदैव ॥२६॥

(प्रश्न)—एकमात्र तत्त्व क्या है ?

(उत्तर)—अद्वितीय[3] जो शिव[4] है वही एकमात्र तत्त्व है।

(प्रश्न)—उत्तम क्या है ?

(उत्तर)—सुन्दर चरित्र ही उत्तम है।

(प्रश्न)—छोड़ने के योग्य सुख कौनसा है ?

(उत्तर)—स्त्री का त्याग ही छोड़ने के योग्य सुख है।

(प्रश्न)—उत्तम दान कौनसा है ?

(उत्तर)—अभयदान ही सर्वदा उत्तम दान है ॥२०॥

शत्रोर्महाशत्रुतमोऽस्ति कोवा,
कामः सकोपानृत लोभतृष्णः।
न पूर्यते को विषयैः स एषः,
किं दुःखमूलं ममताभिधानम् ॥२१॥

(प्रश्न)—सब शत्रुओं बड़ा शत्रु कौन है ?

(उत्तर)—क्रोध, असत्य, लोभ और तृष्णा के साथ जो काम है वही सब शत्रुओं मे बड़ा शत्रु है।

१—हित करने वाला। २—विश्वास योग्य। ३—अपूर्व, सर्वोत्तम ४—मोक्षरूप।

(प्रश्न)—विषयों से पूर्ण[1] कौन नहीं होता है ?
(उत्तर)—वह काम ही विषयो से पूर्ण नहीं होता है ।
(प्रश्न)—दुःख का मूल[2] क्या है ?
(उत्तर)—ममता ही दुःख का मूल है ॥२१॥

कस्यास्ति नाशे मनसो हि मोक्षः,
क सर्वथा नास्ति, भयं विमुक्तौ ।
शल्यं परं किं निज मूर्खतैव,
के के ह्युपास्या गुरुदेव वृद्धाः ॥ २२ ॥

(प्रश्न)—किसका नाश होने पर मोक्ष होता है ?
(उत्तर)—मन[3] का नाश होने पर मोक्ष होता है ।
(प्रश्न)—किसमें बिल्कुल भय नहीं है ?
(उत्तर)—मुक्ति में बिल्कुल भय नहीं है ?
(प्रश्न)—बड़ा काँटा क्या है ?
(उत्तर)—अपनी मूर्खता[4] ही बड़ा काँटा[5] है ।
(प्रश्न)—किन २ की उपासना[6] करनी चाहिये ?
(उत्तर)—गुरु,देव और वृद्ध इनकी उपासना करनी चाहिये ॥२२॥

के दस्यवः सन्ति कुवासनाख्याः,
कः शोभते यः सदसि प्रविद्यः ।
मातेव का या सुखदा सुविद्या,
किमेधते दानवशात् सुविद्या ॥ २३ ॥

(प्रश्न)—दस्यु[7] कौन है ?
(उत्तर)—कुवासनायें[8] ही दस्यु हैं ?

१—तृप्त । २—जड़, कारण । ३—मन के संकल्पों का । ४—बेवकूफी, अज्ञानता । ५—अपनी मूर्खता ही काँटे के समान सदा चुभती रहती है । ६—सेवा, भक्ति । ७—चोर, डाकू । ८—खराब वासनायें (संस्कार, इच्छायें) ।

(प्रश्न)—कौन शोभा देता है ?

(उत्तर)—जो सभा में अधिक विद्वान् है वही शोभा देता है ।

(प्रश्न)—माता के समान सुख देने वाला कौन है ?

(उत्तर)—सुन्दर विद्या ही माता के समान सुख देने वाली है।

(प्रश्न)—दान करने से कौनसी वस्तु बढ़ती है ?

(उत्तर)—दान करने से सुन्दर विद्या बढ़ती है ।

कुतो हि भीतिः सततं विधेया,
लोकापवादाद् भव काननाच्च ।
को वाऽति बन्धुः पितरश्च केवा,
विपत्सहायाः परिपालका ये ॥२४॥

(प्रश्न)—निरन्तर[1] किससे भय करना चाहिये ?

(उत्तर)—संसार के अपवाद[2] से तथा संसार रूपी वन से निरन्तर डरना चाहिये ।

(प्रश्न)—अत्यन्त बन्धु कौन हैं तथा पितृजन कौन हैं ?

(उत्तर)—जो विपत्ति में सहायता करते हैं तथा परिपालन[3] करते हैं, वे ही बन्धु और पितृजन हैं ॥२४॥

बुद्ध्वा न बोध्यं परिशिष्यते किं,
शिव प्रसादं सुख बोध्य रूपम्।
ज्ञाते तु कस्मिन् विदितं जगत्स्यात्,
सर्वात्मके ब्रह्मणि पूर्णरूपे ॥२५॥

(प्रश्न)—जानकर किस वस्तु का जानना बाकी नहीं रहता है ?

(उत्तर)—शिवगति[4] को देने वाला सुखकारी जो बोधरूप है उसको जानकर कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता[5] है ।

१—लगातार । २—निन्दा । ३—रक्षा । ४—मोक्षगति । ५—जो ज्ञान मोक्षगति को प्राप्त करा के उत्तम सुख को देता है उस ज्ञान के यथार्थ स्वरूप को जान लेने के बाद जीवात्मा को कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता है ।

(प्रश्न)—किसके जान लेने पर जगत् का ज्ञान हो जाता है ?

(उत्तर)—स्वस्वरूप तथा पूर्णरूप ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर जगत् का ज्ञान हो जाता है ॥२५॥

किं दुर्लभं सद्गुरुरस्ति लोके, सत्सङ्गतिर्ब्रह्मविचारणा च।
त्यागोहि सर्वस्य शिवात्मबोधः,को दुर्जयःसर्वजनैर्मनोजः२६

(प्रश्न)—संसार,मे दुर्लभ[1] कौन है ?

(उत्तर)—संसार में श्रेष्ठ गुरु दुर्लभ है तथा सत्सङ्ग, ब्रह्म का. विचार सर्व पदार्थों का त्याग, शिवगति[2] और आत्मा का ज्ञान भी दुर्लभ है ।

(प्रश्न)—सब लोगों से दुर्जय[3] कौन है ?

(उत्तर)—कामदेव सब लोगों से दुर्जय है ॥२६॥

पशोः पशुः को न करोति धर्मं,
अधीत शास्त्रोऽपि न चात्मबोधः ।
किं तद्विषं भाति सुधोपमं स्त्री,
के शत्रवो मित्रवदात्मजाद्याः ॥२७॥

(प्रश्न)—पशुओं मे भी बड़ा पशु कौन है ?

(उत्तर)—जो धर्म को नहीं करता है तथा शास्त्रों को पढ़कर भी जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं है वही पशुओं में भी बड़ा पशु है ।

(प्रश्न)—अमृत के समान मालूम होने पर भी कौन सी वस्तु विष रूप है ?

(उत्तर)—अमृत के समान मालूम होने पर भी स्त्री विष रूप है ।

(प्रश्न)—मित्र के समान मालूम होने पर भी शत्रु कौन है ?

(उत्तर)—मित्र के समान मालूम होने पर भी पुत्र आदि शत्रु रूप[4] हैं ॥२७॥

१—मुश्किल से मिलने योग्य । २—मोक्षगति । ३—कठिनता से जीतने योग्य । ४—पुत्र आदि मित्र के समान मालूम होने पर भी बन्धन के

५—आत्मनिन्दाष्टकम्[1] ।

श्रुत्वा श्रद्धाय सम्यक् शुभगुरु वचनं वेश्म वासं निरस्य ।
प्रव्रज्याथो पठित्वा बहुविध तपसा शोषयित्वा शरीरम् ॥
धर्मध्यानाय यावत् प्रभवति समयस्तावदा कस्मिकीयम् ।
प्राप्ता मोहस्यघाटी तड़िदिव विषमा हा हताःकुत्र यामः॥१

अर्थ—श्रद्धापूर्वक गुरु के सुन्दर वचन को अच्छे प्रकार से सुनकर गृहवास का त्यागकर प्रव्रज्या[2] लेकर शास्त्रों को पढ़कर तथा अनेक प्रकार के तप से शरीर को सुखाकर ज्यों ही हमारे लिए धर्म ध्यान का समय आया त्यों ही अचानक बिजुली के समान यह मोह की विषम[3] घाटी आ पहुँची, हा, हम मारे गये, अब हम कहां जावें ।१।

एकेनापि महाव्रतेन यतिनः खण्डेन भग्नेन वा ।
दुर्गत्यां पततो न सोऽपि भगवानीष्टे स्वयं रक्षितुम् ॥
हत्वा तान्य खिलानि दुष्टमनसो वर्त्तामहे ये वयम् ।
तेषां दण्डपदं भविष्यति कियज्जानाति तत्केवली ॥२॥

अर्थ—खण्डित[4] अथवा भग्न हुए एक ही महाव्रत से दुर्गति में पड़ते हुए साधुओं की रक्षा करने के लिये जब भगवान् स्वयं भी समर्थ[5] नहीं हैं तब भला सम्पूर्ण महाव्रतों का नाश कर दुष्ट मन वाले जो हम लोग हैं उनको कितना दण्डपद[6] होगा, इस बात को तो केवली ही जानते हैं ॥ २ ॥

१—यह आत्मनिन्दाष्टक किन आचार्य का बनाया हुआ है, इसका पता नहीं है, हमने इसे जिस ग्रन्थ में से उद्धृत किया है उसमें भी यही लिखा है कि, हमें जो यह ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है उसमें ग्रन्थकर्त्ता का नाम नहीं है, इस अष्टक में कई स्थानों पर (संशोधन कर छापे जाने पर भी) कई अशुद्धियां थीं, तथ संदिग्ध पद भी था हमने उसे ठीक कर दिया है तथा भाषा टीका भी क दी है । २—दीक्षा । ३—कठिन । ४—खण्डन किये हुए । ५—शक्ति, योग्य ६—दण्ड का स्थान ।

(प्रश्न)—किसके जान लेने पर जगत् का ज्ञान हो जाता है ?

(उत्तर)—स्वस्वरूप तथा पूर्णरूप ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर जगत् का ज्ञान हो जाता है ॥२५॥

किं दुर्लभ सद्गुरुरस्ति लोके, सत्सङ्गतिर्ब्रह्मविचारणा च।
त्यागोहि सर्वस्य शिवात्मबोधः,को दुर्जयःसर्वजनैर्मनोजः२६

(प्रश्न)—ससार,में दुर्लभ[1] कौन है ?

(उत्तर)—ससार मे श्रेष्ठ गुरु दुर्लभ है तथा सत्सङ्ग, ब्रह्म का विचार सर्व पदार्थों का त्याग, शिवगति[2] और आत्मा का ज्ञान भी दुर्लभ है।

(प्रश्न)—सब लोगों से दुर्जय[3] कौन है ?

(उत्तर)—कामदेव सब लोगों से दुर्जय है ॥२६॥

पशोः पशुः को न करोति धर्मं,
अधीत शास्त्रोऽपि न चात्मबोधः।
किं तद्विष भाति सुधोपमं स्त्री,
के शत्रवो मित्र वदात्मजाद्याः ॥२७॥

(प्रश्न)—पशुओं मे भी बड़ा पशु कौन है ?

(उत्तर)—जो धर्म को नहीं करता है तथा शास्त्रों को पढ़कर भी जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं है वही पशुओं में भी बड़ा पशु है।

(प्रश्न)—अमृत के समान मालूम होने पर भी कौन सी वस्तु विष रूप है ?

(उत्तर)—अमृत के समान मालूम होने पर भी स्त्री विष रूप है।

(प्रश्न)—मित्र के समान मालूम होने पर भी शत्रु कौन है ?

(उत्तर)—मित्र के समान मालूम होने पर भी पुत्र आदि शत्रु रूप[4] हैं ॥२७॥

१—मुश्किल से मिलने योग्य। २—मोक्षगति। ३—कठिनता से जीतन योग्य। ४—पुत्र आदि मित्र के समान मालूम होने पर भी बन्धन के [illegible]

५—आत्मनिन्दाष्टकम्[1] ।

श्रुत्वा श्रद्धाय सम्यक् शुभगुरुवचनं वेश्म वासं निरस्य ।
प्रव्रज्याथो पठित्वा बहुविध तपसा शोषयित्वा शरीरम् ॥
धर्मध्यानाय यावत् प्रभवति समयस्तावदाकस्मिकीयम् ।
प्राप्ता मोहस्य धाटी तडिदिव विषमा हा हताः कुत्र यामः ॥१॥

अर्थ—श्रद्धापूर्वक गुरु के सुन्दर वचन को अच्छे प्रकार से सुनकर गृहवास का त्यागकर प्रव्रज्या[2] लेकर शास्त्रों को पढ़कर तथा अनेक प्रकार के तप से शरीर को सुखाकर ज्यों ही हमारे लिए धर्म ध्यान का समय आया त्यों ही अचानक बिजुली के समान यह मोह की विषम[3] धाटी आ पहुँची, हा, हम मारे गये, अब हम कहां जावें ।१।

एकेनापि महाव्रतेन यतिनः खण्डेन भग्नेन वा ।
दुर्गत्यां पततो न सोऽपि भगवानीष्टे स्वयं रक्षितुम् ॥
हत्वा तान्य खिलानि दुष्टमनसो वर्त्तामहे ये वयम् ।
तेषां दण्डपदं भविष्यति कियज्जानाति तत्केवली ॥२॥

अर्थ—खण्डित[4] अथवा भग्न हुए एक ही महाव्रत से दुर्गति में पड़ते हुए साधुओं की रक्षा करने के लिये जब भगवान् स्वयं भी समर्थ[5] नहीं हैं तब भला सम्पूर्ण महाव्रतों का नाश कर दुष्ट मन वाले जो हम लोग हैं उनको कितना दण्डपद[6] होगा, इस बात को तो केवली ही जानते हैं ॥ २ ॥

१—यह आत्मनिन्दाष्टक किस आचार्य का बनाया हुआ है, इसका पता नहीं है, हमने इसे जिस ग्रन्थ में से उद्धृत किया है उसमें भी नहीं लिखा है कि, इसमें जो यह ग्रंथ उपलब्ध हुआ है उसमें रचयिताओं का नाम नहीं है, [illegible] में कई स्थानों पर (संशोधन करने जाने पर भी) कई अशुद्धियां थीं, [illegible] [illegible] भी था हमने उसे ठीक कर दिया है तथा अन्यत्र टीका भी [illegible] दी है। २—दीक्षा। ३—कठिन। ४—खण्डन किये हुए। ५—शक्ति, [illegible]

कट्यां चोलपटं तनौ सित पटं कृत्वा शिरोलुञ्चनम्।
स्कन्धे कम्बलिकां रजोहरणकं निक्षिप्य कक्षान्तरे॥
वक्त्रे वस्त्र मथो विधाय ददतः श्रीधर्म लाभाशिषम्।
वेषाडम्बरिणः स्वजीवन कृते विद्मो गतिं नात्मनः॥३॥

अर्थ—कमर पर चोल वस्त्र धारण कर शरीर पर श्वेत वस्त्र धारण कर, शिर का लुञ्चन कर कन्धे पर कम्बल को डालकर ओ-हरण को बगल में दबाकर तथा मुख पर वस्त्र को रखकर हम लोग श्रीधर्मलाभ का आशीर्वाद देते हैं, अपने जीवन के लिये हम लोग वेष का आडम्बर[1] रक्खे हुए हैं, हम लोग आत्मा की गति को नहीं जानते हैं॥ ३॥

भिक्षापुस्तक वस्त्रपात्र वसतिप्रावार लुब्धा यथा।
नित्यं मुग्धजन प्रतारण कृते कष्टे न खिद्यामहे॥
आत्मारामतया तथा क्षणमपिप्रोज्झ्य प्रमादद्विषम्।
स्वार्थाय प्रयतामहे यदि तदा सर्वार्थसिद्धिर्भवेत्॥४॥

अर्थ—जिस प्रकार हम भिक्षा, पुस्तक वस्त्र, पात्र, गृह और प्रावार[2] के लोभी होकर प्रतिदिन भोले जनों के प्रतारण[3] के लिये कष्ट पाकर खेद[4] करते हैं, उसी प्रकार यदि हम प्रमाद रूपी शत्रु का त्याग कर क्षण भर भी आत्माराम[5] के द्वारा अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये प्रयत्न करें तो सब कार्यों की सिद्धि हो जावे॥४॥

पाखण्डानि सहस्रशो जगृहिरे ग्रन्था भृशं पेठिरे।
लोभाज्ञानवशात् तपांसि बहुधा मूढैश्चिरं तेपिरे॥
क्वापि क्वापि कथं च नापि गुरुभिर्भूत्वा मदा भेजिरे।
कर्म क्लेशविनाश सम्भव सुखान्यद्यापिनो लेभिरे॥५॥

१—ढकोसला, दिखावा। २—बायें कन्धे पर जो उत्तरीय वस्त्र धारण किया जाता है उसे प्रावार कहते हैं, इसका नाम उत्तरासंग भी है। ३—धोखा देना, ठगना। ४—उद्यम, तकलीफ उठाना। ५—आत्मानन्द।

अर्थ—हम मूर्ख जनों ने हजारों पाखण्डों का ग्रहण किया है, ग्रन्थों का निरन्तर[1] पठन किया है, लोभ और अज्ञान के वश में होकर अनेक प्रकार के तपों को भी चिर समय तक किया है, कभी २ किसी प्रकार गुरु बनकर मद्यों का भी सेवन किया है परन्तु कर्मजन्य[2] क्लेशों के विनाश के उत्पादक[3] सुखों[4] को हमने आज तक नहीं पाया है ॥ ५ ॥

किंभावी नारकोऽहं किमुत बहुभवी दूरभव्यो न भव्यः ।
किंवाहं कृष्णपक्षी किमचरमगुणस्थानकं कर्मदोषात् ॥
वह्निज्वालेव शिक्षा व्रतमपि विषवत् खड्गधारा तपस्या ।
स्वाध्यायः कर्णसूची यम इव विषमः संयमोयद्विभाति ६॥

अर्थ—मुझे जो शिक्षा अग्नि की ज्वाला[5] के समान जान पड़ती है, व्रत विष के समान मालूम पड़ता है, तपस्या खड्ग[6] की धारा के समान प्रतीत[7] होती है, स्वाध्याय[8] कर्णसूची[9] के समान ज्ञात होता है तथा संयम विषम यमराज के समान जान पड़ता है तो क्या मैं नारक[10] हूँगा, अथवा बहुभवी[11] बनूँगा, अथवा दूरभव्य[12] होऊँगा, अथवा भव्य बनूँगा, अथवा कृष्णपक्षी होऊँगा अथवा कर्म दोष से मैं अचरम गुण स्थानक को पाऊँगा ॥६॥

परान्नं पात्रमुपाश्रयं बहुविधं भैक्षं चतुर्थोपधम् ।
शय्या पुस्तक पुस्तकोपकरणं शिष्यं च शिक्षामपि ॥
गृह्णीमः परकीयमेव सुतरामाजन्म वृद्धावधम् ।
पारयामः कथमीदृशेन तपसा तेषां हहा निष्क्रयम् ॥७॥

१—लगातार । २—कर्मों से उत्पन्न । ३—पैदा करने वाले । ४—[illegible] । ५—लपट । ६—तलवार । ७—मालूम । ८—स्वाध्याय । ९—कानों में सुई का चुभना । १०—नरक का जीव । ११—[illegible] । १२—[illegible] ।

कट्यां चोलपटं तनौ सित पटं कृत्वा शिरोलुञ्चनम्।
स्कन्धे कम्बलिकां रजोहरणकं निक्षिप्य कक्षान्तरे ॥
वक्त्रे वस्त्र मथो विधाय ददतः श्रीधर्म लाभाशिषम्।
वेषाडम्बरिणः स्वजीवन कृते विद्मो गतिं नात्मनः ॥३॥

अर्थ—कमर पर चोल वस्त्र धारण कर शरीर पर श्वेत वस्त्र धारण कर, शिर का लुञ्चन कर कन्धे पर कम्बल को डालकर जोहरण को बगल में दबाकर तथा मुख पर वस्त्र को रखकर हम लोग श्रीधर्मलाभ का आशीर्वाद देते हैं, अपने जीवन के लिये हम लोग वेष का आडम्बर[1] रक्खे हुए हैं, हम लोग आत्मा की गति को नहीं जानते हैं ॥ ३ ॥

भिक्षापुस्तक वस्त्रपात्र वसतिप्रावार लुब्धा यथा ।
नित्यं मुग्धजन प्रतारण कृते कष्टे न खिद्यामहे ॥
आत्मारामतया तथा क्षणमपिप्रोज्झ्य प्रमादद्विषम् ।
स्वार्थाय प्रयतामहे यदि तदा सर्वार्थसिद्धिर्भवेत् ॥४॥

अर्थ—जिस प्रकार हम भिक्षा, पुस्तक वस्त्र, पात्र, गृह और प्रावार[2] के लोभी होकर प्रतिदिन भोले जनों के प्रतारण[3] के लिये कष्ट पाकर खेद[4] करते हैं, उसी प्रकार यदि हम प्रमाद रूपी शत्रु का त्याग कर क्षण भर भी आत्माराम[5] के द्वारा अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये प्रयत्न करें तो सब कार्यों की सिद्धि हो जावे ॥४॥

पाखण्डानि सहस्रशो जगृहिरे ग्रन्था भृशं पेठिरे ।
लोभाज्ञानवशात तपांसि बहुधा मूढैश्चिरं तेपिरे ॥
क्वा पि क्वापि कथं च नापि गुरुर्भिर्भूत्वा मदा भेजिरे ।
कर्म क्लेशविनाश सम्भव सुखान्यद्यापिनो लेभिरे ॥५॥

१—ढकोसला, दिखावा । २—बायें कन्धे पर जो उत्तरीय वस्त्र धारण किया जाता है उसे प्रावार कहते हैं, इसका नाम उत्तरासङ्ग भी है । ३—धोखा देना, ठगना । ४—उद्यम, तकलीफ उठाना । ५—आत्मानन्द ।

अर्थ—हम मूर्ख जनों ने हजारों पाखण्डों का ग्रहण किया है, ग्रन्थों का निरन्तर[1] पठन किया है, लोभ और अज्ञान के वश में होकर अनेक प्रकार के तपों को भी चिर समय तक किया है, कभी २ किसी प्रकार गुरु बनकर मदों का भी सेवन किया है परन्तु कर्मजन्य[2] क्लेशों के विनाश के उत्पादक[3] सुखों[4] को हमने आज तक नहीं पाया है ॥ ५ ॥

किंभावी नारकोऽहं किमुत बहुभवी दूरभव्यो न भव्यः ।
किंवाहं कृष्णपक्षी किमचरमगुणस्थानकं कर्मदोषात् ॥
वह्निज्वालेव शिक्षा व्रतमपि विषवत् खड्गधारा तपस्या ।
स्वाध्यायः कर्णसूची यम इव विषमः संयमोयद्विभाति ६॥

अर्थ—मुझे जो शिक्षा अग्नि की ज्वाला[5] के समान जान पड़ती है, व्रत विष के समान मालूम पड़ता है, तपस्या खड्ग[6] की धारा के समान प्रतीत[7] होती है, स्वाध्याय[8] कर्णसूची[9] के समान ज्ञात होता है तथा संयम विषम यमराज के समान जान पड़ता है तो क्या मैं नारक[10] हूँगा, अथवा बहुभवी[11] बनूँगा, अथवा दूरभव्य[12] होऊँगा, अथवा भव्य बनूँगा, अथवा कृष्णपक्षी होऊँगा अथवा कर्म दोष से मैं अचरम गुण स्थानक को पाऊँगा ॥६॥

वस्त्रंपात्रमुपाश्रयं बहुविधं भैक्षं चतुर्थौपधम् ।
शय्या पुस्तक पुस्तकोपकरणं शिष्यं च शिक्षामपि ॥
गृह्णीमः परकीयमेव सुतरामाजन्म वृद्धावधम् ।
यास्यामः कथमीदृशेन तपसा तेषां हहा निष्क्रयम् ॥७॥

१—लगातार ॥ २—कर्मों से उत्पन्न । ३—पैदा करने वाले । ४—मुख्य द्वारों । ५—लपट । ६—तलवार । ७—मालूम । ८—शास्त्राध्ययन । ९—कानों में सुई का चुभना । १०—नारकी जीव । ११—अनेक भवों वाला । १२—भव्यत्व से दूर रहने वाला ।

कट्यां चोलपटं तनौ सित पटं कृत्वा शिरोलुञ्चनम् ।
स्कन्धे कम्बलिकां रजोहरणकं निक्षिप्य कक्षान्तरे ॥
वक्त्रे वस्त्र मथो विधाय ददतः श्रीधर्म लाभाशिषम् ।
वेषाडम्बरिणः स्वजीवन कृते विद्मो गतिं नात्मनः ॥३॥

अर्थ—कमर पर चोल वस्त्र धारण कर शरीर पर श्वेत वस्त्र धारण कर, शिर का लुञ्चन कर कन्धे पर कम्बल को डालकर जो-हरण को बगल में दबाकर तथा मुख पर वस्त्र को रखकर हम लोग श्रीधर्मलाभ का आशीर्वाद देते हैं, अपने जीवन के लिये हम लोग वेप का आडम्बर[1] रक्खे हुए हैं, हम लोग आत्मा की गति को नहीं जानते हैं ॥ ३ ॥

भिक्षापुस्तक वस्त्रपात्र वसतिप्रावार लुब्धा यथा ।
नित्यं मुग्धजन प्रतारण कृते कष्टे न खिद्यामहे ॥
आत्मारामतया तथा क्षणमपिप्रोज्झ्य प्रमादद्विषम् ।
स्वार्थाय प्रयतामहे यदि तदा सर्वार्थसिद्धिर्भवेत् ॥४॥

अर्थ—जिस प्रकार हम भिक्षा, पुस्तक वस्त्र, पात्र, गृह और प्रावार[2] के लोभी होकर प्रतिदिन भोले जनों के प्रतारण[3] के लिये कष्ट पाकर खेद[4] करते हैं, उसी प्रकार यदि हम प्रमाद रूपी शत्रु का त्याग कर क्षण भर भी आत्माराम[5] के द्वारा अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये प्रयत्न करें तो सब कार्यों की सिद्धि हो जावे ॥४॥

पाखण्डानि सहस्रशो जगृहिरे ग्रन्था भृशं पेठिरे ।
लोभाज्ञानवशात् तपांसि बहुधा मूढैश्चिरं तेपिरे ॥
क्वापि क्वापि कथं च नापि गुरुर्भिर्भूत्वा मदा भेजिरे ।
कर्म क्लेशविनाश सम्भव सुखान्यद्यापिनो लेभिरे ॥५॥

१—ढकोसला, दिखावा । २—बायें कन्धे पर जो उत्तरीय वस्त्र धारण किया जाता है उसे प्रावार कहते हैं, इसका नाम उत्तरासंग भी है । ३—धोखा देना, ठगना । ४—उद्यम, तकलीफ उठाना । ५—आत्मानन्द ।

', ऐसे मुनियों को नमस्कार करते हैं तथा संविग्न[1] हो कर ज्ञान प्राप्ति के लिये इस आत्म निन्दन[2] को करते हैं ॥९॥

रागो मे स्फुरति क्षणं क्षणमथो वैराग्यमुज्जृम्भते।
द्वेषो मां भजति क्षणं क्षणमथो मैत्री समालिङ्गति॥
दैन्यं पीडयति क्षणं क्षणमथो हर्षोऽपि मां बाधते।
कोपेपं कृपणः[3] कृपा परिवृतैःकार्यं हहा कर्मभिः[4] ॥१०॥

अर्थ—क्षण भर में मुझे राग की स्फुरणा होती है, क्षण भर में वैराग्य प्रकट होता है, क्षण भर मे मुझे द्वेष हो जाता है, क्षण भर मे मैत्री मेरा आलिङ्गन करती है, क्षण भर मे मुझे दीनता पीड़ित करती है, क्षण भर में हर्ष मुझे बाधित करता है, कभी मैं कोपवश हो जाता हूँ तथा कभी कृपायुक्त कार्यों के द्वारा कृपाशील हो जाता हूँ—हा! यह मेरा कैसा कार्य है ॥१०॥

६—वैराग्य शतकम्[5]

जिनेशो वीतरागो नो, विरतौ रतमादिशेत्।
सुखिनः स्याम येनात्र, वयं सर्वे समाहिताः[6] ॥१॥

श्री वीतराग जिनेश हम लोगों का वैराग्य में प्रेम बढ़ावें कि जिससे हम सब लोग इस संसार में समाधियुक्त[6] होकर सुखी हों ॥१॥

विरक्ताः साधवो लोके, मोहजालं विभज्य वै।
प्रियं वैराग्यमादाय, नूनं नन्दन्ति सर्वदा ॥२॥

१—संवेग को प्राप्त (संसार से भयभीत)। २—अपनी निन्दा। ३—मूल पुस्तक में "कृपणो" पाठ था, यहां पर अशुद्ध प्रतिभास को ठीक किया गया है। ४—इस पद का चतुर्थ चरण अस्पष्ट प्रतीत है, हमने उसे ठीक न कर वैसा ही रख दिया है तथा भाषा टीका में अर्थानुसार 'अर्थ निर्देश' कर दिया है। ५—इस वैराग्य शतक को हमने अनेक ग्रन्थों के आधार को लेकर बनाया है; पाठकगण इसके मनन के द्वारा लाभ उठावें। ६—चित्त की एकाग्रता से युक्त।

अर्थ हम लोग जन्म से लेकर वृद्ध होने तक निरन्तर दूसरे के ही वस्त्र, पात्र, उपाश्रय, अनेक प्रकार की भिक्षा, चार प्रकार की ओषधि, शय्या, पुस्तक, पुस्तक का उपकरण, शिष्य और शिक्षा, इत्यादि को लेते हैं, तो हाय! हम इस प्रकार के तप से उनसे कैसे उद्धार[1] पावेंगे ॥७॥

अन्तर्मत्सरिणां वहिः शमवतां प्रच्छन्न पापात्मनाम्।
नद्यम्भः कृतशुद्धिमद्यपवणिग् दुर्वासनाशात्मिनाम्[2]॥
पाखण्डव्रतधारिणां वकदृशां मिथ्यादृशामीदृशाम्।
चद्धोऽहं धुरिताव देव चरितैस्तन्मे हहा का गतिः ॥८॥

अर्थ—जो लोग भीतर मात्सर्य[3] रखते हैं, बाहर शम[4] रखते हैं, गुप्त रीति से पाप करते हैं, जिनकी दुर्वासनायें नदी के जल से स्नान कर शुद्धि मानने वाले सुरापान[5] करने वाले वणिक्[6] के समान हैं, पाखण्ड व्रत को रखने वाले हैं जिनकी दृष्टि बगुले के समान है तथा जो मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसे लोगों का मैं अगुआ बन रहा हूँ तथा वैसे ही व्यवहार कर रहा हूँ, हाय मेरी क्या गति होगी ॥८॥

येषां दर्शन वन्दन प्रणमन स्पर्श प्रशंसादिना।
मुच्यन्ते तमसा निशा इव सिते पक्षे प्रजास्तत् क्षणात्॥
तादृशो ह्यपि सन्ति केऽपिमुनयस्तेषां नमस्कुर्महे।
संविग्नाः वयमात्मनिन्दनमिदं कुर्मः पुनर्बोधये ॥९॥

अर्थ—कोई ऐसे भी मुनि हैं कि जिनके दर्शन वन्दन[7] प्रणाम[8], स्पर्श[9] और प्रशंसा आदि के द्वारा लोग अन्धकार[10] से शीघ्र ही इस प्रकार छूट जाते हैं जैसे कि शुक्लपक्ष में रात्रि अन्धकार से छूट जाती

१—छुटकारा। २—सान्दाग्र पद है। ३—दूसरे की वृद्धि से जलना। ४—शान्ति। ५—मद्य का पीना। ६—वैश्य, व्यापारी। ७—वन्दना। ८—नमस्कार। ९—चरण आदि का छूना। १०—मोहरूप अन्धकार।

अर्थ—वृद्धावस्था के द्वारा केश[1] श्वेत[2] होगये हैं, सुन्दर यौवन नष्ट होगया है, नेत्र तेज से हीन होगये हैं, कानों में बहिरापन उत्पन्न होगया है, दाँत स्थान से भ्रष्ट होगये हैं तथा शरीर वलियों से विकृत होगया है, इन सब बातों को देखकर भी मूर्ख लोग स्त्री में अनुराग[3] को नहीं छोड़ते हैं, कैसे आश्चर्य की बात है ॥६॥

रदाः सर्वे भ्रष्टाः क्वचिदनयलब्धं धनमिव ।
तमालद्रोरुष्मावाद् दलमिव शरीरं वलियुतम् ॥
सुकेशेषु व्यासः स्वण विधुरिवाहो धवलिमा ।
तथाप्येतच्चित्तं द्रवति मम भोगेषु हतकम् ॥७॥

अर्थ—तमाम दाँत टूट कर कहीं इस प्रकार चले गये जैसे कि अन्याय से पाया हुआ धन चला जाता है, शरीर इस प्रकार वलियों से युक्त होगया है जैसे कि गर्मी से तमाल वृक्ष का पत्ता हो जाता है तथा सुन्दर केशों में श्वेतता[4] इस प्रकार आगई है जैसे कि परतन्त्र चन्द्रमा में श्वेतता आ जाती है तो भी यह मेरा अभागा चित्त विषयों की ओर दौड़ता है ॥७॥

न लौल्यं चाहारे विकृतरसनाशाय विजितम् ।
न चूर्णो हृज्जीर्णो जिनसुखदसिद्धान्तविहितः ॥
न पायश्चापीतं स्य चगम सुतोयं तु विधिना ।
न मारोत्थस्तावद् विलयमुपयाति ज्वर इह ॥८॥

अर्थ—जब तक विकृत[5] रस के नाश के लिये आहार में चपलता[6] को नहीं जीता है, जब तक श्री जिन भगवान् के सुखप्रद[7] सिद्धान्त से बना हुआ चूर्ण हृदय में जीर्ण[8] नहीं हुआ है तथा जब तक ज्ञानरूपी जल विधिपूर्वक नहीं पिया है तब तक इस संसार में कामदेव से उत्पन्न हुआ ज्वर शान्त नहीं होता है ॥८॥

१—बाल । २—सफेद । ३—प्रेम । ४—सफेदी । ५—बिगड़ा हुआ । ६—चपलता । ७—सुखदायक । ८—हजम ।

अर्थ—संसार में वैराग्यवान्[1] साधुजन मोहजाल[2] को छोड़ कर प्यारे वैराग्य का ग्रहण कर अवश्यमेव सर्वदा आनन्द को पाते हैं ॥ २ ॥

लक्ष्मीं प्राणसमां चापि, परलोक सुखैषिणः।
त्यक्त्वासन्तश्चलां लोके, मोदन्ते शान्तिसंयुताः॥३॥

अर्थ—परलोक के सुख की इच्छा रखने वाले सत्पुरुष इस संसार में प्राणों के समान प्यारी भी चञ्चल लक्ष्मी को छोड़कर शान्ति को पाकर मोद[3] को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

परवादे हि मूकत्वं, परस्त्री वक्त्र वीक्षणे।
अन्धत्वं विद्यते यस्य, विरक्तोऽसौ प्रशस्यते ॥४॥

अर्थ—जो दूसरे की निन्दा में गूँगे के समान है तथा दूसरे की स्त्री के मुख के देखने में अन्धे के समान है, वही विरक्त प्रशंसा के योग्य है ॥४॥

आक्रोशेन चटुप्रोक्त्या, शोक हर्षौ न यस्य वै।
विरक्तः साधु रीदृग्वै, यशःपात्रं भवेद्भुवि ॥५॥

अर्थ—जिसको गाली देने से शोक नहीं होता है तथा प्रिय वचन बोलने से हर्ष नहीं होता है, ऐसा ही विरक्त साधु संसार में यश का पात्र होता है ॥५॥

कचान् श्वैत्यं यातान् शुभ तरुणभावं च विहतम्।
दृशं तेजो हीनां श्रवणपुट जातांबधिरताम् ॥
रदान् स्थानभ्रष्टान् वलि विवृतकायञ्च जरया।
अहोदृष्ट्वाऽप्येतज्जहति न जड़ा योषिति रतिम् ॥६॥

१—वैराग्य से युक्त। २—मोह का फन्दा। ३—आनन्द। ४—वैराग्ययुक्त।

अर्थ—वृद्धावस्था के द्वारा केश[1] श्वेत[2] होगये हैं, सुन्दर यौवन नष्ट होगया है, नेत्र तेज से हीन होगये हैं, कानों में बहिरापन उत्पन्न होगया है, दाँत स्थान से भ्रष्ट होगये हैं तथा शरीर वलियों से विकृत होगया है, इन सब बातों को देखकर भी मूर्ख लोग स्त्री में अनुराग[3] को नहीं छोड़ते हैं, कैसे आश्चर्य की बात है ॥६॥

रदाः सर्वे भ्रष्टाः क्वचिदनयलब्धं धनमिव ।
तमालद्रोस्तापाद् दलमिव शरीरं वलियुतम् ॥
सुकेशेषु श्यामः क्षण विधुरिवाहो धवलिमा ।
तथाप्येतच्चित्तं द्रवति मम भोगेषु हतकम् ॥७॥

अर्थ—तमाम दाँत टूट कर कहीं इस प्रकार चले गये जैसे कि अन्याय से पाया हुआ धन चला जाता है, शरीर इस प्रकार वलियों से युक्त होगया है जैसे कि गर्मी से तमाल वृक्ष का पत्ता हो जाता है तथा सुन्दर केशों में श्वेतता[4] इस प्रकार आगई है जैसे कि परतन्त्र चन्द्रमा में श्वेतता आ जाती है तो भी यह मेरा अभागा चित्त विषयों की ओर दौड़ता है ॥७॥

न लौल्यं चाहारे विकृत रसनाशाय विजितम् ।
न चूर्णो हृज्जीर्णो जिनसुखद सिद्धान्त विहितः ॥
न वाग्वापीनं वा वगम सुतोयं तु विधिना ।
न मारोत्थस्तावद् विलयमुपयाति ज्वर इह ॥८॥

अर्थ—जब तक विकृत[5] रस के नाश के लिये आहार में चपलता[6] को नहीं जीता है, जब तक श्री जिन भगवान् के सुखप्रद[7] सिद्धान्त से बना हुआ चूर्ण हृदय में जीर्ण[8] नहीं हुआ है तथा जब तक ज्ञानरूपी जल विधिपूर्वक नहीं पिया है तब तक इस संसार में कामदेव से उत्पन्न हुआ ज्वर शान्त नहीं होता है ॥८॥

१—बाल । २—सफेद । ३—प्रेम । ४—सफेदी । ५—बिगड़ा हुआ ।
६—चपलता । ७—सुखदायक । ८—हृदय ।

अर्थ—संसार में वैराग्यवान्[1] साधुजन मोहजाल[2] को तोड़ कर प्यारे वैराग्य का ग्रहण कर अवश्यमेव सर्वदा आनन्द को पाते हैं ॥ २ ॥

लक्ष्मीं प्राणसमां चापि,-परलोक सुखैषिणः।
त्यक्त्वासन्तश्चलां लोके,मोदन्ते शान्तिसंयुताः॥३॥

अर्थ—परलोक के सुख की इच्छा रखने वाले सत्पुरुष इस संसार में प्राणों के समान प्यारी भी चञ्चल लक्ष्मी को छोड़कर शान्ति को पाकर मोद[3] को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

परवादे हि मूकत्वं, परस्त्री वक्त्र वीक्षणे।
अन्धत्वं विद्यते यस्य, विरक्तोऽसौ प्रशस्यते ॥४॥

अर्थ—जो दूसरे की निन्दा में गूँगे के समान है तथा दूसरे की स्त्री के मुख के देखने में अन्धे के समान है, वही विरक्त प्रशंसा के योग्य है ॥४॥

आक्रोशेन चटुप्रोक्त्या, शोक हर्षौ न यस्य वै।
विरक्तः साधु रीदृग्वै,यशःपात्रं भवेद् भुवि ॥५॥

अर्थ—जिसको गाली देने से शोक नहीं होता है तथा प्रिय वचन बोलने से हर्ष नहीं होता है, ऐसा ही विरक्त साधु संसार में यश का पात्र होता है ॥५॥

कचान् श्वैत्यं यातान् शुभ तरुणभावं च विहृतम्।
दृशं तेजो हीनां श्रवणपुट जातांवधिरताम् ॥
रदान् स्थानभ्रष्टान् वलि विधृतकायञ्च जरया।
अहोदृष्ट्वाऽप्येतज्जहति न जड़ा योषिति रतिम् ॥६॥

१—वैराग्य से युक्त। २—मोह का फन्दा। ३—आनन्द। ४—वैराग्ययुक्त।

अर्थ—वृद्धावस्था के द्वारा केश[1] श्वेत[2] होगये हैं, सुन्दर यौवन नष्ट होगया है, नेत्र तेज से हीन होगये हैं, कानों में बहिरापन उत्पन्न होगया है, दाँत स्थान से भ्रष्ट होगये हैं तथा शरीर वलियों से विकृत होगया है, इन सब बातों को देखकर भी मूर्ख लोग स्त्री में अनुराग[3] को नहीं छोड़ते हैं, कैसे आश्चर्य की बात है ॥६॥

रदाः सर्वे भ्रष्टाः क्वचिदनयलब्धं धनमिव ।
तमालद्रोस्तापाद् दलमिव शरीरं वलियुतम् ॥
सुकेशेषु व्यासः परविधुरिवाहो धवलिमा ।
तथाप्येतच्चित्तं द्रवति मम भोगेषु हतकम् ॥७॥

अर्थ—तमाम दाँत टूट कर कहीं इस प्रकार चले गये जैसे कि अन्याय से पाया हुआ धन चला जाता है, शरीर इस प्रकार वलियों से युक्त होगया है जैसे कि गर्मी से तमाल वृक्ष का पत्ता हो जाता है तथा सुन्दर केशों में श्वेतता[4] इस प्रकार आगई है जैसे कि परतन्त्र चन्द्रमा में श्वेतता आ जाती है तो भी यह मेरा अभागा चित्त विषयों की ओर दौड़ता है ॥७॥

न लौल्यं चाहारे विकृतरसनाशाय विजितम् ।
न चूर्णो हृज्जीर्णो जिनसुखदसिद्धान्तविहितः ॥
न वाधवापीतं ह्यगमसुतोयं तु विधिना ।
न मारोत्थस्तावद् विलयमुपयाति ज्वर इह ॥८॥

अर्थ—जब तक विकृत[5] रस के नाश के लिये आहार में चपलता[6] को नहीं जीता है, जब तक श्री जिन भगवान् के सुखप्रद[7] सिद्धान्त से बना हुआ चूर्ण हृदय में जीर्ण[8] नहीं हुआ है तथा जब तक ज्ञानरूपी जल विधिपूर्वक नहीं पिया है तब तक इस संसार में कामदेव से उत्पन्न हुआ ज्वर शान्त नहीं होता है ॥८॥

१—बाल । २—सफेद । ३—प्रेम । ४—सफेदी । ५—बिगड़ा हुआ । ६—चपलता । ७—सुखदायक । ८—हजम ।

अर्थ—संसार में वैराग्यवान्[1] साधुजन मोहजाल[2] को तोड़ कर प्यारे वैराग्य का ग्रहण कर अवश्यमेव सर्वदा आनन्द को पाते हैं ॥ २ ॥

लक्ष्मीं प्राणसमां चापि,-परलोक सुखैषिणः।
त्यक्त्वासन्तश्चलां लोके,मोदन्ते शान्तिसंयुताः॥३॥

अर्थ—परलोक के सुख की इच्छा रखने वाले सत्पुरुष इस संसार में प्राणों के समान प्यारी भी चञ्चल लक्ष्मी को छोड़कर शान्ति को पाकर मोद[3] को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

परवादे हि मूकत्वं, परस्त्री वक्त्र वीक्षणे।
अन्धत्वं विद्यते यस्य, विरक्तोऽसौ प्रशस्यते ॥४॥

अर्थ—जो दूसरे की निन्दा में गूँगे के समान है तथा दूसरे की स्त्री के मुख के देखने में अन्धे के समान है, वही विरक्त प्रशंसा के योग्य है ॥४॥

आक्रोशेन चटुप्रोक्त्या, शोक हर्षौ न यस्य वै।
विरक्तः साधु रीदृग्वै, यशःपात्रं भवेद्भुवि ॥५॥

अर्थ—जिसको गाली देने से शोक नहीं होता है तथा प्रिय वचन बोलने से हर्ष नहीं होता है, ऐसा ही विरक्त साधु संसार में यश का पात्र होता है ॥५॥

कचान् श्वैत्यं यातान् शुभ तरुणभावं च विहलम्।
दृशं तेजो हीनां श्रवणपुट जातांवधिरताम्॥
रदान् स्थानभ्रष्टान् वलि विवृतकायञ्च जरया।
अहोदृष्ट्वाऽप्येतज्जहति न जड़ा योषिति रतिम् ॥६॥

१—वैराग्य से युक्त। २—मोह का फन्दा। ३—आनन्द। ४—वैराग्ययुक्त।

अर्थ—वृद्धावस्था के द्वारा केश[1] श्वेत[2] होगये हैं, सुन्दर यौवन नष्ट होगया है, नेत्र तेज से हीन होगये हैं, कानों में बहिरापन उत्पन्न होगया है, दाँत स्थान से भ्रष्ट होगये हैं तथा शरीर वलियों से विकृत होगया है, इन सब बातों को देखकर भी मूर्ख लोग स्त्री में अनुराग[3] को नहीं छोड़ते हैं, कैसे आश्चर्य की बात है ॥६॥

रदाः सर्वे भ्रष्टाः क्वचिदनयलब्धं धनमिव ।
तमालद्रोस्तापाद् दलमिव शरीरं वलियुतम् ॥
सुकेशेषु व्यासः चण विधुरिवाप्तो धवलिमा ।
तथाऽप्येतच्चित्तं द्रवति मम भोगेषु हतकम् ॥७॥

अर्थ—तमाम दाँत टूट कर कहीं इस प्रकार चले गये जैसे कि अन्याय से पाया हुआ धन चला जाता है, शरीर इस प्रकार वलियों से युक्त होगया है जैसे कि गर्मी से तमाल वृक्ष का पत्ता हो जाता है तथा सुन्दर केशों में श्वेतता[4] इस प्रकार आगई है जैसे कि परतन्त्र चन्द्रमा में श्वेतता आ जाती है तो भी यह मेरा अभागा चित्त विषयों की ओर दौड़ता है ॥७॥

न लौल्यं चाहारे विकृत रसनाशाय विजितम् ।
न चूर्णो हृज्जीर्णो जिनसुखद सिद्धान्त विहितः ॥
न पायपापीनं स्व वगम सुतोयं नु विधिना ।
न मारोत्थस्तावद् विलयमुपयाति ज्वर इह ॥८॥

अर्थ—जब तक विकृत[5] रस के नाश के लिये आहार में चंचलता[6] को नहीं जीता है, जब तक भी जिन भगवान् के सुखप्रद[7] सिद्धान्त से बना हुआ चूर्ण हृदय में जीर्ण[8] नहीं हुआ है तथा जब तक ज्ञानरूपी जल विधिपूर्वक नहीं पिया है तब तक इस संसार में कामदेव से उत्पन्न हुआ ज्वर शान्त नहीं होता है ॥८॥

१—बाल । २—सफेद । ३—प्रेम । ४—सफेदी । ५—बिगड़ा हुआ । ६—चपलता । ७—सुखदायक । ८—हजम ।

अर्थ—संसार में वैराग्यवान्[१] साधुजन मोहजाल[२] को तोड़ कर प्यारे वैराग्य का ग्रहण कर अवश्यमेव सर्वदा आनन्द को पाते हैं ॥ २ ॥

लक्ष्मीं प्राणसमां चापि,-परलोक सुखैषिणः।
त्यक्त्वासन्तश्चलां लोके,मोदन्ते शान्तिसंयुताः॥३॥

अर्थ—परलोक के सुख को इच्छा रखने वाले सत्पुरुष इस संसार में प्राणों के समान प्यारी भी चञ्चल लक्ष्मी को छोड़कर शान्ति को पाकर मोद[३] को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

परवादे हि मूकत्वं, परस्त्री वक्त्र वीक्षणे।
अन्धत्वं विद्यते यस्य, विरक्तोऽसौ प्रशस्यते ॥४॥

अर्थ—जो दूसरे की निन्दा में गूँगे के समान है तथा दूसरे की स्त्री के मुख के देखने में अन्धे के समान है, वही विरक्त प्रशंसा के योग्य है ॥४॥

आक्रोशेन चटुप्रोक्त्या, शोक हर्षौ न यस्य वै।
विरक्तः साधु रीदृग्वै, यशःपात्रं भवेद्भुवि ॥५॥

अर्थ—जिसको गाली देने से शोक नहीं होता है तथा प्रिय वचन बोलने से हर्ष नहीं होता है, ऐसा ही विरक्त साधु संसार में यश का पात्र होता है ॥५॥

कचान् श्वैत्यं यातान् शुभ तरुणभावं च विहृतम्।
दृशं तेजो हीनां श्रवणपुट जातांवधिरताम् ॥
रदान् स्थानभ्रष्टान् वलि विवृतकायञ्च जरया।
अहोदृष्ट्वाऽप्येतज्जहति न जड़ा योषिति रतिम् ॥६॥

१—वैराग्य से युक्त। २—मोह का फन्दा। ३—आनन्द। ४—वैराग्ययुक्त।

अर्थ—वृद्धावस्था के द्वारा केश[1] श्वेत[2] होगये हैं, सुन्दर यौवन नष्ट होगया है, नेत्र तेज से हीन होगये हैं, कानों में बहिरापन उत्पन्न होगया है, दाँत स्थान से भ्रष्ट होगये हैं तथा शरीर वलियों से विकृत होगया है, इन सब बातों को देखकर भी मूर्ख लोग स्त्री में अनुराग[1] को नहीं छोड़ते हैं, कैसे आश्चर्य की बात है ॥६॥

रदाः सर्वे भ्रष्टाः क्वचिदनयलब्धं धनमिव ।
तमालद्रोस्तापाद् दलमिव शरीरं वलियुतम् ॥
सुकेशेषु श्यामः क्षण विधुरिवाद्यो धवलिमा ।
तथाप्येतच्चित्तं द्रवति मम भोगेषु हतकम् ॥७॥

अर्थ—तमाम दाँत टूट कर कहीं इस प्रकार चले गये जैसे कि अन्याय से पाया हुआ धन चला जाता है, शरीर इस प्रकार वलियों से युक्त होगया है जैसे कि गर्मी से तमाल वृक्ष का पत्ता हो जाता है तथा सुन्दर केशों में श्वेतता[1] इस प्रकार आगई है जैसे कि परतन्त्र चन्द्रमा में श्वेतता आ जाती है तो भी यह मेरा अभागा चित्त विषयों की ओर दौड़ता है ॥७॥

न लौल्यं चाहारे विकृत रसनाशाय विजितम् ।
न पूर्णो हृज्जीर्णो जिनसुखद सिद्धान्त विहितः ॥
न यावद्यावीन त्व वगम सुतोय तु विधिना ।
न मार्गात्थस्तावद् विलयमुपयाति ज्वर इह ॥८॥

अर्थ—जब तक विकृत[1] रस के नाश के लिये आहार में चपलता[1] को नहीं जीता है, जब तक श्री जिन भगवान् के सुखप्रद[2] सिद्धान्त से बना हुआ पूर्ण हृदय में जीर्ण[3] नहीं हुआ है तथा जब

अर्थ—संसार में वैराग्यवान्[१] साधुजन मोहजाल[२] को तोड़ कर प्यारे वैराग्य का ग्रहण कर अवश्यमेव सर्वदा आनन्द को पाते हैं ॥ २ ॥

लक्ष्मीं प्राणसमां चापि,-परलोक सुखैषिणः।
त्यक्त्वासन्तश्चलां लोके,मोदन्ते शान्तिसंयुताः॥३॥

अर्थ—परलोक के सुख की इच्छा रखने वाले सत्पुरुष इस संसार में प्राणों के समान प्यारी भी चञ्चल लक्ष्मी को छोड़कर शान्ति को पाकर मोद[३] को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

परवादे हि मूकत्वं, परस्त्री वक्त्र वीक्षणे।
अन्धत्वं विद्यते यस्य, विरक्तोऽसौ प्रशस्यते ॥४॥

अर्थ—जो दूसरे की निन्दा में गूँगे के समान है तथा दूसरे की स्त्री के मुख के देखने में अन्धे के समान है, वही विरक्त प्रशंसा के योग्य है ॥४॥

आक्रोशेन चटुप्रोक्त्या, शोक हर्षौ न यस्य वै।
विरक्तः साधु रीदृग्वै, यशःपात्रं भवेद् भुवि ॥५॥

अर्थ—जिसको गाली देने से शोक नहीं होता है तथा प्रिय वचन बोलने से हर्ष नहीं होता है, ऐसा ही विरक्त साधु संसार में यश का पात्र होता है ॥५॥

कचान् श्वेत्यं यातान् शुभ तरुणभावं च विहृतम्।
दृशं तेजो हीनां श्रवणपुट जातांवधिरताम् ॥
रदान् स्थानभ्रष्टान् वलि विघृतकायञ्च जरया।
अहोदृष्ट्वाऽप्येतज्जहति न जड़ा योषिति रतिम् ॥६॥

१—वैराग्य से युक्त । २—मोह का फन्दा । ३—आनन्द । ४—वैराग्ययुक्त ।

अर्थ—वृद्धावस्था के द्वारा केश[1] श्वेत[2] होगये हैं, सुन्दर यौवन नष्ट होगया है, नेत्र तेज से हीन होगये हैं, कानों मे बहिरापन उत्पन्न होगया है, दाँत स्थान मे भ्रष्ट होगये हैं तथा शरीर वलियों से विवृत होगया है, इन सब बातों को देखकर भी मूर्ख लोग स्त्री में अनुराग[1] को नहीं छोड़ते हैं, कैसे आश्चर्य की बात है ॥६॥

रदाः सर्वे भ्रष्टाः क्वचिदनयलब्धं धनमिव ।
तमालद्रोस्तापाद् दलमिव शरीरं वलियुतम् ॥
सुकेशेषु न्यासः सुण विधुरिवाहो धवलिमा ।
तथाप्येतच्चितं द्रवति मम भोगेषु हतकम् ॥७॥

अर्थ—तमाम दाँत टूट कर कहीं इस प्रकार चले गये जैसे कि अन्याय से पाया हुआ धन चला जाता है, शरीर इस प्रकार वलियों से युक्त होगया है जैसे कि गर्मी से तमाल वृक्ष का पत्ता हो जाता है तथा सुन्दर केशों में श्वेतता[1] इस प्रकार आगई है जैसे कि परतन्त्र चन्द्रमा में श्वेतता आ जाती है तो भी यह मेरा अभागा चित्त विषयों की ओर दौड़ता है ॥७॥

न लौल्यं चाहारे विकृत रसनाशाय विजितम् ।
न चूर्णो हृज्जीर्णो जिनसुखद सिद्धान्त विहितः ॥
न पीयूषापीतं च चगम सुतोयं तु विधिना ।
न मारोत्थस्तावद् विलयमुपयाति ज्वर इह ॥८॥

अर्थ—जब तक विकृत[1] रस के नाश के लिये आहार में चपलता[1] को नहीं जीता है, जब तक श्री जिन भगवान् के सुखप्रद[2] सिद्धान्त से बना हुआ चूर्ण हृदय में जीर्ण[3] नहीं हुआ है तथा जब

येन त्यक्ता जनेनेयं, कामिनी गजगामिनी।
तस्य वीर वरःकामो, रुष्टोऽपि किं विधास्यती ॥ ६ ॥

अर्थ—जिस पुरुष ने इस गजगामिनी[1] कामिनी[2] का त्याग कर दिया है उसका यह बड़ा वीर कामदेव रुष्ट[3] हो कर भी क्या कर सकेगा ॥९॥

कारुण्येन हता यैस्तु, वधव्यसिनता ध्रुवम्।
जितं सत्येन दुर्वाच्यं, सन्तोषेण च चौर्यकम् ॥१०॥
जितः शीलेन रागारिर्द्वेषारिः साम्यकेन तु।
भूमिः कृत्स्नाऽपि तैर्धीरैः कृतापूता मनीषिभिः॥११॥
(युग्मम्)

अर्थ—जिन लोगों ने करुणा[4] के द्वारा हिंसा के व्यसन[5] को नष्ट कर दिया है, सत्य के द्वारा दुर्वचन को जीत लिया है, सन्तोष के द्वारा चोरी को जीत लिया है, शील के द्वारा रागरूपी शत्रु को जीत लिया है तथा समता[6] के द्वारा द्वेष रूपी शत्रु को जीत लिया है, उन विचारशील तथा धीर पुरुषों ने तमाम पृथ्वी को पवित्र कर दिया है ॥१०॥११॥

सिद्धान्त तत्त्व वेत्तॄणां, मनो येषां न बाधया।
मन्मथस्य व्यथितं धीरा, धन्यास्ते भुवि पूजिताः ॥१२॥

अर्थ—सिद्धान्त के तत्त्व को जानने वाले जिन पुरुषों का मन कामदेव की बाधा से व्यथित[7] नहीं होता है वे ही पुरुष संसार में धीर धन्य और पूजित हैं ॥१२॥

सुलोलाद्यायासस्तव विफल को लोचन कृतः।
सुमुग्धे चाटूक्त्या किमिह तव जृम्भादिभिरपि॥

१—हाथी के समान चलने वाली। २—कामवती (स्त्री)। ३—नाराज। ४—दया। ५—बुरी आदत। ६—समनता, समान दृष्टि। ७—पीड़ित।

स्वकं ह्यात्मानं त्वं व्यथयसि मुधाऽपाङ्गलसनैः ।
वृथा ते सद्ध्याने निरतमनसे मे श्रमभरः ॥१३॥

अर्थ—हे चञ्चल नेत्र वाली स्त्रि ! लोचनों[1] के द्वारा जो तू यह परिश्रम कर रही है यह तेरा परिश्रम व्यर्थ है, हे मुग्धे[2] ! इस चाटुवचन[3] से तथा इस जृम्भा[4] आदि करने से क्या प्रयोजन है तू चञ्चल नेत्रों का विलास कर व्यर्थ में अपने को ही व्यथा[5] पहुँचाती है क्या तू यह नहीं जानती है कि सुन्दर ध्यान में मन लगाये हुए मेरे लिये यह सब तेरा परिश्रम व्यर्थ है ॥ १३ ॥

सज् ज्ञानमूल संयुक्तं, सम्यग्दर्शन शाखकम् ।
चारित्रपादपं सम्यक्, श्रद्धातोयेन सिञ्चति ॥१४॥
संयतात्मा दयालुर्यः, मनस्वी धैर्य संयुतः ।
भुङ्क्ते मुक्तिफलं नूनं सह सुस्वादु शान्तिदम् १५
(युग्मम्)

अर्थ—जो संयतात्मा[6], दयालु, विचारशील तथा धैर्यवान् पुरुष श्रेष्ठ ज्ञानरूपी मूल वाले तथा सम्यग्दर्शन रूपी शाखा वाले चारित्र रूपी वृक्ष को श्रद्धा रूपी जल से अच्छे प्रकार सींचता है वह सुस्वादु तथा शान्ति को देने वाले मुक्ति रूप फल का अवश्य भोग करता है ॥१४॥१५॥

चतुष्कषायपादाढ्यं, व्यामोहहस्तकं सगेरं ।
रागद्वेषरदोपेतं, दुर्धारमदनोद्धुरम् ॥ १६ ॥
मज् ज्ञानाङ्कुश शस्त्रेण, महामिथ्यात्वहस्तिनम् ।
वशं नयति यो धीरः, त्रिलोकी मान्य एव सः ॥१७॥
(युग्मम्)

१—नेत्रों । २—भोली । ३—प्रिय । ४—जँभाई । ५—पीड़ा ।
६—आत्मा को वश में रखने वाला ।

येन त्यक्ता जनेनेयं, कामिनी गजगामिनी।
तस्य वीर वरःकामो, रुष्टोऽपि किं विधास्यती ॥ ६ ॥

अर्थ—जिस पुरुष ने इस गजगामिनी[1] कामिनी[2] का त्याग कर दिया है उसका यह बड़ा वीर कामदेव रुष्ट[3] हो कर भी क्या कर सकेगा ॥९॥

कारुण्येन हता यैस्तु, वधव्यसनता ध्रुवम्।
जितं सत्येन दुर्वाच्यं, सन्तोषेण च चौर्यकम् ॥१०॥
जितः शीलेन रागारिर्द्वेषारिः साम्यकेन तु।
भूमिः कृत्स्नाऽपि तैर्धीरैः कृतापूता मनीषिभिः॥११॥
(युग्मम्)

अर्थ—जिन लोगों ने करुणा[4] के द्वारा हिंसा के व्यसन[5] को नष्ट कर दिया है, सत्य के द्वारा दुर्वचन को जीत लिया है, सन्तोष के द्वारा चोरी को जीत लिया है, शील के द्वारा रागरूपी शत्रु को जीत लिया है तथा समता[6] के द्वारा द्वेष रूपी शत्रु को जीत लिया है, उन विचारशील तथा धीर पुरुषों ने तमाम पृथ्वी को पवित्र कर दिया है ॥१०॥११॥

सिद्धान्त तत्त्व वेत्तॄणां, मनो येषां न बाधया।
मन्मथस्य व्यथितं धीरा, धन्यास्ते भुवि पूजिताः ॥१२॥

अर्थ—सिद्धान्त के तत्त्व को जानने वाले जिन पुरुषों का मन कामदेव की बाधा से व्यथित[7] नहीं होता है वे ही पुरुष संसार में धीर धन्य और पूजित हैं ॥१२॥

सुलोलाद्पायासस्तव विफल को लोचन कृतः।
सुमुग्धे चाटूक्त्या किमिह तव जृम्भादिभिरपि॥

१—हाथी के समान चलने वाली। २—कामवती (स्त्री)। ३—नाराज। ४—दया। ५—बुरी आदत। ६—समनता, समान दृष्टि। ७—पीड़ित।

पुत्र की इच्छा किसके मन में न हो तथा ताम्बूल किसको प्रिय न लगे ॥ २० ॥ २१ ॥

भार्या सौम्याकृतिर्मेऽस्ति, सुतः प्रीति समन्वितः ।
महानिधिः सुवर्णस्य, बन्धुरो बान्धवोमम ॥२२॥
रम्यं हर्म्यं ममास्त्येवं, मायया मोहितोऽनया ।
मृत्यु पश्यति न क्रुद्ध, पुरा दैव हतो जनः ॥२३॥
(युग्मम्)

अर्थ—मेरी स्त्री सुन्दर आकार वाली है, मेरा पुत्र प्रीतिमान्[1] है, मेरे यहाँ सुवर्ण का बड़ा खजाना है, मेरे बन्धुजन सहायक[2] हैं तथा मेरे महल रमणीय[3] हैं, इस प्रकार इस माया से मोहित होकर दैवहत[4] मनुष्य क्रुद्ध[5] हुई मृत्यु को आगे नहीं देखता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

मया द्यूते वित्तं कठिनतरयासेन विचितम् ।
समं वित्तं विद्या शुभ गुरु जनाप्ताऽधमनुतौ ॥
विनीतिर्वामाक्षी जन इह कृताऽहो बहुमुदा ।
सुपात्रे कुर्यां किं निकटतर कालेऽहमधुना ॥ २४ ॥

अर्थ—मैंने अति कठिन परिश्रम से इकट्ठे किये हुए सब धन को तो जुए में हार दिया है, सुन्दर गुरुजनों से प्राप्त की हुई विद्या को नीच पुरुषों की स्तुति में गमा दिया, तथा इस संसार में मैंने बड़े आनन्द के साथ सुन्दर नेत्र वाली स्त्रियों में विनय को भी खर्च कर दिया है सो बतलाइये कि अब मैं काल के निकट आने पर किसी सुपात्र के लिये क्या करूँ ॥ २४ ॥

विनीतो योजितो नैव, श्वपाऽऽत्मोप्रतपस्यपि ।
खलद् कृतघ्नोऽन्यान्स्या, अनेन प्रोषितश्च नो ॥ २५ ॥

१—प्रीति रखने वाला । २—सहायता देने वाला । ३—सुन्दर । ४—दैव का मारा हुआ । ५—क्रोध युक्त ।

अर्थ—हे मित्र ! जो धीर पुरुष-चार कषाय[1] रूपी पैर वाले व्यामोह[2] रूपी सूंड़ वाले, राग और द्वेष रूपी दाँत वाले तथा दुर्वार[3] कामदेव के समान मदोन्मत्त महामिथ्यात्वरूपी हाथी को सुन्दर ज्ञान रूपी अङ्कुश शस्त्र के वश में कर लेता है वह पुरुष त्रिलोकी का मान्य[4] होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

सदयं हृदयं यस्य, वचनं सत्यभूषितम् ।
कायः परहितोपायः, कलिः कुर्वीत तस्य किम् ॥१८॥

अर्थ—जिस मनुष्य का हृदय दयालु है, वचन सत्य से भूषित[5] है तथा शरीर दूसरों का हित करने में तत्पर है, उस मनुष्य का यह कलियुग क्या कर सकता है ॥१८॥

यस्यासद्भाषणं नास्ति, शीलभ्रंशो न मानसात् ।
नास्तीति याचके नास्ति, तेन रत्नवती क्षितिः ॥१६॥

अर्थ—जो पुरुष असत्य का भाषण नहीं करता है; जिसके मन से शील नहीं डिगता है तथा जो माँगने वाले से यह नहीं कहता है कि "मेरे पास देने को कुछ नहीं है," उसी पुरुष के द्वारा पृथ्वी रत्न-वाली है ॥ १९ ॥

कथा कामस्य हर्पाय, कस्य नो सम्भवेद्भुवि ।
प्रिय कस्य प्रिया नेह, लक्ष्मी कस्य न वल्लभा ॥२०॥
सुनेच्छा कस्यनो स्वान्ते, ताम्बूल कस्य न प्रियम् ।
सर्वाशाद्रुमहन्ता चेन्मृत्युर्जन्तोर्भवेन्नहि ॥२१॥
(युग्मम्)

अर्थ—सब आशारूपी वृक्ष को नष्ट करने वाली मृत्यु यदि प्राणी को न हो तो इस संसार में कामदेव की कथा किस को हर्षित[6] न करे, स्त्री किसको प्यारी न हो, लक्ष्मी से कौन प्रेम न करे,

१—क्रोधादि । २—मोह, अज्ञान । ३—कठिनता से हटाने योग्य । ४—मान करने योग्य । ५—शोभित । ६—प्रसन्न ।

अर्थ—जिनका द्वार पहिले हाथियों के मद के प्रवाह से पङ्कवाला[1] था आज वहाँ रोटी का एक मास[2] न मिलने से गरीब भी नहीं जाता है तथा जो पहिले अपना पेट भरने में भी असमर्थ थे आज वहाँ विपुल[3] लक्ष्मी दीख पड़ती है, अहो ! कर्मों की कैसी महिमा है ॥ २९ ॥ ० ॥

नापत्यानि न वित्तानि, न सौधानि भवन्त्यहो ।
मृत्युनानीय मानस्य, पुण्य पापे विनाग्रतः ॥ ३१ ॥

अर्थ—अरे ! जब मनुष्य को मृत्यु ले जाती है तब उसके आगे पुण्य और पाप के सिवाय न तो सन्तान होते हैं, न धन होते हैं और न महल होते हैं ॥ ३१ ॥

बद्धा येन दशास्येन, खट्वायां पलिता जरा ।
भुजयोर्लीलया येन, हनुमता समुद्धृता ॥ ३२ ॥
द्रोणाद्रिर्येन रामेण, हतो वीरो दशाननः ।
गताः सर्वे स्वयं तेऽपि, विधिनान्येषु का कथा ॥ ३३ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—जिस बलवान् रावण ने वृद्धावस्था[4] को खाट से बाँध दिया था, जिस हनुमान् ने द्रोण पर्वत को भुजाओं पर उठा लिया था तथा जिस राम ने रावण जैसे वीर को मार दिया था, वे भी विधि वशात्[5] जब नाश को प्राप्त हो गये तब भला दूसरों का तो क्या कहना है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

सर्वभक्षी कृतान्तोऽसौ, लोके सत्यं प्रकथ्यते ।
गताः सर्वेऽन्यथा धीराः, कुत्र रामादयः खलु ॥ ३४ ॥

अर्थ—संसार में यह उक्ति[6] सत्य ही है कि यह यमराज सर्वभक्षी[7] है, यदि ऐसा नहीं है तो धीर राम आदि कहाँ चले गये ॥३४॥

१—कीचड़ । २—टुकड़ा । ३—बड़ी । ४—बुढ़ापा । ५—विधि के वश में होकर । ६—वचन । ७—सब को खा जाने वाला ।

तत्वं निन्दसि नैवात्म कर्म दोषं यमक्षणे।
शापं विमूढ दैवाय, मोहत्वेन ददासिवै॥ २६॥
(युग्मम्)

अर्थ—अरे मूर्ख! तूने अपने आत्मा को न तो विनय में लगाया, न उसे[1] तप में लगाया, न उसे क्षमा के द्वारा अलंकृत[2] किया और न सत्य के द्वारा उसे तृप्त किया, अब यमराज के निकट आने के समय तू तत्व की निन्दा करता है किन्तु अपने कर्म दोष की निन्दा नहीं करता है, अरे मूर्ख! तू मोह के कारण दैव को शाप दे रहा है॥ २५॥ २६॥

बालो यौवन सम्पन्नः, पुनर्युक्तोविलक्ष्यते।
वृद्धत्वेन जगत्येवं, वयः परिणितं भवेत्॥ २७॥
सोऽपि गच्छति कुत्रापि कृतान्त वशतो ध्रुवम्।
कौतुकं पश्यभो मित्र, किम्परैरिन्द्रजालकैः॥ २८॥
(युग्मम्)

अर्थ—मनुष्य पहिले बालक होता है, फिर वह युवावस्था[3] में पहुँच जाता है, फिर उसे बुढ़ापा आ घेरता है, इस प्रकार संसार में अवस्था बदलती जाती है, वृद्धावस्था[4] को पहुँच कर वह कृतान्त[5] के वश में होकर न जाने कहाँ चला जाता है, हे मित्र! तुम इसी कौतुक[6] को देख लो, दूसरे इन्द्रजालों को देखकर क्या करोगे॥ २७॥ २८॥

हस्तिमद प्रवाहैस्तु, येषां द्वारं सुपङ्किलम्।
अभूद्रङ्कोऽपि नो तत्र ग्रासाभावात्प्रपात्यसौ॥ २९॥
स्वकुक्षिभरणेऽपि, ह्यशक्ता अभवन् पुरा।
विपुला दृश्यते तेषां, श्रीरहो कर्म चेष्टितम्॥ ३०॥
(युग्मम्)

१—उसे। २—शोभित। ३—जवानी। ४—बुढ़ापा। ५—यमराज। ६—तमाशा।

अर्थ—जिनका द्वार पहिले हाथियों के मद के प्रवाह से पङ्कवाला[1] था आज वहाँ रोटी का एक ग्रास[2] न मिलने से गरीब भी नहीं जाता है तथा जो पहिले अपना पेट भरने में भी असमर्थ थे आज वहाँ विपुल[3] लक्ष्मी दीख पड़ती है, अहो ! कर्मों की कैसी महिमा है ॥ २९ ॥ ० ॥

नापत्यानि न वित्तानि, न सौधानि भवन्त्यहो ।
मृत्युनानीय मानस्य, पुण्य पापे विनाग्रतः ॥ ३१ ॥

अर्थ—अरे ! जब मनुष्य को मृत्यु ले जाती है तब उसके आगे पुण्य और पाप के सिवाय न तो सन्तान होते हैं, न धन होते हैं और न महल होते हैं ॥ ३१ ॥

बद्धा येन दशास्येन, खट्वायां बलिना जरा ।
भुजयोर्लीलया येन, हनुमता समुद्धृता ॥ ३२ ॥
द्रोणाद्रिर्येन रामेण, हतो वीरो दशाननः ।
गताः सर्वे क्षयं तेऽपि, विधिनान्येषु का कथा ॥ ३३ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—जिस बलवान् रावण ने वृद्धावस्था[4] को खाट से बाँध दिया था, जिस हनुमान् ने द्रोण पर्वत को भुजाओं पर उठा लिया था तथा जिस राम ने रावण जैसे वीर को मार दिया था, वे भी विधि वशात्[5] जब नाश को प्राप्त हो गये तब भला दूसरों का तो क्या कहना है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

सर्वभक्षी कृतान्तोऽसौ, लोके सत्यं प्रकल्प्यते ।
गताः सर्वेऽन्यथा धीराः, कुत्र रामादयः खलु ॥ ३४ ॥

अर्थ—संसार में यह उक्ति[6] सत्य ही है कि यह यमराज सर्वभक्षी[7] है, यदि ऐसा नहीं है तो धीर राम आदि कहाँ चले गये ॥३५॥

१—कीचड़ । २—कवल । ३—बड़ी । ४—बुढ़ापा । ५—विधि के वश में होकर । ६—कथन । ७—सब को खा जाने वाला ।

तत्त्वं निन्दसि नैवात्म कर्म दोषं यमक्षणे ।
शापं विमूढ दैवाय, मोहत्वेन ददासिवै ॥ २६ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—अरे मूर्ख ! तूने अपने आत्मा को न तो विनय में लगाया, न उग्र[1] तप में लगाया, न उसे क्षमा के द्वारा अलंकृत[2] किया और न सत्य के द्वारा उसे तृप्त किया, अब यमराज के निकट आने के समय तू तत्त्व की निन्दा करता है किन्तु अपने कर्म दोष की निन्दा नहीं करता है, अरे मूर्ख ! तू मोह के कारण दैव को शाप दे रहा है ॥ २५ ॥ २६ ॥

बालो यौवन सम्पन्नः, पुनर्युक्तोविलक्ष्यते ।
वृद्धत्वेन जगत्येवं, वयः परिणितं भवेत् ॥ २७ ॥
सोऽपि गच्छति कुत्रापि कृतान्त वशतो ध्रुवम् ।
कौतुकं पश्यभो मित्र, किम्परैरिन्द्रजालकैः ॥ २८ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—मनुष्य पहिले बालक होता है, फिर वह युवावस्था[3] में पहुँच जाता है, फिर उसे बुढ़ापा आ घेरता है, इस प्रकार संसार में अवस्था बदलती जाती है, वृद्धावस्था[4] को पहुँच कर वह कृतान्त[5] के वश में होकर न जाने कहाँ चला जाता है, हे मित्र ! तुम इसी कौतुक[6] को देख लो, दूसरे इन्द्रजालों को देखकर क्या करोगे ॥ २७ ॥ २८ ॥

हस्तिमद प्रवाहैस्तु, येषां द्वारं सुपङ्किलम् ।
अभूद्रङ्कोऽपि नो तत्र ग्रासाभावात्प्रपात्यसौ ॥ २९ ॥
स्वकुक्षिभरणेऽपि, ह्यशक्ता अभवन् पुरा ।
विपुला दृश्यते तेषां, श्रीरहो कर्म चेष्टितम् ॥ ३० ॥
(युग्मम्)

१—कठिन । २—शोभित । ३—जवानी । ४—बुढ़ापा । ५—यमराज । ६—तमाशा ।

अर्थ—जिनका द्वार पहिले हाथियों के मद के प्रवाह से पङ्कवाला[1] था आज वहाँ रोटी वा एक ग्रास[2] न मिलने से गरीब भी नहीं जाता है तथा जो पहिले अपना पेट भरने में भी असमर्थ थे आज वहाँ विपुल[3] लक्ष्मी दीख पड़ती है, अहो ! कर्मों की कैसी महिमा है ॥ २९ ॥ ० ॥

नापत्यानि न वित्तानि, न सौधानि भवन्त्यहो ।
मृत्युनानीय मानस्य, पुण्य पापे विनाग्रतः ॥ ३१ ॥

अर्थ—अरे ! जब मनुष्य को मृत्यु ले जाती है तब उसके आगे पुण्य और पाप के सिवाय न तो सन्तान होते हैं, न धन होते हैं और न महल होते हैं ॥ ३१ ॥

बद्धा येन दशास्येन, खट्वायां बलिना जरा ।
भुजयोर्लीलया येन, हनुमता समुद्धृता ॥ ३२ ॥
द्रोणाद्रिर्येन रामेण, हतो वीरो दशाननः ।
गताः सर्वेऽपि तेऽपि, विधिनान्येषु का कथा ॥ ३३ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—जिस बलवान् रावण ने वृद्धावस्था[4] को खाट से बाँध दिया था, जिस हनुमान् ने द्रोण पर्वत को भुजाओं पर उठा लिया था तथा जिस राम ने रावण जैसे वीर को मार दिया था, वे भी विधि वशात्[5] जब नाश को प्राप्त हो गये तब भला दूसरों का तो क्या कहना है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

सर्वभक्षी कृतान्तोऽसौ, लोके सत्यं प्रकथ्यते ।
गताः सर्वेऽन्यथाधीराः, कुत्र रामादयः खलु ॥ ३४ ॥

अर्थ—संसार में यह उक्ति[6] सत्य ही है कि यह यमराज सर्वभक्षी[7] है, यदि ऐसा नहीं है तो धीर राम आदि कहाँ चले गये ॥३५॥

१—कीचड़ । २—कवल । ३—बड़ी । ४—बुढ़ापा । ५—विधि के वश में होकर । ६—कथन । ७—सब को खा जाने वाला ।

मिथ्यात्वानुचरे ह्यत्र, उद्भटैश्च रितस्य मे ।
चित्राभिर्गतिभिर्भुग्रभ्रममुद्गर समाहतैः ॥ ३५ ॥
मूर्छितस्य प्रबद्धस्य, माया जन्मैश्च बन्धनैः ।
कथं मुक्तिर्भवेल्लोके, सद्वृत्ताधनमन्तरा ॥ ३६ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—इस मिथ्यात्व के अनुचररूप[1] संसार में विचित्र गति रूपी वीरों ने मुझे खूब ही घुमाया है, उनकी उग्रभ्रमण[2] रूपी मुग्दों[3] की चोटो से मैं मूर्छित[4] हो गया हूं तथा माया के बन्धनो से खूब जकड़ा हुआ हूँ तो फिर संसार मे मेरा उनसे छुटकारा सदाचार रूपी धन के बिना कैसे हो सकता है ।

रत्नं दुष्प्रापमालब्धं, सिन्धौ मग्नं कराद्यथा ।
संसारेऽत्रतथा प्राप्तं, नरत्वं निर्मलं मया ॥ ३७ ॥
कामक्रोध कुबोधादि, माया मोह वशेनतु ।
भ्रातः पश्य मुधानीतं, मूढतामेऽस्ति कीदृशी ॥ ३८ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—हे भाई देखो ! मेरी कैसी मूर्खता है कि जो मैंने इस ससार में पाये हुए निर्मल मनुष्यभव[5] को काम, कोध, अज्ञानादि, माया और मोह के वश मे होकर इस प्रकार व्यर्थ मे गमा दिया है कि जैसे मिला हुआ दुर्लभ रत्न हाथ से छूटकर समुद्र मे गिर गया हो ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

क्षणभङ्गेन ये नाथ, क्लिष्टेनवपुषाऽनिशम् ।
सद्वृत्ता योजितेनाशु, निर्वाणं पदमाप्यते ॥ ३९ ॥

१—दास रूप । २—कठिन । ३—मोगरियों । ४—बेहोश ।
५—मनुष्य जन्म ।

क्रीता तेन मया प्रीतिः, प्रिया वक्त्रेन्दुरागजा।
कृते स्वल्पस्य सौख्यस्य, कोट्या मूढेन काकिणी ॥ ४० ॥
(युग्मम्)

अर्थ—इस संसार में यह शरीर क्षणभंगुर[1] है तथा अत्यन्त मलीन है, तो भी यदि इसके द्वारा सदाचार[2] किया जावे तो शीघ्र ही निर्वाणपद[3] मिल सकता है, परन्तु खेद की बात है कि उस शरीर के द्वारा (निर्वाणपद को न खरीद कर) स्त्री के मुखचन्द्र के अनुराग की प्रीति को थोड़े सुख के लिये इस प्रकार खरीदा है जैसे कोई मूर्ख पुरुष करोड़ रुपये देकर कौड़ी को खरीदे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

वचनं परहासस्य, क्रीड़ाकारि प्रवञ्चनम्।
तुष्ट्यै परस्य लोके च, कान्ता कान्तैव सुन्दरी ॥ ४१ ॥
वित्तार्जने महारम्भोऽप्यस्ति भव्यो हि किन्तु रे।
भेदनादिक्रियाभिस्तु, रौद्रो रौरव एव वै ॥ ४२ ॥

अर्थ—संसार में दूसरे की हँसी का वचन क्रीड़ा[4] को उत्पन्न करता है, दूसरे को ठगना भी सन्तोषजनक[5] होता है, सुन्दरी प्रिया स्त्री तो प्रिया होती ही है, धन के कमाने में महान्[6] आरम्भ भी अच्छा ही हो सकता है, किन्तु अरे यह तो सोचो कि भेदन आदि क्रियाओं के द्वारा यह भयंकर रौरव कैसा है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

शीलं न शीलितं मार, प्रसरं शान्तयेमया।
लोभोन्मूलनहेतोर्न, पात्रे दत्तं मुदा धनम् ॥ ४३ ॥
व्यामोहोन्मथनायापि, स्वीकृतं न गुरोर्वचः।
मया मूढेन दुष्पापो, नृभवो हारितो हहा ॥ ४४ ॥
(युग्मम्)

१—क्षण में नष्ट होने वाला। २—भद्र व्यवहार। ३—मोक्ष पद। ४—कौतुक, खेल। ५—सन्तोष को पैदा करने वाला। ६—बड़ा।

मिथ्यात्वानुचरे ह्यत्र, उद्भटैश्च रितस्य मे ।
चित्राभिर्गतिभिर्घुग्रभ्रमगुद्गर समाहतैः ॥ ३५ ॥
मूर्छितस्य प्रबद्धस्य, माया जन्मैश्च बन्धनैः ।
कथं मुक्तिर्भवेल्लोके, सद्वृत्तधनमन्तरा ॥ ३६ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—इस मिथ्यात्व के अनुचररूप[1] संसार में विचित्र गति रूपी वीरों ने मुझे खूब ही घुमाया है, उनकी उग्रभ्रमण[2] रूपी मुग्धों[3] की चोटों से मैं मूर्छित[4] हो गया हूँ तथा माया के बन्धनों से खूब जकड़ा हुआ हूँ तो फिर संसार में मेरा उनसे छुटकारा सदाचार रूपी धन के बिना कैसे हो सकता है ।

रत्नं दुष्प्राप्यमालब्धं, सिन्धौ मग्नं कराद्यथा ।
संसारेऽत्रतथा प्राप्तं, नरत्वं निर्मलं मया ॥ ३७ ॥
कामक्रोध कुयोधादि, माया मोह वशेनतु ।
भ्रातः यस्य मुधानीतं, मूढतामेऽस्ति कीदृशी ॥ ३८ ॥
(युग्मम्)

अर्थ—हे भाई देखो ! मेरी कैसी मूर्खता है कि जो मैंने इस संसार में पाये हुए निर्मल मनुष्यभव[5] को काम, क्रोध, अज्ञानादि, माया और मोह के वश में होकर इस प्रकार व्यर्थ में गमा दिया है कि जैसे मिला हुआ दुर्लभ रत्न हाथ से छूटकर समुद्र में गिर गया हो ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

क्षणभङ्गेन ये नात्र, क्लिष्टेनवपुषाऽनिशम् ।
सद्वृत्ता योजितेनाशु, निर्वाणं पदमाप्यते ॥ ३९ ॥

१—दास रूप । २—कठिन । ३—मोगरियों । ४—बेहोश ।
५—मनुष्य जन्म ।

निर्दोष रत्नतुल्ये वै, प्राप्ते मानव सम्भवे ।
सत्कुले जन्म चाप्तं हि, नैरोग्यं पुण्यसम्भवम् ॥४६॥
प्रमादेन त्वया नाप्तं, तत्त्वं किमपि मुक्तये ।
ततः संसार चक्रेऽस्मिन्, विषमे तेऽनिशं भ्रमः ॥५०॥
(युग्मम्)

अर्थ—हे मनुष्य ! तूने निर्दोष[1] रत्न के समान मनुष्य जन्म पाया है, अच्छे कुल में जन्म पाया है तथा पूर्व पुण्य के प्रभाव से नीरोगता भी पाई है, इतने पर भी तूने प्रमाद[2] के कारण मुक्ति के लिये किसी तत्त्व को प्राप्त नहीं किया है, इसलिये इस विषम[3] संसार चक्र में निरन्तर भ्रमण हो रहा है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

तिरस्कार स्थानं नहि खलु हतः कोपरिपुकः ।
न मानो नीतश्च क्षयमिह हता नैव जगति ॥
इयं माया लोभोऽपि च नहि हतः स्वान्त हतक ।
त्वया हस्ता चाप्तो गमित इह रे मानवभवः ॥५१॥

अर्थ—अरे अभागे मन ! तूने इस संसार में न तो क्रोध रूपी शत्रु का नाश किया जोकि तिरस्कार का स्थान है, न मान का नाश किया, न इस माया का नाश किया और न लोभ का ही नाश किया, इसलिये तूने हाथ में आये हुए मनुष्यभव[4] को व्यर्थ में गमा दिया ॥५१॥

बाल्ये मोहान्धकारे हि, मग्नेन कुधिया मया ॥
तारुण्ये तरुणी सङ्गाभिलापाहृतचेतसा ॥५२॥
निःशक्तेन्द्रियवृन्देन वार्धक्ये जरया त्वहो ।
दैवयोगेन सम्प्राप्तं मानुष्यं हारितं मुधा ॥५३॥
(युग्मम)

अर्थ—मैंने कामदेव के मद की शान्ति के लिये न तो शील का सेवन किया, न लोभ के विनाश के लिये खुशी के साथ सुपात्र को धन दिया और न व्यामोह के विनाश के लिये गुरु के वचन को स्वीकृत किया, इसलिये मुझ मूर्ख ने दुर्लभ[1] मनुष्यभव[2] को व्यर्थ में हार दिया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

मित्रपुत्र कलत्रादि भ्रंशादेर्भङ्गुरं सुखम्।
कासश्वासादिभी रोगै रिदं व्याप्तं कलेवरम् ॥ ४५ ॥
करालानन कालस्तु, तूर्णमायाति संनिधिम्।
पापेरति स्तथाप्येषा, चित्तस्य करवाणिकिम् ॥ ४६ ॥

(युग्मम्)

अर्थ—मित्र पुत्र और स्त्री आदि का नाश होने से सांसारिक[3] सुख विनाश शील[4] है, यह शरीर कास[5] और श्वास आदि रोगों में व्याप्त[6] है, इसके सिवाय यह भयङ्कर मुख वाला काल शीघ्रता से समीप आरहा है, तो भी चित्त की पाप में प्रवृत्ति हो रही है, हा मैं मैं क्या करूँ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

संसारे गहने ह्यत्र, चित्रासु गतिषु त्वया।
भ्रान्त्याऽनयाऽनवाप्तो यो, बहुभिर्जन्ममृत्युभिः ॥४७॥
प्रदेशः सोऽस्ति किंलोके, शृणुजीवन मद्वचः।
चित्तेते नास्ति निर्वेदो, यत्पापेऽद्यापितेरतिः ॥४८॥

(युग्मम्)

अर्थ—अरे जीवन! मेरी बात को सुन, इस संसाररूपी वन में अनेक जन्म और मरणों के द्वारा विविध गतियों में भ्रमण कर जिस स्थान को तूने न पाया हो, ऐसा क्या कोई स्थान संसार में है? तो भी तेरे चित्त में ग्लानि[7] नहीं है कि जो अब तक पाप में तेरी प्रवृत्ति हो रही है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

१—कठिनता से मिलने वाला। २—मनुष्य जन्म। ३—संसार का। ४—नष्ट होने वाला। ५—खांसी। ६—भरा हुआ। ७—खेद।

चारित्रदारु सञ्जातं, शीलध्वजसुमण्डितम् ।
गुर्वाज्ञागुणगुम्फेन, बोधपोतं दृढं श्रितः ॥५७॥
मोहग्राहभयोपेतं, तर संसारसागरम् ।
नारीकुचतटाघाते, यावन्न प्रतिभिद्यते ॥५८॥
(युग्मम्)

अर्थ—हे मनुष्य ! चारित्र रूप काष्ठ[1] से बने हुए, शीलरूपी ध्वजा[2] से सुशोभित तथा गुरु की आज्ञारूपी रस्सी के बन्धन से सुदृढ़[3] ज्ञानरूपी पोत पर[4] चढ़कर तू मोहरूपी ग्राह के डर वाले इस संसार सागर के पार हो जा, जब तक कि यह पोत स्त्री के कुच रूपी तट की टक्कर से टूट न जावे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

देहे किं भस्म लेपेन, धूमपानेन किं सखे ।
वस्त्र त्यागेन किं किंवा, त्रिदण्डग्रहणेन तु ॥५९॥
कम्बलाभारनम्रेण, स्कन्धेनापीह किं खलम् ।
वामाक्षीमभिधावद्धे, चेतो यदि न रक्षितम् ॥६०॥
(युग्मम्)

अर्थ—हे मित्र ! यदि सुन्दर नेत्र वाली स्त्री की ओर दौड़ते हुए चित्त को नहीं रोका है तो फिर शरीर में भस्म के लगाने से क्या हो सकता है, धूम्रपान से क्या हो सकता है, वस्त्रों के त्याग (नंगे रहने) से क्या हो सकता है, त्रिदण्ड के ग्रहण से क्या हो सकता है तथा कम्बल के भार को डालकर कन्धे के भी झुकाने से क्या काम निकल सकता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

आहारैर्मधुरैः किं किं, वरैर्दारैर्विहारकैः ।
प्राणान् पद्म दलाग्रस्थ, वारिवत्तरलान् सखे ॥६१॥

१—लकड़ी । २—पताका । ३—अत्यन्त मज़बूत । ४—सहारा ।

अर्थ—बाल्यावस्था[1] में मैं कुबुद्धि के कारण मोहरूप अन्धकार में डूबा रहा, युवावस्था[2] में मेरा मन युवति स्त्री के सङ्गम का अभिलाषी रहा, तथा वृद्धावस्था[3] में बुढ़ापे के कारण मेरी तमाम इन्द्रियाँ अशक्त[4] हो गईं, इस प्रकार मैंने दैवयोग से पाये हुए मनुष्य-भव को व्यर्थ मे ही गमा दिया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

यस्मै वित्ताय सिन्धुं त्वं, लङ्घसे गाहसेऽटवीम् ।
मित्रं वञ्चयसे दीनं, वाक्यं वदसि निस्त्रपः ॥५४॥
तद्वित्तं यदि कस्यापि, स्थिरं लोकेऽवलोक्यते ।
तद्वद् चञ्चलचित्त त्वं व्यावर्त्तस्वान्यथा ततः ॥५५॥
(युग्मम्)

अर्थ—अरे चञ्चल चित्त ! जिस धन के लिये तू समुद्र को लाँघता है, मित्र को ठगता है तथा निर्लज्ज[5] होकर दीनवचन बोलता है, वह धन इस संसार में यदि किसी का स्थिर[6] दीख पड़ता हो तो तू बतला दे नहीं तो उससे दूर हो जा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

कुबोधाद्रेस्तीरे क्वचिदतनुगर्त्तान्तर इह ।
क्वचिन्मायागुल्मे क्वचिदपि च कुत्सापुलिनके ॥
महामोह व्याघ्राद् द्रवति ननु चित्तं हरिणवत् ।
मदीयं कष्टं भोः कठिनतर संसारविपिने ॥५६॥

अर्थ—अरे, यह बड़े ही कष्ट का विषय है कि इस अति कठिन संसार रूपी वन में यह मेरा चित्त महामोहरूपी व्याघ्र[7] से डर हरिण के समान कभी तो अज्ञानरूपी पर्वत के तीर जाता है, कभी, कामदेवरूपी गड्ढे के अन्दर जा छिपता है, कभी मायारूपी गुल्म[8] में जा घुसता है और कभी निन्दारूपी तट पर जा बैठता है ॥ ५६ ॥

१—बालकपन । २—जवानी । ३—बुढ़ापा । ४—शक्तिरहित, निर्बल ।
[illegible]

करने से क्या हो सकता है, छन्द के जानने से क्या हो सकता है, काव्य रस के पीने से क्या हो सकता है, स्वाध्याय[1] से क्या हो सकता है तथा लक्षण शास्त्र का अभ्यास करने से भी क्या हो सकता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

सुधारसो न कारुण्याद्, द्रोहान्नापि हलाहलम् ।
वृत्तान्न कल्पवृक्षोऽत्र, क्रोधान्नापि दवानलः ॥६७॥
प्रियं मित्रं न सन्तोषात्, लोभान्नास्ति परो रिपुः ।
युक्ता युक्तं मया प्रोक्तं, रोचतेयत्तु तत्भज ॥६८॥

(युग्मम्)

अर्थ—कारुण्य[2] से बढ़कर कोई अमृत रस नहीं है, द्रोह से बढ़कर कोई हलाहल नहीं है, सदाचार[3] से बढ़कर इस संसार में कोई कल्प वृक्ष नहीं है, क्रोध से बढ़कर कोई दावाग्नि[4] नहीं है, सन्तोष से बढ़ कर कोई प्रियमित्र नहीं है तथा लोभ से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है, मैंने उचित और अनुचित विषय का कथन तो कर दिया है, अब जो तुम्हें अच्छा लगे उसे छोड़ दो ॥६७॥ ॥६८॥

औचित्यांशुक संयुक्तां, शीलांग रागनिर्मलाम् ।
श्रद्धाध्यान विभूपाढ्यां, कारुण्यहारभूपिताम् ॥६९॥
सद्बोधाञ्जनशोभाढ्यां, लसच्चारित्रपत्रकाम् ।
यदिवाञ्छसि निर्वाणं, भजक्षान्तिं प्रियां मनः ॥७०॥

(युग्मम)

अर्थ—हे मन ! यदि तू निर्वाण[5] को चाहता है तो क्षमारूपी प्रिया का सेवन कर, जो कि औचित्य रूपी सुन्दर वस्त्र को धारण किये हुए है, शीलरूपी अङ्गराग से निर्मल है, श्रद्धा और ध्यान रूपी आभूषण पहिने हुए है करुणारूपी हार से सुशोभित है, सुन्दर ज्ञान

१—शास्त्र का अभ्यास । २—करुणा, दया । ३—श्रेष्ठ व्यवहार ४—दावानल । ५—मोक्ष ।

ज्ञात्वा कुरुष्व दानं त्वं, तपः शीलं समाचर ॥
आस्वादय च निर्वेदं, शिवं त्वं यदि वाञ्छसि ॥६२॥
(युग्मम्)

अर्थ—हे मित्र ! मधुर आहार करने से क्या हो सकता है तथा सुन्दर स्त्रियों के साथ विहार करने से क्या हो सकता है, तुम यदि कल्याण की इच्छा रखते हो तो प्राणों को कमल के पत्ते के अग्रभाग[1] पर स्थित[2] जल के समान चञ्चल जानकर दान करो तथा तप और शील का सेवन करो, एवं निर्वेद[3] का आस्वाद लो ॥६१॥६२॥

बुदबुद भङ्गुरं ज्ञात्वा, धनं दीपप्रकम्पकम् ।
शरीरं यौवनं चापि, चलेक्षणाक्षि चञ्चलम् ॥६३॥
विद्युच्चलं बलं बाह्वोः, किञ्चिज्जीव विधेहि रे ।
दानध्यान तपोरूपं, पुण्यं गुरु प्रसादतः ॥६४॥
(युग्मम्)

अर्थ—अरे जीव ! तू धन को पानी के बुलबुले के समान नाशवान् जानकर, शरीर को दीवे की हिलती हुई लौ के समान जान कर, यौवन को चञ्चल नेत्र वाली स्त्री के नेत्र के समान चञ्चल जान कर तथा बाहु के बल को बिजुली के समान चञ्चल जानकर गुरु की कृपा से कुछ दान, ध्यान और तप रूपी पुण्य कर ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

वितर्कितेन तर्केण, किं किं ज्ञातेन छन्दसा ।
काव्यरसेन पीतेन, स्वाध्यायेनापि किं सखे ॥६५॥
अभ्यस्त लक्षणे नापि, किं ज्ञानं यदि चेतसि ।
ब्रह्मणो विद्यते नैव, लोका लोक प्रकाशकम् ॥६६॥
(युग्मम्)

अर्थ—हे मित्र ! लोक और अलोक के स्वरूप को बतलाने वाला ब्रह्म का ज्ञान यदि हृदय में नहीं है तो तर्क शास्त्र का मनन

१—अगला हिस्सा । २—ठहरा हुआ । ३—ग्लानि, संसार के उद्वेग ।

करने से क्या हो सकता है, छन्द के जानने से क्या हो सकता है, काव्य रस के पीने से क्या हो सकता है, स्वाध्याय[1] से क्या हो सकता है तथा लक्षण शास्त्र का अभ्यास करने से भी क्या हो सकता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

सुधारसो न कारुण्याद्, द्रोहान्नापि हलाहलम् ।
वृत्तान्न कल्पवृक्षोऽत्र, क्रोधान्नापि दवानलः ॥६७॥
प्रियं मित्रं न सन्तोषात्, लोभान्नास्ति परो रिपुः ।
युक्तायुक्तं मया प्रोक्तं, रोचतेयत्तु तद्भज ॥६८॥

(युग्मम्)

अर्थ—कारुण्य[2] से बढ़कर कोई अमृत रस नहीं है, द्रोह से बढ़कर कोई हलाहल नहीं है, सदाचार[3] से बढ़कर इस संसार में कोई कल्प वृक्ष नहीं है, क्रोध से बढ़कर कोई दावाग्नि[4] नहीं है, सन्तोष से बढ़कर कोई प्रियमित्र नहीं है तथा लोभ से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है, मैंने उचित और अनुचित विषय का कथन तो कर दिया है, अब जो तुम्हें अच्छा लगे उसे छोड़ दो ॥६७॥ ॥६८॥

औचित्यांशुक संयुक्तां, शीलांग रागनिर्मलाम् ।
श्रद्धाध्यान विभूषाढ्यां, कारुण्यहारभूषिताम् ॥६९॥
सद्बोधाञ्जनशोभाढ्यां, लसच्चारित्रपत्रकाम् ।
यदिवाञ्छसि निर्वाणं, भजक्षान्तिं प्रियां मनः ॥७०॥

(युग्मम्)

अर्थ—हे मन ! यदि तू निर्वाण[5] को चाहता है तो क्षमारूपी प्रिया का सेवन कर, जो कि औचित्य रूपी सुन्दर वस्त्र को धारण किये हुए है, शीलरूपी अङ्गराग से निर्मल है, श्रद्धा और ध्यान रूपी आभूषण पहिने हुए है करुणारूपी हार से सुशोभित है, सुन्दर ज्ञान

१—शास्त्र का अभ्यास । २—करुणा, दया । ३—श्रेष्ठ व्यवहार । ४—दावानल । ५—मोक्ष ।

रूपी अञ्जन से शोभायुक्त है तथा जिसका चारित्ररूपी पत्रक[1] शोभा दे रहा है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

यत्रास्ति र्न मतिभ्रान्तिः, न रतिः ख्याति रुन्नतिः ।
न व्याधिर्निधनं चैव, न वधो ध्यान मेषणा ॥७१॥

नो दास्यं हास्य लास्येच, न जगत्पापपुण्यके ।
ध्येयं पदं तदेवास्ति, धीधनाश्चिन्त्यतामिदम् ॥७२॥

(युग्मम्)

अर्थ—हे बुद्धिमान् पुरुषो ! इस बात का विचार करो कि ध्यान करने के योग्य स्थान वही है कि जहाँ न तो पीड़ा है, न मतिभ्रम[2] है, न रति[3] है न ख्याति[4] है, न उन्नति[5] है, न व्याधि[6] है, न मृत्यु है, न वध है, न ध्यान है, न इच्छा है, न दासत्व[7] है, न हास[8] और नृत्य[9] है और न संसार के पाप पुण्य हैं ॥७१॥ ॥७२॥

मानुष्यकेऽपि सम्प्राप्ते, धर्मोऽयं निहतोभुवि ।
अर्थ कामौधने प्राप्ते, कार्पण्येन विडम्बितौ ॥७३॥

चलचित्तैर्जनैर्यैस्तु, मोक्षः शाश्वतिकः कथम् ।
दवीयानाप्स्यते तैर्हि, प्रसादसदनं पुनः ॥७४॥

(युग्मम्)

अर्थ—अञ्चलचित्त वाले जिन लोगों ने इस संसार में मनुष्य-भव प्राप्त होने पर भी धर्म का नाश कर दिया है तथा धन के प्राप्त होने पर भी अपनी कृपणता[10] के द्वारा अर्थ और काम का तिरस्कार कर दिया है, भला वे लोग आनन्द के स्थानभूत शाश्वतिक[11] मोक्ष को कैसे पा सकेंगे जो कि अति दूर है ॥७३॥ ॥७४॥

१—मागपत्र विशेष । २—बुद्धि की भ्रान्ति । ३—आसक्ति, प्रीति । ४—प्रसिद्धि, कीर्ति । ५—तरक्की । ६—रोग । ७—गुलामी । हंसी, ठट्ठा । ९—नाच । १०—कंजूसी । ११—निरन्तर होने वाला ।

आकाशेऽपि शिलातिष्ठेत्, मन्त्र तन्त्र बलेन तु ।
बाहुभ्यां तीर्यते सिन्धुः तुष्टः स्यातु विधिर्यदि ॥७५॥
दृश्यन्ते तारकाः प्राग्हे, ग्रहयोगत्सुराध्वनि ।
श्रेयसो नहि गन्धोऽपि हिंसायां दृश्यते पुनः ॥७६॥
(युग्मम्)

अर्थ—चाहे मन्त्र और तन्त्र के बल से शिला[1] आकाश में ठहर जावे, यदि विधि सन्तुष्ट हो तो चाहे बाहुओं से समुद्र के पार पहुँच जावे तथा ग्रहयोग से आकाश में दिन के प्रथम प्रहर में चाहे तारे भी दीख आवें परन्तु हिंसा में कल्याण का गन्ध[2] भी नहीं हो सकता है ॥७५॥७६॥

निशानां च दिनानां च, यथा ज्योतिर्विभूषणम् ।
सतीनां च यतीनां च, तथा शीलमखण्डितम् ॥७७॥

अर्थ—जिस प्रकार रात्रि और दिन का आभूषण[3] ज्योति (प्रकाश) है इसी प्रकार सतियों[4] और यतियों[5] का आभूषण अखण्डित[6] शील है ॥७७॥

राजते मायया वेश्या, शीलेन कुल बालिका ।
न्यायेन मेदिनीनाथः, सदाचारतया यतिः ॥७८॥

अर्थ—माया से वेश्या शोभित होती है, शील से कुल बालिका शोभित होती है, न्याय से राजा शोभित होता है तथा सदाचार से यति शोभित होता है ॥७८॥

यावद्रोगविघातेन, विधुराङ्गं न जायते ।
इन्द्रियाणां पटुत्वं च, यावद्वरति नो जरा ॥७९॥
निश्चल ममल तावत्, पद कर्मक्षयाय तु ।
ध्येय ध्यानिजनैर्नून, सद्मनि हृदयाम्बुजे ॥८०॥
(युग्मम्)

१—पत्थर । २—लेशमात्र ३—जेवर, सुशोभित करने वाला ४—पति व्रताओं । ५—साधुओं । ६—पूर्ण ।

अर्थ—जब तक रोग की पीड़ा से शरीर विकार युक्त न हो जावे तथा जब तक वृद्धावस्था[1] इन्द्रियों की शक्ति को दूर न करदे तब तक ध्यानी पुरुषों को अपने हृदय कमलरूपी स्थान में कर्मों के विनाश के लिये निश्चल और निर्मल पद का ध्यान अवश्य कर लेना चाहिये ॥७९॥८०॥

भुजङ्गवनिताभोगे स्तन्नो नागपतेः सुखम् ।
मुरारेस्तत्सुखं नैव, श्रीसविलास सङ्गमैः ॥८१॥
इन्द्रस्यापि सुखतन्न, शची क्रीड़ारसैः परैः ।
योगिनां तत्त्व बोधेन, निःस्पृहाणान्तु यत्सुखम् ॥८२॥
(युग्मम)

अर्थ—इच्छा से रहित योगी पुरुषों को तत्त्व के बोध[2] से जो सुख होता है वह सुख नागपति को नागिनी के भोग से नहीं हो सकता है, वह सुख विष्णु को भी लक्ष्मी के विलास युक्त सगम से नहीं हो सकता है तथा इन्द्र को भी वह सुख इन्द्राणी के उत्तम क्रीड़ा रसों से नहीं हो सकता है ॥८१॥८२॥

मध्यक्षाम तया योषित्, तपः क्षामतया मुनिः ।
मुखक्षाम तया चारवो, राजते न तु भूषणैः ॥८३॥

अर्थ—मध्यभाग मे कृश[3] होने से स्त्री की शोभा होती है, तपस्या के द्वारा दुर्बल होने से मुनि की शोभा होती है तथा मुख पर कृशता[4] होने से घोड़े की शोभा होती है किन्तु आभूषणों से शोभा नहीं होती है ॥८३॥

तन्व्या सम्भाषितः प्रीत्या, दृष्टः सप्रेमचक्षुषा ।
न यः सक्षोभमायाति, मुनिर्योगीश्वरः स वै ॥८४॥

अर्थ—प्रेमपूर्वक स्त्री के बातचीत करने तथा प्रेम भरे नेत्रों से देखने पर जिसका चित्त चलायमान नहीं होता है वही मुनि और योगीश्वर[5] है ॥८४॥

१—बुढ़ापा। २—ज्ञान। ३—दुबली, पतली। ४—दुर्बलता, पतलापन। ५—योगिराज बड़े योगी।

विलय याति कौशल्यं, सर्वाङ्ग विकलं यतः ।
ज्ञानश्रीः संक्षयं याति, प्रगल्भाकुमतिर्भवेत् ॥८५॥
धर्मो नश्यति पापं च, वृद्धि मायाति सर्वथा ।
स शोको युज्यते धीरैः, कथ संसेवितुं जनैः ॥८६॥

(युग्मम्)

अर्थ—जिस शोक से चतुराई विलीन[1] हो जाती है, सब अङ्ग विकल होजाते हैं, ज्ञान की शोभा जाती रहती है । कुमति पुष्ट हो जाती है, धर्म का नाश हो जाता है तथा सब प्रकार पाप की वृद्धि होती है, धीर पुरुषों को ऐसे शोक का सेवन क्यों करना चाहिये ॥८५॥८६॥

मुखं नार्याः कफार्तं क्व, क्व पीयूषनिधिः शशी ।
मन्यन्ते च तयोरैक्यं, कामिनो मन्द बुद्धयः ॥८७॥

अर्थ—कहाँ तो कफ से व्याप्त[2] स्त्री का मुख है और कहाँ अमृत का भण्डार चन्द्रमा है तो भी मन्द बुद्धि[3] कामी जन इन दोनों को एक मानते हैं ॥८७॥

पाशे कुरङ्गवृन्दं वै, अजानन् पतति ध्रुवम् ॥
दाहात्मतामजानंश्च, प्रदीपे शलभः पतेत् ॥८८॥
जानन्नपि ह्यमून् भोगान्, हस्तिकर्ण चलानहम् ।
त्यजामि नैव मोहोऽयं, को हृदि मम वर्त्तते ॥८९॥

(युग्मम्)

अर्थ—मृग समुदाय बिना जाने फन्दे में फँस जाता है तथा पतङ्ग भी दीपक के दाहकारी[4] स्वरूप को न जानकर उस पर गिर पड़ता है, परन्तु मैं तो इन भोगों को हाथी के कान के समान चंचल जानकर भी नहीं छोड़ता हूँ, अरे मेरे हृदय में यह कौन सा मोह भरा हुआ है ॥८८॥८९॥

१—नष्ट, गायब । २—भरा हुआ । ३—कम बुद्धि वाले । ४—जलाने वाला ।

ज्ञानमेव परं मित्रं, काम एव परो रिपुः ।
अहिंसैव परोधर्मो, योषिदेव परा जरा ॥९०॥

अर्थ—ज्ञान ही परम मित्र है, काम ही परम शत्रु है, अहिंसा ही परम धर्म है तथा स्त्री ही परम बुढ़ापा है ॥९०॥

तवेदं पौरुषं धिग् धिग्, रे रे मोह हताशक ।
विस्रब्धं भवसिन्धौ त्वं, क्षिप्तवान्मां नियम्य तु ॥९१॥
गुरूपदेशरूपं वै फलकं प्राप्य सम्प्रति ।
पारं यातोऽस्मि शौटीर्यं, चेद्दोष्णोस्तव दर्शय ॥९२॥
(युग्मम)

अर्थ—अरे मोह तेरे इस पुरुषार्थ को धिक्कार है, धिक्कार है, तूने मुझे पकड़ कर पहिले तो खूब ही संसार समुद्र में फेंक दिया था, परन्तु अब तो मैं गुरु के उपदेश रूपी फलक[1] को पाकर उसके पार होगया हूँ, अब यदि तेरी भुजाओं में बल हो तो मुझे दिखला ॥९१।९२॥

भाषन्तेऽन्यं प्रियालापैः, स्पृशन्त्यन्यं कटाक्षकैः ।
ध्यायन्ति हृदये चान्यं, चलचित्ता धिगस्त्विमाः ॥९३॥

अर्थ—ये चञ्चल चित्त वाली स्त्रियां प्रेम के वचनों से और किसी से सम्भाषण[2] करती हैं, अपने कटाक्षों को और किसी पर फेंकती हैं तथा हृदय में और किसी का ध्यान करती हैं, इनको धिक्कार है ॥९३॥

धनलेशस्य रक्षार्थे, मूढ चेता नरो भुवि ।
प्रयत्नं तनुते लोभा दनाप्यं लक्षकोटिभिः ॥९४॥
आयुः कृन्तति कालस्तु, तत्र नायं निशङ्कते ।
मूढता परमा केयं, प्रमाद वशतः खलु ॥९५॥
(युग्मम)

अर्थ—संसार में मूर्ख मनुष्य अति थोड़े से धन की रक्षा के लिए लोभ के कारण कितना प्रयत्न करता है, परन्तु जो आयु लाखों

१—पटा बेड़ा । २—बातचीत ।

और करोड़ों रुपयों से भी नहीं मिल सकती है उस आयु को काल काट रहा है, इस विषय में यह लेशमात्र[1] भी ख्याल नहीं करता है, अरे प्रमाद[2] के कारण यह कैसी परम मूर्खता है ॥९४॥९५॥

यन्धो क्रोध विधेहि त्वं, स्वाधिवामास्पदं परम् ।
मान बन्धो इतोयाहि, त्वं माये देवि संव्रज ॥९६॥
हंहो लोभ सखे गच्छ, यथेष्टं वश्यतां द्रुतम् ।
नीतः शान्तरसं त्वद्य, लसद्वाचा गुरोरहम् ॥९७॥
(युगमम्)

अर्थ—हे बन्धु क्रोध ! अब तुम अपने रहने का स्थान दूसरा कर लो, हे बन्धु मान ! यहां से चले जाओ, हे माया देवि ! अब तुम भी विदा हो जाओ, हे मित्र लोभ ! अब तुम भी यथेष्ट[3] रीति से शीघ्र ही वश में हो जाओ, क्योंकि गुरु के सुन्दर वचन ने आज मुझे शान्त रस प्राप्त करा दिया है ॥९६॥९७॥

व्यर्थं दानं तपश्चैव, विरक्तिश्चेन्न मानसे ।
स्त्रियोऽङ्गे चेन्न लावण्यं, मुधा विभ्रमवल्गितम् ॥९८॥

अर्थ—यदि मन में वैराग्य नहीं है तो दान और तप व्यर्थ है, देखो ! स्त्री के अङ्ग में यदि लावण्य[4] न हो तो विभ्रमों[5] की चेष्टा व्यर्थ ही है ॥९८॥

अभ्यस्ताश्चेत्कलाः सर्वाः, ततो जातं किमत्र भोः ।
तपोऽप्युग्रतरं तप्तं, यदि जातं ततोऽपि किम् ॥९९॥
कलङ्क विकला कीर्त्ति, यदि जाता ततोऽपि किम् ।
विवेक कलिकान्तश्चेत् नोल्ललास मुधाऽखिलम् ॥१००॥
(युग्मम्)

१—जरा भी । २—असावधानी, गफलत । ३—मन चाही । ४—सुन्दरता । ५—विलासों हाव भावों ।

अर्थ—अजी ! यदि सब कलाओं का तुमने अभ्यास कर लिया है तो इससे क्या हुआ ? यदि अत्यन्त कठिन तप भी कर लिया तो इससे भी क्या हुआ ? तथा निष्कलङ्क[1] कीर्त्ति भी हो गई तो इससे क्या हुआ ? यदि तुम्हारे हृदय मे विवेक[2] की कली नहीं खिली है तो यह सब व्यर्थ ही है ॥९९॥१००॥

स्फूर्जल्लोभकरालास्यः, गुञ्जाहङ्कार संयुतः ।
कामक्रोध विलोलाक्षिः, माया नख समन्वितः ॥१०१॥

केसरी मोहनामायं, स्वैरं भ्राम्यति यत्र ताम् ।
जगन्महाटवीं जन्तुः कः स्यात् प्रति वसन् सुखी ॥१०२॥
(युग्मम)

अर्थ—जिस संसाररूपी बड़े जगल में यह मोह नामक केसरी[3] स्वतन्त्रतया[4] घूम रहा है कि जिस का लोभ रूप भयङ्कर मुख खुला हुआ है, जो अहङ्कार रूपी गुञ्जार को कर रहा है, जिसके काम और क्रोध रूपी नेत्र चल रहे हैं, तथा जिसके माया रूपी नाखून हैं, उस (ससार रूपी बड़े जगल) मे निवास कर कौनसा जन्तु सुखी रह सकता है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

एक एव यमोदेवः बलशाली महाव्रती ।
दृशः पतन्ति यस्येह, समत्वेन मृगेन्द्रयोः ॥१०३॥

अर्थ—एक यमदेव ही बलवान्[5] और महाव्रत वाला है कि जिसकी दृष्टि पशु और इन्द्र पर एक सी पड़ती है ॥१०३॥

प्रद्युम्नाग्नीन्ध नान्याशु, मयि दूरी कुरुष्वभोः ।
विलोकितानि वक्राणि, ललिताङ्ग्यधुना मम ॥१०४॥

१—कलक रहित । २—ज्ञान, सदसद्विचार । ३—सिंह । ४—अपनी इच्छा से । ५—ताकतवर ।

उन्मीलति स्म चित्ते हि, विलासस्तु विवेक जः।
न स्थास्यन्ति तदग्रेते, वक्रेक्षण विलासकाः ॥१०५॥
(युग्मम्)

अर्थ—हे सुन्दर अंग वाली स्त्री! अब तू काम रूपी अग्नि को प्रदीप्त[1] करने वाले इन तिरछे नेत्रपातों को मुझ पर से शीघ्र ही दूर करले, क्योंकि अब मेरे चित्त में विवेक[2] सम्बन्धी विलास प्रकट हो गया है, उसके आगे यह तेरी तिरछी चितवन के विलास नहीं ठहर सकेंगे ॥१०४॥१०५॥

इमाः पद्मदृशो नूनं, ता एव स वसन्तकः।
ते वय ते वयस्याश्च, ता एवारण्यभूमयः ॥१०६॥
हृदये किन्तु जातः स, तत्त्व दीप प्रकाशकः।
यौवनोन्मादलीलां हृद्, येना हसति सम्प्रति ॥१०७॥
(युग्मम्)

अर्थ—कमल के समान नेत्र वाली स्त्रियाँ भी वे ही हैं, वही वसन्त है, हम वे ही हैं, मित्र भी वे ही हैं, तथा जगत की यह भूमियाँ भी वे ही हैं, परन्तु अब तो हृदय में तत्त्वरूपी दीपक का प्रकाश हो गया है कि जिसमें यह हृदय यौवन[3] के उन्माद की लीला[4] का उपहास[5] करता है ॥१०६॥१०७॥

शोभनं सत्य संयुक्तं, सुव्यक्तं मततं मितम्।
ये वदन्ति सदा तेषां, स्वयं सिद्धैव भारती ॥१०८॥

अर्थ—जो लोग सर्वदा[6] सुन्दर, सच्चे, स्पष्ट[7] तथा मितभाषण[8] को करते हैं, उनकी भारती[9] स्वयमेव[10] सिद्ध है ॥१०८॥

१-प्रज्वलित। २—ज्ञान, सत्यविचार। ३—जवानी। ४—क्रीड़ा, चेष्टा। ५—हँसी, ठट्ठा। ६—हमेशा। ७—साफ। ८—परिमित। ९—सरस्वती। १०—अपने आप ही।

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान् ।
धर्माय पापानि समाचरन्ति ॥
तैलाय बाला: सिकतासमूहम् ।
निपीड्यन्ति प्रभुभक्तिहीना: ॥१०६॥

अर्थ—जो मूर्ख लोग प्रभु की भक्ति से रहित हैं, वे मानो सुख के लिये दुःखों का सेवन करते हैं, गुण के लिये दोषों का सेवन करते हैं, धर्म के लिये पापों का आचरण[1] करते हैं तथा तैल के लिये बालू के समूह को पेरते हैं ॥१०९॥

सम्पत्स्यत कदाचित्किं, तद्दिनं मम सौख्यदम् ।
सद्ध्यानारूढ चित्ताया:, सततं यत्र वीक्षितम् ॥११०॥
मुक्ति मृगेक्षणायास्तु, सुधा युक्तं भवेत् मयि ।
आनन्द विन्दुभि: सौम्यं, विशदं नितरां प्रियम् ॥१११॥
(युग्मम्)

अर्थ—सुन्दर ध्यान में चित्त लगाये हुए मुझ (भूरसुन्दरी) का क्या कभी वह सुखदायक[2] दिन होगा कि जिस दिन आनन्द के बिन्दुओं से रमणीय[3], निर्मल[4], अत्यन्त प्रिय तथा अमृत से भरा हुआ मुक्ति रूपी मृगलोचना[5] का दृष्टिपात[6], मुझ पर होगा ॥११०॥१११॥

वैराग्य शतकं ह्येतद्, भूरसुन्दरि निर्मितम् ।
पठिष्यन्ति मुदा ये वै, शिवमाप्स्यन्ति तेध्रुवम् ॥११२॥

अर्थ—मुझ भूरसुन्दरी के बनाये हुए इस वैराग्य शतक को जो लोग आनन्द के साथ पढ़ेंगे वे अवश्यमेव कल्याण को प्राप्त होंगे ॥११२॥

इति द्वितीयस्तरङ्ग: ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थ: ।

१—व्यवहार । २—सुख देने वाला । ३—सुन्दर । ४—साफ़ ।
५—मृग के समान नेत्र वाली स्त्री । ६—नजर का गिरना, अवलोकन ।

❀ श्रीः ❀

श्री भूरसुन्दरी अध्यात्मबोध ग्रन्थ का

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१८	ज्ञानवान	ज्ञानवान्
३	११	निजधर्म ६	निज६ धर्म
४	२३	रगा हुआ	रंगा हुआ,
५	११	सामयिक	सामायिक
५	१८	स्थित	स्थिति
७	१३	सम्यक्त्व	सम्यक्त्व
११	१४	बुद्धिमान	बुद्धिमान्
१३	१८	बलात	बलात्
१६	४	चुका	चुका
१६	६	बारह बारह	बारह
१६	१५	तथ	तथा
२०	४	ज्ञानवरणीय	ज्ञानावरणीय
२०	१७	भद्रमन ७	भद्र७ मन
२३	१६	बखान २ करता है	बखान करता है २
२६	७	च्युत २ होकर	च्युत होकर२
२६	८	तिर्यग	तिर्यग्
२८	३	हा	का
२८	१५	दाता	दाता
२८	१७	आवश्यकता	आवश्यकता
२६	१६	तिर्यग,	तिर्यग्
२६	२६	काश	राजा के
३०	८	तनन्त	अनन्त
३०	११	करते	करवे
३१	६	जीव म	जीव में
३१	२४	द्विन्द्रिय	द्वीन्द्रिय
३२	१०	तिर्यग् ३ भाग	तिर्यग् भाग ३
३४	१०	त्रीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय
३४	१६	अकषायी	अकषायी
३६	१३	मन्द ४ विषय	मन्द विषय४
३८	१२	समुचय	समुच्चय
३८	१२	विशिष्ठ	विशिष्ट
३८	१६	पृथिवि	पृथिवी
३६	११	हैं	है
४०	हेडिंग	बाध	बोध
४०	१६	आद्‌ढाई	अढ़ाई
४१	८	ऐनो	ऐसा
४४	१८	धनुष	धनुष्
४८	१४	मध्योत्कृष्ट	मध्यमोत्कृष्ट
५१	४	श्रुति	श्रुत
५१	२१	है ?	हैं ?
५४	१२	परिषहों	परीषहों
५४	१६	परिषहों	परीषहों
५५	२१	अहार	आहार
५८	५	स्वरूप १ है	स्वरूप है१
५८	१८	वनस्पति	वनस्पति
६१	११	अपर्याप्तावस्था	अपर्याप्तावस्था

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२	१६	अथवा ६ कहते हैं	अथवा कहते हैं ६
६७	२४	पद के	पद में
६९	२५	श्राम्यति	श्राम्यति
६५	५	नवतत्त्वों ६	नव ३ तत्त्वों
६५	१७	गुरु	गुरु
६८	११	लहि ४ है	लहि है ४
७१	११	गुरुनति	गुरु नति
७७	२१	घटता	घटता है
८०	६	बिगरि ६ है	बिगरि है ६
८०	११	पलायन १० होत	पलायन होत १०
८१	१८	तजत १४ है	तजत है १४
८२	४	सतित	सतित
८३	११	ओपमा जी १०	ओपमा १० जी
८३	१३	बुद्धिमान	बुद्धिमान्
८५	११	आवश्याया	आवश्यकयों
८७	१३	पड़ौस	पड़ौसी
८८	६	तिरे ३ हैं	तिर हैं ३
८६	७	द्वियीस्त	द्वितीयस्त
९०	१०	यह पाप	पाप
९१	२०	प्रश्ना	प्रश्नो
९४	१३	ख्यात,	ख्यात
९४	१८	गया,	गया है,
९५	२३	रहित १ है	रहित है १
९६	६	रहित १ है	रहित है १
९६	२१	प्रशीर्तिता	प्रशीर्तित
९७	२१	हुवै	हुवै
९७	२३	महता	महता,
९८	१४	बुद्धिमान	बुद्धिमान
९८	२१	मनेजनीतः	मनेजनीत
९९	१६	सात्त्व	सत्त्व
१००	२६	ज्ञानवान	ज्ञानवान्
१०१	२०	भयमिद्ध	भयमिद
१०२	३	व्यस्थित	व्यथित
१०२	५	पाजुं	पाढुं
१०२	१४	याच्या	याच्या ४
१०३	२०	ही ९ है	ही हैं ९
१०४	४	विरत	विरति
१०४	१०	वाचा	वाचो
१०६	२४	नि.सारता	नि.सारता,
१०७	१८	नाय्ये	न्याय्ये
१०९	१६	समजमलो	समजतो
११२	५	कौन ?	कौन है ?
११३	१५	वनस्त्र	वनस्त्र
११३	१६	गुरुदेव	गुरुदेव
११४	४	निष्टा	निष्ठा
११४	१४	भक्ति,	भक्तिः,
११४	२४	श्रीमान्	श्रीमान
११५	२५	तात्त्र	तत्त्व
११६	२	विप यही १	विषय १ ही
११६	३	दुखी	दुःखी
११६	६	पूजनीया	पूजनीय
११७	५	शृखला ३ नारी	शृङ्खला नारी ३
११७	६	यंच	यच्चं
११७	२२	निर्भते	निर्ममते
११८	२२	क्रिमस्त	क्रिमस्ति
११६	७	त्म	तं
११६	२०	एव ,	एव,
११६	२२	शत्रुओं	शत्रुओं में
१२०	१०	मन ३ का	मन का ३

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२०	१४	काँटा ५ है।	काँटा है५
१२१	१८	बोध्य	बोध
१२१	२३	रहता ५ है	रहता है५
१२२	२४	शत्रुरूप ४ है	शत्रुरूप है४
१२३	५	॥६	॥१॥
१२३	१२	नीष्ठे	तीष्ठे
१२३	२५	शक्ति,	शाक,
१२४	४	विद्यो	विद्यो
१२४	६	जो-	रजो
१२४	१५	पुस्तक	पुस्तक,
१२६	१	मर्थं	मर्थं-
१२६	२०	दर्शन	दर्शन,
१२६	२०	चन्दन*	चन्दन,*
१२७	१४	रत	रति
१२७	१६	धी	मर्थ-श्री
१२७	२४	६—	५—
१२८	२१	विहृन	विहृन
१२६	६	तथितं	तथितं
१२६	१७	हम्मीर्णो	हक्मीर्णो
१२६	१७	विदित:	विहित:
१३०	२	विधास्यती	विधास्यति
१३१	५	चाटु वचन ३	चाटु ३ वचन
१३१	१२	शह	स हि
१३२	४	शास्त्र क	शास्त्र के द्वारा
१३२	११	भावर्नि	भावितं
१३२	१८	निय	प्रिया
१३२	१८	लक्ष्मी	लक्ष्मीः
१३३	२१	[illegible]	[illegible]
१३४	११	परिणित	परिणतं
१३४	२१	प्रयात्यसौ	प्रयात्यसौ
१३५	२	पंकवाला १	पंक १ वाला
१३५	१२	समुद्धृता	समुद्धृत
१३६	३	जन्मैश्च	जय्यैश्च
१३६	४	मुक्ति	मुक्ति
१३६	७	उपभ्रमण २	उप २ भ्रमण
१३६	८	मुग्धों ३	मुद्गरों ३
१३६	१४	यस्य	परय
१३७	२	कोव्या	कोव्या
१३७	२२	दुष्प्रापो	दुष्प्रापो
१३८	१४	मैं	[illegible]
१३८	१७	नवाप्नो	नवाप्तो
१३६	२४	कटिन	कठिन
१४१	८	पोतपर ४	पोत४ पर
१४१	१३	कम्रला	कम्बला
१४३	१८	बाधाञ्जन	बोधाञ्जन
१४४	१८	मञ्जल	चञ्चल
१४४	२४	हंमी,	८—हमी,
१४५	२	स्यातु	स्यात्तु
१४५	३	प्राप् हे	प्राप्हे
१४५	३	योग्न्	योग्यान्
१४७	१	सर्वाङ्ग	सर्वाङ्ग
१४८	६	धात्मा	धान्मा
१४८	२३	निरञ्जते	विरञ्जन
१४६	१	यथट	यथेष्ट
१५१	२१	मिन्भाषण ८	मिन ८ भाषण

❀ श्रीः ❀

श्री भूरसुन्दरी बोधविनोद

प्रियवर जैन भ्राताओ !

यदि आपको श्री जैन सिद्धान्त सम्बन्धी सम्यक्त्व के यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान प्राप्त करना हो कि जिसकी प्राप्ति के बिना आत्मा का कल्याण ही कभी नहीं हो सकता है, यदि आपको धर्म के साधन-रूप दान, शील, तप और भावना का महत्त्व जानना हो, यदि आपको धर्म द्वार रूप तृष्णात्याग, कामत्याग, विषयभोगत्याग, वैराग्य, दुर्जन-त्याग, सत्सङ्ग, धैर्य और धर्म महत्त्व आदि विषयों के विज्ञान की अभिरुचि हो, यदि आप प्राचीन व अर्वाचीन उपदेश पद्यों का अवलोकन कर अपने हृदय में विवेक कलिका का विकाश करना चाहते हैं तथा यदि आपको भक्तिरत्नों के मनन के द्वारा अपने हृदय में प्रभु-भक्ति को स्थान देकर आत्मा के निस्तार होने की वाञ्छा हो तो नीचे लिखे पते से केवल ।-) डाक व्यय भेजकर बिना न्यौछावर के "श्री भूर सुन्दरी बोध विनोद" नामक ग्रन्थ को मंगवाकर उसका अवश्य अवलोकन कीजिये —

मिट्ठनलाल कोठारी पल्लीवाल जैन,

स्वदेशी भण्डार–भरतपुर ।